(आ)

❀ सद्गुरवे नमः ❀

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय संत श्री रामस्वरूप साहेब

प्रणीत

सद्ग्रन्थ बोधसार

(सटीक)

टीका-लेखक—

अभिलाषदास

250
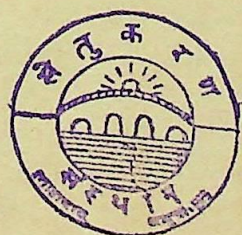
* सद्गुरवे नमः

प्रातःस्मरणीय श्रीमत्कबीरपथानुगामी

पूज्यपाद सद्गुरु श्रीरामसूरत साहेब जी

—: प्रणीत :—

सद्ग्रन्थ बोधसार

सटीक

टीकाकार

अभिलाषदास

शत्कबीराब्द ५७१

प्रकाशक
बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर
राजादरवाजा
वाराणसी

सं० २०२६ सन् १९७० ई०
द्वितीयावृत्ति
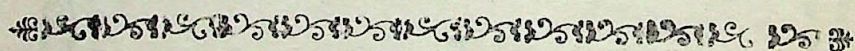
अजिल्द १०)
सजिल्द

मुद्रक
श्री विश्वेश्वर प्रेस,
बुलानाला, वाराणसी-१

भूमिका

'विवेक प्रकाश मूल' तथा 'रहनि प्रबोधिनी मूल' के रचयिता पूज्यचरण सद्गुरु श्रीरामसूरत साहेब की रचना यह 'बोधसार मूल' भी है, इसमें छः खण्ड हैं। प्रथम तीन खण्डों में सौ-सौ साखियाँ हैं, और चतुर्थ खण्ड में साखी-चौपाई-छन्द हैं; पंचम खण्ड में छन्द-लावनी-कुण्डलिया हैं एवं षष्टम खण्ड में शब्दादि हैं। ग्रन्थ के आरम्भ से अन्त तक में पारख-सिद्धान्तोक्त सभी प्रकार की शिक्षायें हैं। अर्थात् जड़-चेतन-निर्णय, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सदाचार—सभी बातों पर सुन्दर एवं समुचित विवेचन है।

इसके मूल पद स्वाभाविक सरल हैं। फिर भी छन्दों में बंधे रहने से आशय कुछ छिपे रहते हैं। अतएव सामान्य जिज्ञासु-अर्थ उपयोगी बनाने के लिये इसकी सरल एवं संक्षिप्त टीका कर दी गयी है। टीका की रोचकता एवं उपादेयता को बढ़ाने के लिये इसमें सौ से भी अधिक सुन्दर, आकर्षक एवं उद्बोधक दृष्टान्त दे दिये गये हैं। दृष्टान्त-रचना के आधार कुछ घटित घटनायें, अन्य साहित्य एवं स्वय का विवेक है। जिन साहित्यों से कतिपय दृष्टान्तों के रचने में मुझे सहायता मिली है, उन साहित्यकारों का मैं आभार स्वीकार करता हूँ।

आज का युग प्रकाशन का है। भ्रम एवं विषयोत्पादक साहित्य एवं पत्र-पत्रिकाओं की भरमार है। कितने ही विषय-विलासी मनुष्य हर्ष पूर्वक उसमें लीन हैं। इधर कल्याण-मार्ग में सहायक, स्वरूप-ज्ञान, वैराग्य, भक्ति एवं सदाचरणों से अनुप्राणित सत्साहित्यों को देखकर कौन विवेकवान्, मुमुक्षु एवं जिज्ञासु प्रसन्न न होगा ?

'मैं कौन हूँ ?' की कुछ प्रतियाँ पूज्यचरण सद्गुरु श्री विशाल साहेब की सेवा में भेजने पर उत्तर रूप में श्रद्धेय सन्त श्री प्रेम साहेब जी के पत्र में बहुत आशीर्वचनों के साथ ये उद्गार प्रकट हुए—

"..........पत्र प्राप्त हुआ। हाल जाना गया। पारख स्थिति-सहायक पुनः यथासमय-सम सुपरिचायक सद्ग्रन्थों को देखकर किसे

प्रसन्नता न होगी ? मार्ग में बल, सरलता और सहकार कौन नहीं चाहता ? 'मैं कौन हूँ ?' यह प्रकरण मुक्ति-हेतु सरल, सुग्राह्य एवं मननीय है। भावुक-प्रेमीजन मनन करते ही रहेंगे। इसी प्रकार अन्य पुस्तकें भी सामने आयेंगी। यह आप और आपके सहायक सन्तजनों के महा-परिश्रम का पुनीतफल है। 'मैं कौन हूँ ?' इस पुस्तक को लोग बहुत माँगते हैं। बड़ी पुस्तकें दो-दो सौ एवं छोटी इससे भी अधिक भेज दीजिये, तो अच्छा हो..............................!"

"गुरु पद सब दुख हारक जगमें। अस जिय जानि गुरू पद सगमें ॥
कहत सुनत ठहरत शुभ सादर। कबहुँ न होत अधीर रु कादर ॥
काय वचन मन नेम अरु प्रेमा। संयम विरति विवेक हियेसा ॥
संगत वचन ध्यान कर जेऊ। गुरुपद योग्य होत पति तेऊ ॥
अस प्रभाव गुरु सन्तन केरो। समुझत कहत सोई पद भेरो ॥
अस प्रभाव पूरण शुभ चन्दा। कबहुँ न क्षीण होत सम कन्दा ॥

दोहा—भाव परख करनी परख, पारख पद स्थीर।
पारख सुधि पारख रह्यो, बीते मन भव पीर ॥
अस उदार जे सर्व हित, जो कोउ शरणा जाय।
विमल विवेक विराग लहि, सहज मुक्ति पद पाय ॥......"

× × ×

मैं यह अनुभव करता हूँ कि सिद्धान्त के समस्त, पूज्य गुरुजनों की मेरे ऊपर वात्सल्य पूर्ण परम कृपा-दृष्टि है; इसीलिये मैं भी अपने बाल-स्वभाव की तोतली भाषा में कुछ कह जाने का साहस कर बैठता हूँ। परन्तु यह साहस आप पूज्य गुरुजनों की कृपा-दृष्टि में ही निहित है; अतः सारा श्रेय आप महानुभावों को ही है। दास अपनी त्रुटियों पर विनम्र क्षमाप्रार्थी है।

फाल्गुनशुक्ल }
सं० २०२३ }

विनीत
अभिलाषदास

* सद्गुरवे नमः *

बोधसार सटीक का सूची-पत्र

विषय	पृष्ठ
प्रथम-खण्ड	
स्नेह की फाँसी	४
छाया-त्यागो, अपने को पकड़ो	७
एक शान्तीचित्त सज्जन	८
महात्मा बुद्ध की क्षमा	९
संसार मृगतृष्णा	१०
महावीर स्वामी की क्षमा	१४
महात्मा ईशु की क्षमा	१५
गुरु-शिष्य का प्रश्न	१६
दुःख से बैराग्य की प्राप्ति	१६
भ०-भैया स्वारथ का ही साथी	२२
नमाज मत पढ़ो	२३
संसार वन में सद्गुरु	२४
मनोनिग्रह ही परम सुख है	२६
'द' के तीन अर्थ	२६
सार तो रख लिया	३१
अज्ञानी जीव की उल्टी मति	३२
बुरा न पाया कोय	३४
दुःख का कारण अपना अज्ञान	३६
मृत्यु का स्मरण, मन मारने का उपाय	३९
सबसे श्रेष्ठ तुम स्वयं हो	४०
द्वितीय-खण्ड	
दुर्जन भाई के प्रति क्षमा	४९
आशा ही परम दुःख है	५३
भजन - भैया दो दिन की जिन्दगानी ये	५५
सौंदर्य गमले में रखा है	५६
राजा भर्तृहरि का वैराग्य	६०
सन्त-असन्त के लक्षण	६५
यह भी न रहेगा	६९
भजन के लिये टालसटोल	७०
संसारका सम्बन्ध स्वप्नवत	७२
भजन - तू कहा मान मन तेरा:क्षण भंग तन	७३
केवट की तृष्णा	७६
चोरों को देख रहे हैं	८०

विषय	पृष्ठ
सत्य महाव्रत	८३
बड़ों का बड़प्पन	८४
लल्ला के बप्पा हरे-हरे	८५
बिना सुने उत्तर का कुफल	८५
महापुरुष तथा समदर्शी के लक्षण	८७
संसार-समुद्र	८९
महात्मा-बुद्ध	९१
जीव के तीन मित्र	९४
वकील से भी भ्याँ ?	९६

तृतीय-खण्ड

विषय	पृष्ठ
संसार से पीड़ित जीव	१०५
कामान्धता	१०८
क्रोध से दुःखों की प्राप्ति	१०८
क्रोधमें बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है	१०९
पाप का बाप कौन ?	१०९
लोभ से सर्वनाश	११०
मोह-नाश के उपाय	१११
उपमेय से उपमान बड़ा	११२
सर्वत्र गन्दगी	११३
बिना बिचारे जो करे सो	११५
खाँड़ के पांच साधु	११६
अपने दोष ही अपने को भय	११८
अपनी निन्दा पर क्षमा	१२४
अपने बुरे कर्म-फल-भोग	१२५
ईर्ष्या-पाप	१२५
सांसारिक जीवन की असारता	१३०
पाँच की डींगें	१३३
उत्तम पोषाक क्या है ?	१३५
मांसाहार त्यागो	१३६
पैगम्बर साहब की दया	१३७
भ०-त्यागो मद्य मांस औं	१३८
एक सज्जन की निर्लोभता	१३९
मातृवत् परदारेषु	१४०
वैर या क्रोध के चार प्रकार	१४३
जहाँगीर का न्याय	१४७

चतुर्थ-खण्ड

विषय	पृष्ठ
दाल गल जाती, यदि पानी	१५८
बहू की सज्जनता	१५८
विषयी जीवन की असारता	१६२
नष्टस्य कन्यागतिः	१६५
अन्याय का फल	१६७
कुसग तथा सिनेमा से पतन	१६८
ऊँची शिक्षा क्या है ?	१७०
मनुष्यों के तीन प्रकार	१७६
रात कब होती है ?	१७८
बड़ा गुण कौन	१८०
कम्बल कि भालू ?	१८३
स्वावलम्बन में सुख	१८५
पदार्थों में सुख नहीं	१८७

विषय	पृष्ठ
पंचम-खण्ड	
जहाँ बेवकूफ वहाँ सैकड़ों फजीती	१६५
कौन स्वर्ग में गया कौन नरक में	१६६
कहा न मानो तो लिखा देख लो	२००
दरिद्र कौन ?	२०१
मन मारना ही मुक्ति का मार्ग है	२०३
शत्रु का पैर कुल्हाड़ी से काटूंगा	२०५
श्री महावीर स्वामी का वैराग्य	२०६
मन साँप को मारो	२०९
चुगलखोर की न सुनिये	२१४
एक गरीब की ईमानदारी	२१६
दुष्टा भाभी के प्रति देवर की सज्जनता	२१७
पत्नी की आदर्श मानवता	२१८
महापुरुष युसूफ	२२१
अज्ञान-वश जीव स्वयं सुखी नहीं होना चाहता	२२३
भजन--दृश्य से पार तू नित निराधार तू	२२८
षष्टम-खण्ड	
क्रिस्टोफर कोलम्बस	२३८
इञ्जीनियर 'पेरी'	२३८
हिमालय की सर्वोच्च चोटी	२३६
शिर झुकाने में शर्म क्यों ?	२४५
मन्त्री की प्रतिभाशीलता	२४५
क्या मैं अच्छी पालिस नहीं करता था ?	२५६
गधे की लात	२४७
उत्तम उत्तर	२४७
कु-शासन से सिंह अच्छा	२५८
ऊँचा कुल नहीं ऊँचा चरित्र चाहिये	२५८
सम्राट भोज की उदारता	२५६
निष्फल आशा	२६०
तीन का तिकड़म	२६३

प्रथम खण्ड

गुरु साधु नमों तव चरण कंज।
भव रुज हर भेषज परखज्ञान।
दाता दयालु सम्यक् सुजान ॥
हो वीतराग जग-ज्वर विहीन।
सब भोग रोग से अति अलीन ॥
अज्ञान तिमिर रविकर सुभंज ॥गुरु साधु ॥१॥

अघ ओघ सरोरुह को तुषार।
सत शील धीर दाया विचार ॥
इन मीन हेतु जल को अगार।
भव डूबत को हो करणधार ॥
उर नयन प्रकाशक ज्ञान अंज ॥गुरु साधु० ॥२॥

विहरत भूतल जग जीव हेत।
भूले जन को करते सचेत ॥
लेते दुख-सागर से उबार।
को सन्त सरिस जन को अधार ॥
जन्मादिक शोक-समूह गंज ॥गुरु साधु० ॥३॥

* सद्गुरवे नमः *

बोधसार-सटीक

प्रथम खण्ड
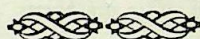
वन्दना-साखी

परम विवेकी साधु गुरु, वन्दौं तेहि पद सार ।
जिनके रहस प्रताप से, नाशै दुःख अपार ॥ १ ॥

द्रष्टा-दृश्य के श्रेष्ठ विवेकी साधु-गुरु के, शान्ति-लाभ दायक, चरण-कमलों की, वन्दना करता हूँ। जिनके सदाचरण के प्रभाव से, मानसिक-जन्मादिक असीम दुःखों का नाश होता है ॥ १ ॥

विषयारम्भ-साखी

जड़ चेतन मिलि देह यह, बन्धन भूल अनादि ।
ज्ञान उपासन युक्त नर, जन्म मरण दुख बादि ॥ २ ॥

जड़-चेतन के संयोग से, यह शरीर खड़ा है, जीव का स्वरूपभूल रूपी बन्धन अनादि का है। वीतराग सद्गुरु की भक्ति-सहित, जब मनुष्य को स्व-स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, तब जन्म-मरणादि के दुःख सदैव के लिये नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

कर्म शुभाशुभ जीव करि, दुख सुख तेहि अनुसार ।
भोगत त्यागत आप ही, अन्य नहीं दातार ॥ ३ ॥

अज्ञान-वश मनुष्य शरीर में जीव पाप और पुण्य कर्मों को करता है; तदनुसार ही चारों खानियों में दुःख और सुख फलों को भोगता

है। स्व-स्वरूप-ज्ञान द्वारा स्वतः कर्मों को त्याग कर मुक्त भी हो जाता है; फलतः बन्धन और मोक्ष का दाता अन्य कोई नहीं है ॥ ३ ॥

स्पष्ट—कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र है। मनुष्य स्वतंत्र है, चाहे अपने पैर में कुल्हाड़ी मारे, चाहे न मारे। यदि मार लेगा, तो न चाहते हुए भी, उसकी पीड़ा सहनी होगी। जीव जो कर्म करता है; मनोमय सूक्ष्म शरीर में, उसका संस्कार दृढ़ हो जाता है। जैसे बीज के अनुसार, वृक्ष और उसके फूल, फल तथा काँटे स्वतः होते हैं। इसी प्रकार जीव का किया हुआ कर्म, मनोमय सूक्ष्म-शरीर में दृढ़ बीज रूप होकर, कालान्तर में शरीर और सुख-दुःख आदि भोग स्वतः मिलते हैं। चने का बीज बड़ा होता है, परन्तु वह थोड़े ही तत्त्व-अंशों को खीच कर अपना रूप (वृक्षाकार) बना पाता है। इसके अतिरिक्त वट का बीज बहुत छोटा होता है। परन्तु उसमें ऐसी शक्ति होती है कि, वह सहस्रों मन तत्त्व-अंशों को समेट कर अपना रूप (वृक्षाकार) बना लेता है। इसी प्रकार अविनाशी जीव के जैसे कर्मबीज रहते हैं, तैसे उसे स्वतः फल प्राप्त होते रहते हैं। तिसमें शास्त्रों के प्रमाण भी हैं—

'ना काहुइ कोइ सुख दुख दाता। निज कृत कर्म भोग सुन भ्राता ॥'
(मानस रामायण)

श्लोकः—'स्वयं कर्मकरोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥'

अर्थ—जीव स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसके फलों को भोगता है। अज्ञान-वश स्वयं संसार में भ्रमता है तथा अज्ञान त्याग कर स्वयं संसार से मुक्त भी हो जाता है।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥
(गीता ५।१४)

अर्थ—कोई स्वामी (ईश्वरादि) प्राणियों के न कर्तापन को और

न कर्मों को तथा न कर्मों के फल के संयोग को (वास्तव में) रचता है। किन्तु कर्मबीज के स्वभावानुसार जीव को स्वतः फल मिलता है।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हिभुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

(गीता १३।२१)

अर्थ—प्रकृति में स्थित (विषयासक्त) जीव ही प्रकृति से उत्पन्न हुए त्रिगुणात्मक सब पदार्थों को भोगता है; और इन गुणों का संग ही इस जीवात्मा के अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेने में कारण है।

जीवितं मरणं जन्तोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा।
राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुख दुःखयोः॥

(भागवत १२।६।२५)

'राजन्! जगत् के प्राणी अपने-अपने कर्म के अनुसार ही जीवन-मरण और मरणोत्तर गति प्राप्त करते हैं। कर्म के अतिरिक्त और कोई भी किसी को सुख-दुःख नहीं दे सकता।'

कर्म वासना योग जस, चार खानि की देह।
उपजि विनशि जिव साथ में, सुख मानन्दी गेह॥ ४॥

जीव के अन्तःकरण में नाना कर्मवासनायें संग्रहीत हैं; जब जिन कर्मवासनाओं की योग्यता पड़ती है; अण्डज, पिण्डज, उष्मज और मनुष्य—इन चार खानियों में की, तब, तैसी देह जीव को प्राप्त होती है। इस प्रकार शरीर उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। परन्तु जीव विषय-सुख की अहन्ता-ममता रूपा घर में रमण करता रहता है। अतः पुनः-पुनः जन्म-मृत्यु का चक्कर लगा रहता है॥ ४॥

पंच विषय सुख भास करि, इन्द्रिय भोग विलास।
सो अध्यास टिकाय नर, त्रिविध ताप सहि त्रास॥ ५॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पांचो विषयों में सुख का प्रतीत करके, इन्द्रियों के भोग-विलास में जीव मस्त होता है। फिर नरजीव उसी भोग की वासना हृदय में दृढ़ कर, चारों खानियों में दैहिक, दैविक तथा भौतिक—इन तीन तापों के कष्टों को सहता है॥५॥

दुख छूटन का यत्न यह, सद्गुरु शान्ति अधार।
मनवश जगत कुसंग सब, तजि के गहे विचार ॥ ६ ॥

सद्गुरु-प्रदत्त शान्ति का आश्रय लेना ही उपर्युक्त दुःखों से छूटने का उपाय है। मनवशी होने से संसारी जीव, सब कुसंग रूप हैं; अतः इनका राग त्याग कर विवेक ग्रहण करे ॥ ६ ॥

दुःख पूर्ण संसार में, सुख न कहीं दिखलाय।
तामें जो स्नेह करि, बन्धन अमित भ्रमाय ॥ ७ ॥

पीड़ा से परिपूर्ण इस संसार में, कहीं भी सुख नही दिखता। ऐसे दुःख पूर्ण संसार मे, जो मोह करता है, वह अनेक भव-बन्धनों में बँध कर, भ्रमता रहता है ॥ ७ ॥

स्नेह का बन्धन सबसे विकट है, इसके विषय में नीचे एक दृष्टान्त दिया जाता है, मनन करें—

स्नेह की फाँसी

दृष्टान्त—एक वन में एक कबूतर तथा एक कबूतरी रहती थी। दोनों की आपस में बड़ी आसक्ति थी। कबूतरी का रूप सौन्दर्य, अनुकूल क्रिया, मीठी बोली तथा हाव-भाव देखकर उसमें कबूतर अति आसक्त रहता था। इसी प्रकार कबूतरके, रूप सौंदर्य को देखकर कबूतरी आसक्त रहती। दोनों साथ-साथ चारा चुंगने जाते, साथ-साथ बैठते तथा साथ-साथ ही आराम करते थे। एक के बिना दूसरे को एक क्षण के लिये भी चैन नहीं पड़ता था। दोनों में इतना स्नेह हो गया था कि, कबूतरी जो चाहती, कठिनता सह कर भी कबूतर वही करता और इसी प्रकार कामासक्त कबूतर के मनानुकूल कार्य के लिये कबूतरी भी जान देने के लिये तैयार रहती थी। दोनों परस्पर हरक्षण देखा करते, स्पर्श किया करते, तथा फुदक-फुदक कर आपस में केलि किया करते थे।

कुछ दिन के पश्चात् कबूतरी ने अण्डे दिये। समय से अण्डे फूट कर बच्चे हुए। इसी प्रकार चार-पांच बच्चे हो गये। अब कबूतर

कबूतरी उन बच्चों के मोह में भली-भाँति बँध गये । बच्चों की भोली सूरत देखकर तथा 'गुटरगूँ-गुटरगूँ' मीठे शब्द सुनकर, कबूतर-कबूतरी आनन्दमग्न हो जाते थे। अपने कोमल पंखों से बच्चे जब आकर स्पर्श करते तथा दौड़-दौड़ कर सामने एवं पास चले आते या फुदक-फुदक कर नाचने लगते, तब कबूतर-कबूतरी उनके मोह में विह्वल हो जाते । इस प्रकार स्त्री, पुत्र और घर के मोह में कबूतर इतना मस्त हो गया कि, उसे और कोई ध्यान न रहा तथा इसी प्रकार कबूतरी भी, पुरुष और पुत्र-घर के मोह में बंध गयी ।

कुटुम्ब लम्बा हो जाने से, कबूतर-कबूतरी को चारा की बड़ी चिन्ता रहने लगी । एक दिन बच्चों के लिये दोनों बन में चारा लाने गये थे । इधर एक बहेलिया आया और अपने जाल में कबूतर के बच्चों को फंसा लिया । इतने में कबूतरी आयी और अपने प्राण से भी प्रिय बच्चों को, बधिक के जाल में फँसा देखकर, मोह में पागल हो गयी और शिर कूट-कूट कर रोने लगी । उसके दुःख की सीमा न रही । वह अपने शरीर की सुधि-बुधि खोकर मोह-पाश में बँधी हुई बच्चों के पास कूद पड़ी । बधिक ने उसे भी फंसा लिया ।

कबूतर ने आकर देखा, तो प्राण-प्रिय स्त्री और बच्चे दोनों काल के जाल में पड़े हैं। अब तो इसका शोक-सागर उमड़ पड़ा। इसके ऊपर दुःख की बिजली गिर पड़ी। यह सोचने लगा—"हाय ! मेरे संकेत पर नाचने वाली, सब प्रकार आज्ञा मानने वाली, सुन्दर प्राण-प्रिया तथा मनभावन सुन्दर होनहार बच्चे, जो कलेजा के टुकड़े थे—सब काल के गाल में जा पड़े । अभी मैं इच्छा भर सुख भी नहीं भोग पाया । इतने में मेरी पूरी गृहस्थी ही नष्ट हो गयी । हाय ! प्रिय स्त्री-पुत्रों के बिना मैं अभागा रहकर क्या करूँगा ?"

इस प्रकार चिन्ताग्नि में जलता और विलाप करता हुआ, बधिक के जाल में स्त्री-बच्चों के पास कबूतर भी कूद पड़ा। क्रूर बधिक उन सब को पकड़कर और मार कर खा लिया ।

उपर्युक्त दृष्टान्तानुसार ही मनुष्य स्त्री-पुत्र-घर आदि की आसक्ति

में फँसकर कल्याण-साधन करने योग्य उत्तम मानव-जन्म को नष्ट कर देता है। किसी प्राणी पदार्थ में अत्यन्त स्नेह करना जीव की फाँसी है। जो किसी के अति स्नेह में फँस जाता है, वह अपनी स्वतन्त्रता-स्ववशता खो बैठता है। राग-स्नेह की रस्सी में फँसा हुआ ही जीव जन्म-मरण के दुःखद चक्कर में घूमता रहता है। अतः स्नेह-फाँसी को काट कर स्ववश होओ।

विषय सुक्ख आरम्भ में, दुख अतिशय परिणाम।
तदपि न त्यागे मूढ़ मन, पुनि पुनि वही चहाम ॥ ८ ॥

विषयभोग के आरम्भ में, मनुष्य को भ्रम-वश, सुख की प्रतीति होती है; परन्तु परिणाम में अत्यन्त दुःखों की प्राप्ति होती है। तिस पर भी यह मूर्ख मन, विषयों को नहीं त्यागता, बारम्बार उसी को चाहता रहता है ॥ ८ ॥

मानुष से अतिरिक्त जो, तीन खानि के जीव।
परवश ह्वै संसार में, ज्ञान विहीन लखीव ॥ ९ ॥

मनुष्य के अतिरिक्त पशु, पक्षी, कृमि आदि; जो तीन खानि के जीव हैं। ये विवेक-ज्ञान-रहित, जगत् में परवश देखने में आते हैं। अतः कल्याण-साधन नहीं कर सकते ॥ ९ ॥

याते मनुष्य स्वतन्त्र है, ज्ञानवान् परवीन।
हानि लाभ सोचत सदा, लाभ जानि गहि लीन ॥ १० ॥

अतएव कल्याण-साधन करने में मनुष्य स्वतन्त्र है, विवेकी एवं बुद्धिमान है। यह सदैव हानि-लाभ का विचार रखता है, हानि का त्याग और लाभ जानकर, ग्रहण करता रहता है ॥ १० ॥

मानुष का कर्तव्य है, दुख निवृत्ति के हेतु।
राग द्वेष परपंच तजि, गहि विवेक भव सेतु ॥ ११ ॥

दुःखों से छूटने के लिये प्रयत्न करना—मनुष्य का कर्तव्य है। वैर-मोह रूप प्रपंच त्याग कर, संसार-सागर से पार होने के लिये, ज्ञान-सेतु का उसे आश्रय लेना चाहिये ॥ ११ ॥

धन वैभव जग मान यश, अगुआपन अधिकार।
मिलत छुटय सब देखिये, गुरू ज्ञान यक सार॥ १२॥

संसार के धन, ऐश्वर्य, मान, बड़ाई, सरदारी तथा स्वामित्व—विचार करके देखिये, ये सब मिलते-छूटते रहते हैं। सद्गुरु का पारख-ज्ञान प्राप्त होना ही, जीवन में महान लाभ है॥ १२॥

स्पष्ट—धन, ऐश्वर्य, मान बड़ाई तथा अधिकार—ये सब जीव को नित्य शान्ति नहीं दे सकते। इनसे तो बल्कि और अशान्ति बढ़कर, जीव उलझनि में पड़ा रहता है। शरीर से भिन्न, अपने अविनाशी स्वरूप चेतन का ज्ञान, और विजाति वासना त्याग कर, उक्त स्व-स्वरूप में स्थिति होने पर ही—मानव-जीवन का परम लाभ—शान्ति मिलती है। जहाँ तक दूसरा है—उसका त्याग कर, अपने आप में शान्त होने पर ही—जीव स्वतन्त्र, सुखी और श्रेष्ठ पद पाता है। इसके लिये एक दृष्टान्त मनन करें।

छाया त्यागो, अपने आप को पकड़ो

उजेली रात में एक बालक घर से बाहर खेलने निकला। उसने अपने शरीर की छाया को दूसरा बालक समझ कर, उससे प्यार करने के लिये, उसका पकड़ने दौड़ा। ज्यों-ही-ज्यों छाया के पीछे बालक दौड़ता, त्यों-ही-त्यों छाया दूर भागती चली जाती थी, अन्त में थक कर खड़ा होकर रोने लगा।

माता ने आकर कहा—"बेटा तुझे यदि उसे पकड़ना है; तो उसकी ओर न दौड़ कर, अपने आप को पकड़।" ऐसा कहकर लड़के के हाथ को, उसके अपने ही सिर पर रखवा दिया, तो छाया पकड़ने में आगयी।

छाया रूपी शरीर, शरीर की अवस्था, परिस्थिति, पदार्थ एवं भोग वस्तुओं को मनुष्य पकड़ना चाहता है। परन्तु अन्ततोगत्वा उसके हाथ में शरीर संसार नहीं आता। जब वह सबको छोड़कर, अपने आप—चेतन स्वरूप को पकड़ लेता है, अर्थात् उसी में सन्तुष्ट हो जाता है, तब सबकी कामना छूट जाती है और जीव स्वतःतृप्त हो जाता है।

दुःख रूप संसार यह, ताते होय उपराम।
थीर सदा निज रूप में, तज कर देह अराम ॥ १३ ॥

आधि, व्याधि, उपाधि युक्त यह संसार दुःखपूर्ण है, अतएव इससे निराश हो जाना चाहिये। शरीर का सुखाध्यास त्याग कर, सदैव स्व-स्वरूप पारख चैतन्य में सन्तुष्ट रहना चाहिये ॥ १३ ॥

स्व स्वभाव को शुद्ध करि, निशिदिन करु निरुवार।
जीव दया समता सहित, शांति गहे भव पार ॥ १४ ॥

अपने स्वभाव को शुद्ध करते हुए, अहर्निश मोह-ग्रन्थि का छेदन करे। जीवों पर दया और समता का बर्ताव करते हुए शान्ति धारण करे—इसीसे जीव जन्म-मरण से पार होगा ॥ १४ ॥

अक्षय अखण्ड स्वरूप निज, कम विशेष नहिं लेश।
ऐसे रहि निज लक्ष में, स्थित रहे हमेश ॥ १५ ॥

अपना चेतन स्वरूप अविनाशी और अखण्ड है। उसमें किन्चिन्मात्र भी न्यूनाधिक होने वाला नहीं। इसी प्रकार स्वरूपभाव, अपने लक्ष्य में रखकर, सदैव शान्त रहे ॥ १५ ॥

निशिदिन देखो आप को, नटखट जगत बिसार।
दिल उद्वेगासक्ति तजि, लहिये सार विचार ॥ १६ ॥

धोखेबाज संसार को भूला कर, रात-दिन अपने सुधार पर ध्यान दो। हृदय की उलझनि और आसक्ति छोड़ कर, सत्य-विचार को धारण करो ॥ १६ ॥

साधक का कर्तव्य है कि, वह किसी के उलझाने पर उलझे नहीं। धैर्य-बल पर सहन करके शान्त रहे। तभी वह अपना कल्याण कर सकता है। इस पर एक दृष्टान्त मनन कीजिये।

एक शांती-चित्त सज्जन

एक सज्जन बड़े शान्त चित्त के थे। उनके चित्त में कभी झुझलाहट नहीं आती थी। उनके नौकर से, उनके मित्रों ने कहा—'तुम

प्रयत्न करके एक बार भी मित्रजी के चित्त में झुंझलाहट उत्पन्न करा दो, तो तुमको इनाम दिया जायगा।'

उस दिन संध्या को नौकर ने जब स्वामी की शय्या बिछाया, तो ठीक से नहीं बिछाया। गद्दे को कुछ टेढ़ा करके चद्दर में सिकुड़न कर दिया। वे सज्जन आये और सो गये। प्रातःकाल नौकर जब सामने आया, तब उन्होंने बड़ी कोमलता से कहा—'क्या भैया! तुम हमारा काम करते करते घबरा गये हो? रात में शय्या ठीक से नहीं बिछाये' नौकर हाथ जोड़ कर क्षमा माँगा। नौकर का यह वार (दाँव) तो खाली गया। स्वामी को झुंझलाहट न आयी।

दूसरे दिन सायंकाल को नौकर ने शय्या लगाते समय चद्दर के नीचे-नीचे जगह-जगह कपास का बिनौला डाल दिया तथा सिरहने तकिया नहीं लगाया। अपने समय पर वे सज्जन आकर सो गये। रात में तो उनको कष्ट हुआ, परन्तु नींद गहरी पड़ जाने से रात बीत गयी। प्रातःकाल होते ही नौकर सामने आया। स्वामीने मुस्कराते हुए कहा—'शय्या बिछाने का जैसा तेरा अभ्यास होता जाता है। तैसा ही जिस किसी भाँति शय्या पर सोने का मेरा भी अभ्यास होता जाता है।'

ऐसे परम् शीतल स्वामी के चरणों में नौकर लिपट गया तथा वास्तविकता बतला दी।

जो लोग बिना त्रुटि के या थोड़ी-सी त्रुटि होने पर नौकरों तथा दासों को क्षण-क्षण गर्म-नर्म सुनाया करते हैं। उन बाबुओं एवं स्वामियों को उपर्युक्त दृष्टान्त से शिक्षा लेनी चाहिये।

महात्मा बुद्ध की क्षमा

एक अशिष्ट युवक महात्मा बुद्ध को गन्दी-गन्दी गाली दे रहा था। महात्मा शान्त भाव से सुनते रहे। जब युवक थक गया, तब चुप हो गया। बुद्धजी ने कहा—'तुम कोई वस्तु मुझे भेट में दो, और मैं न लूँ; तो वह वस्तु किसकी होगी?' युवक ने कहा—'मेरी ही होगी।' महात्मा ने कहा—'देखो! तुम अपने अपशब्द का कोष अपने ही पास

रखो। उसकी हमें आवश्यकता नहीं है। प्रतिध्वनि जैसे ध्वनि के पीछे चलती है और छाया जैसे पदार्थ का अनुगमन करती है। इसी प्रकार दुःख अपराधी के पीछे लगे रहते हैं। जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, उसको तुम अपशब्द कहकर विकारी नहीं कर सकते।'

इतने वचन सुनकर वह युवक पानी-पानी हो गया, और उनके चरणों में गिर कर क्षमा माँगी।

जो कुछ देखो दृष्टि से, सो सबहीं आसार।
ताको मान न कीजिये, गहो परम् पद सार॥ १७॥

नेत्र से जो दृश्य दिखलाई देता है, वह सब सारहीन है। उसका कभी अभिमान न धारण करो, परम्पद जो अपना चैतन्य स्वरूप है, वही सार एवं सत्य है, उसी में स्थिति करो॥ १७॥

संसार—मृगतृष्णा

धूप से पीड़ित एक प्यासा मनुष्य मार्ग में जा रहा था। उसके मन तथा नेत्र जल की खोज में दौड़ रहे थे। इतने में दूर से जल-सा देखने में आया। वह मनुष्य अत्यन्त हर्षित होकर जल की ओर चल दिया। निश्चित स्थान पर पहुंचने पर, धूप से चमकता बालू देखने में आया। उसकी आशा पर पानी फिर गया। वह बेचारा बहुत दुःखी हुआ।

इस दृष्टान्त का यह तात्पर्य है कि, विषय का प्यासा मनुष्य स्त्री, पुत्र, धन तथा भोगों को सुखमय समझ कर उसकी ओर दौड़ता है। परन्तु मृगतृष्णा रूप इन निस्सार भोगों से मनुष्य को सन्तोष नहीं होता। बल्कि सर्वत्र असंतोष ही हाथ आता है। अतएव संसार-शरीर आदि भोगों से विमुख होकर, स्वरूपज्ञान तथा धर्म-संचय ही में लगना चाहिये।

मिलन वियोगी कर्म सब, अनमिल शुद्ध स्वरूप।
जड़ चेतन संयोग विधि, सो सब भर्महि कूप॥ १८॥

संसार में जितने कर्म हैं, सब मिलने-बिछुड़ने वाले पदार्थों से सम्बन्ध कराने वाले हैं, और अपना निर्मल चैतन्य स्वरूप, किसी से,

कभी न मिलने वाला सर्वथा असङ्ग है। जिस कर्मवासना रूपी विधि के विधान से, जड़-चेतन का पुनः-पुनः सम्बन्ध होता रहता है, वह कर्म वासना भ्रमकूप मात्र है ।। १८ ।।

तात्पर्य यह है कि, कर्म करने से, सांसारिक पदार्थ प्राप्त होते हैं। जो मिलकर छूट जाने वाले हैं। कोई कर्म आरम्भ करने के प्रथम, और कर्म कर चुकने के पश्चात् मनुष्य उस कर्म से हीन ही होता है। अतः कर्म करने की स्थिति थोड़े ही समय तक रहती है—ऐसा तत्त्व से ज्ञान हो जाने पर, कर्म करने की इच्छा और अहंकार मिट जाता है। जो कर्म स्वतः आदि-अन्त वाला और अपूर्ण है, वह हमें पूर्ण नहीं कर सकता। हमारा स्वरूप तो स्वतः पूर्णकाम और तृप्त है।

जीव के वारम्बार शरीर धारण करने में, कर्म ही कारण है। वह कर्म भ्रम, अर्थात् अज्ञान से ही निर्मित है। कर्म की वास्तविकता परख लेने पर उसकी इच्छा मिट जाती है। कर्म-बन्धन काटने के लिये अथवा शरीर-निर्वाह के लिये, जो कर्म विवेकी करते हैं। वह अहंकार से रहित होकर ही करते हैं। अतः वह कर्म न बनकर, शरीर रहे तक, केवल क्रिया मात्र रहती है। उससे बन्धन न बनकर, बल्कि बन्धनों की निवृत्ति होती है।

निज से जानो पृथक सब, जहँ तक लक्षमें आय।
नारि पुरुष जगभोग जित, पंच विषय समुदाय ।। १९ ।।

नर-नारी के परस्पर प्रेम, क्रीड़ा तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि पंच विषय के जितने, भोग-समूह हैं। और मन में उठने वाले जहाँ तक संकल्प-विकल्प हैं—सब अपने चेतन पारख स्वरूप से सर्वथा-सर्वदा भिन्न समझो ।। १९ ।।

मकर न्याय नर जगत में, बीनै जाल बहूत।
बिरले ते जन बाँचिहैं, गुरु के ज्ञान सपूत ।। २० ।।

अपने बनाये हुए जाल में जैसे मकड़ी स्वतः फंस जाती है, इसी प्रकार अपने बनाये हुए विस्तृत मोह-जाल में मनुष्य स्वतः फँसा रहता

है। इस मोह-जाल से, बिरले कोई सतशिष्य, सद्गुरु का ज्ञान धारण कर बच सकेगा ॥ २० ॥

सोई विवेकी सन्त हैं, निज पर हित का भाव।
सत्यासत्य विचार करि, तजि के कुमति कुभाव ॥ २१ ॥

अपने और दूसरे के कल्याण की जिसे भावना है, वे ही सन्त विवेकी हैं। वे सत्य-असत्य विचार कर, कुबुद्धि-कुभावना त्याग कर, सत्य ग्रहण करते हैं ॥ २१ ॥

सत् स्वरूप से पृथक जो, नाशवान् दिखलाय।
समुझि शोधि गुरु बुद्धि से, हंस जीव चित लाय ॥ २२ ॥

अपने सत्य चेतन्य स्वरूप से पृथक, सब परिवर्तनशील ही दिखाता है। हंसवत् नीर-क्षीर का निर्णयी बन कर, गुरु-बुद्धि-द्वारा विचार तथा संशोधन करके, जड़वर्ग से अपने जीव-स्वरूप को अलग करे, और उसी में मन लगावे ॥ २२ ॥

गर्जी गर्जी सब मिले, अलगर्जी नहिं कोय।
बिन अलगर्जी के मिले, काज सिद्ध नहिं होय ॥ २३ ॥

संसार में जो गुरु-शिष्य मिलते हैं, उसमें अधिकांशतः शरीर के स्वार्थी-ही-स्वार्थी मिलते हैं, स्वार्थ छोड़कर, केवल कल्याण के लिये तो, कोई बिरले-बिरले मिलते हैं। परन्तु यह निश्चय समझो कि, बिना स्वार्थ कामना त्याग कर मिले, कल्याण की सिद्धि नहीं होती ॥ २३ ॥

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कहते हैं—

साखी—गुरू शिष्य दोनों चतुर, दोनों बनै अलोल।
करै परस्पर प्रीति को, तेहि को फल अनमोल।

(विशाल वचनामृत)

अर्थात्—देह के स्वार्थ में जो गुरु और शिष्य दोनों चालाक बनते हैं, उसे त्याग कर, स्वार्थ में दोनों अनारी बन जायं और दोनों

कल्याण के लिये ही परस्पर शुद्ध प्रेम करें, तब उसका फल अनमोल-मोक्ष होगा।'

स्वार्थबुद्धि जिसकी अहै, देह भोग सुख मानि।
परमारथ की सुधि नहीं, पड़े सो दुख की खानि॥ २४॥

जिसकी स्वार्थ-बुद्धि है, वह इन्द्रियों के भोग को ही सुख मानता है। उसे सत्य शोधन की सुधि नहीं रहती, वह दुःखों की खानि—उत्पत्तिस्थान रूप भोग-इच्छा में ही, सदैव पड़ा रहता है॥ २४॥

कपट दम्भ मन में अधिक, लोक बड़ाई हेतु।
तेहि सिर जग का भार लदि, करत नहीं जो चेतु॥ २५॥

सांसारिक मान-बड़ाई की प्राप्ति के लिये, जिसके मनमें विशेष कपट और बाह्य आचरणों में दम्भ—दिखावा है। यदि वह सावधान होकर, उसका सुधार नहीं करता, तो उसके शिर पर संसार-प्रपंच का बोझा लद जायगा॥ २५॥

सुख दुख जैसे आपको, तैसे अन्य को देखि।
युत विचार सोइ जानिये, गुण अवगुण जो पेखि॥ २६॥

अपने समान दूसरे को भी दुःख-सुख होते हैं, ऐसा जो समझता है। और सद्गुण-दुर्गुण का पारख करके, दुर्गुण का त्याग और सद्गुणों को जो ग्रहण करता है, उसी को विचारवान् जानो॥ २६॥

गाफिल ह्वै चूकै नहीं, नरतन मोक्षको धाम।
सावधान परिणाम लखि, रहै सदा निर्मान॥ २७॥

कल्याण-साधन करने का स्थान मनुष्य-शरीर को समझ कर, साधन में तत्पर हो, असावधान होकर के भूले नहीं। जिस शरीर संसार तथा प्राणी-पदार्थों में मोह करके, मनुष्य कल्याण-साधन से चूकता है। जाग्रत होकर उनके परिणाम को देखे कि, ये नाशवान् क्षणभङ्गुर एवं अशान्ति वर्द्धक हैं। अतः सदैव इनकी इच्छा से रहित रहकर, मोक्ष साधन-परायण बने॥ २७॥

संयम वाक्य विचार युत, मितभाषी हितकार ।
कटु अश्लील न बोलिये, यह मानव गुण सार ॥ २८ ॥

विचार पूर्वक वाक्य-संयम रखे, थोड़ा, सबके लाभ कर और मिष्ट बोले । कटु, हँसीयुत और गन्दी बात न बोले, यह मनुष्य का मुख्य गुण है । २८ ॥

शील विचार रु सत्यव्रत, वीरभाव संयुक्त ।
भक्ति विवेक विराग उर, गहे होत जिवमुक्त ॥ २९ ॥

वीर-भाव पूर्वक शील, विचार, सत्यव्रत, भक्ति, विवेक तथा वैराग्य को हृदय में धारण करने से, जीव बन्धनों से छूट जाता है ॥ २९ ॥

मानुष के लक्षण यही, शुभ गुण नित अपनाय ।
तजि विरोध सब जीव से, दृष्टि परीक्षा लाय ॥ ३० ॥

परीक्षा-दृष्टि धारण कर, शुभ गुणों का नित्य संचय करना, और सब जीवों से बैर भाव त्याग कर मधुर बर्ताव करना-यही मनुष्य का लक्षण है ॥ ३० ॥

दुष्ट के साथ भी कैसा निर्वैरत्व का बर्ताव करना चाहिये, इसे निम्न उदाहरण से सीखो—

महावीर स्वामी की क्षमा

महात्मा महावीर स्वामी, एक बार जङ्गल में समाधिस्थ बैठे थे । एक किसान अपने खोये हुए बैलों को खोजते हुए आया, और उनसे पूछा—'तुमने मेरे बैलों को देखा है ?' महात्मा शान्त रह गये, कुछ न बोले । वह खोजते हुए आगे बढ़ा, और १० मिनट में पुनः उसी ओर आ निकला । अबकी बार वहाँ उसके बैल चर रहे थे । अब तो किसान को निश्चय हो गया कि यह चोर है । अतः महात्मा को डण्डों से लगा मारने । महात्मा चुपचाप सहते रहे । फिर तो महात्मा की गम्भीरता को देख कर, वह आश्चर्जित हो रहा । और प्रभावित होकर उनके चरणों में गिर पड़ा, और कहा—'महात्मा ! क्षमा करें ।' महात्मा जी कहे—'वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो ।' धन्य ऐसे क्षमाशील पुरुष को ।

शिक्षा—इसी प्रकार क्षमाशील हमें भी बनना चाहिये।

सतत नम्र सब जीव से, यथाशक्ति हितभाव।
स्वार्थ बुद्धि परित्यागि के, परमारथ नित चाव॥ ३१॥

सदैव सब प्राणी से कोमल वर्ताव करे, शक्ति चले तक, सबके कल्याण की भावना रखे और करे। नश्वर शरीर की स्वार्थ-बुद्धि छोड़ कर, सत्य जीव के कल्याणार्थ धर्म में सदैव लगन रखे॥ ३१॥

कोमल वचन स्वभाव जेहि, शीलवान् कहि ताहि।
दुःख न देवत काहु को, समता रखि मन माहि॥ ३२॥

कोमल एवं मीठा वचन बोलना जिसका स्वभाव है, किसी प्राणी को भरसक पीड़ा नहीं पहुँचता और जो सबको स्वजाति जीव समझ कर अपने मन मे समता रखता है—उसी को शीलवान् कहा जाता है॥ ३२॥

महात्मा यीशु की क्षमा

एक दुष्ट मनुष्य महात्मा यीशु को गाली दे रहा था और वे उससे मधुर एवं मीठी बातें कर रहे थे। एक व्यक्ति ने कहा—'आप इस दुष्ट से इतनी नम्रता क्यों ले रहे हैं?' यीशु ने कहा—'वस्तु में जो रस होगा, वही तो टपकेगा!'

तात्पर्य यह है कि, बुरा मनुष्य बुरी बात कहता है, भला मनुष्य भली बात कहता है। क्योंकि जिसमें जो भाव है, वही भाव निकलेगा। भले के पास जब बुरी बातही नहीं, तब वह बुरा कहाँ से कहेगा?

हानि लाभ सुख दुःख किमि, जीवन हित क्या सार।
कैसे हो कल्याण निज, याको कहत विचार॥ ३३॥

हानि-लाभ और सुख-दुःखों की कल्पनायें जीव को क्यों सताती है? जीवन में सार क्या है? कैसे अपना कल्याण होगा?—इन भावनाओं को विचार कहा जाता है॥ ३३॥

शरीर-संसार तथा प्राणी-पदार्थों में अहन्ता-ममता रखने से हानि-लाभ एवं सुख-दुःखों की कल्पनायें जीव को सताती हैं। विषय-

वासनाओं से इन्द्रिय-मन को निवृत्त करके, अप्रभावित-स्ववश रहना-मानव जीवन में सार-लाभ है। पारखी सद्गुरु की शरण, बोध, वैराग्य तथा भक्ति के ग्रहण से जीव का कल्याण होगा।

गुरु शिष्य का प्रश्नोत्तर

शिष्य गुरु से चार प्रश्न कर रहा है—

(१) जो बढ़ती-ही-बढ़ती रहे, वह क्या है ?
(२) जो घटती-ही-घटती रहे, वह क्या है ?
(३) जो घटता और बढ़ता रहे, वह क्या है ?
(४) जो न घटे न बढ़े, वह क्या है ?

इन चारों बातों का गुरु उत्तर देते हैं—

(१) जो बढ़ती-ही-बढ़ती रहे, वह मन की 'तृष्णा' है।
(२) जो घटती-ही-घटती रहे, वह देह की 'आयु' है।
(३) जो घटता और बढ़ता रहे, वह संयोग-वियोग है।
(४) जो न घटे न बढ़े, वह भवितव्य, होनी है।

सब प्राणी निज सम लखै, करै न कोई घात।
त्यागि द्रोह समता सहित, यहै दया कुशलात ॥ ३४ ॥

मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि आदि समस्त चलते-फिरते हुए जीवों को अपने समान देखे, शक्ति चले तक किसी को चोट न पहुँचावे। शत्रुता को त्याग कर समता के सहित सबसे बर्ताव करे, यही कल्याण-कारी दया है ॥ ३४ ॥

अविनाशी जिव एकरस, अविचल सत्य स्वरूप।
ताहि जानि ठहरै सदा, जड़ से भिन्न अनूप ॥ ३५ ॥

अपना चेतन्य स्वरूप अविनाशी, एकरस, स्थिर, जड़ से पृथक, उपमा-रहित तथा सत्य पदार्थ है—ऐसा जान कर स्वतः स्थित होवे ॥ ३५ ॥

कारण कारज जगत यह, कारण नित्य रहाय।
कार्य दृश्य क्षण भंग है, उपजि विनशि समुदाय ॥ ३६ ॥

जगत कारण-कार्य रूप हैं; पृथ्वी, जल, तेज, वायु ये चारतत्त्व कारण रूप से नित्य हैं। घट, पट, बीज, वृक्ष चार खानियों की देहें, बादल, तरंग, बुदबुदा, बिजली, बवण्डर आदि-ये कार्य, दृश्य नाशवान् अनित्य हैं। कारण-समूह से कार्य उत्पन्न होकर, पुनः उसी में लय रूप नाश होते रहते हैं॥ ३६॥

शूर यथा रण क्षेत्र में, हटै नहीं पग एक।
तैसे रहि कल्याण हित, गुरु पद गहि निज टेक॥ ३७॥

शूरवीर जैसे युद्ध-क्षेत्र में एक पैर भी पीछे नहीं हटाता। तैसे अपने कल्याण के लिये, अपने में दृढ़ता धारण कर, गुरुपद—स्वस्वरूप में स्थिति करे॥ ३७॥

गुरु साधु पद सेव नित, श्रद्धा सहित अमान।
मिष्ट वचन अरु दीनता, तजकर सब अनुमान॥ ३८॥

निर्मानता और श्रद्धा पूर्वक, विवेकी साधु-गुरु के चरण कमलोंका नित्य सेवन करे। मीठा वचन बोले और आचरण में दीनता-नम्रता का बर्ताव रखे—अभिमान ऐंठन न हो, देवी-देवादिक सभी अनुमान कल्पनाओं का त्याग करे॥ ३८॥

भक्ति यही भावै जिसे, सकल पाप तेहि नाश।
शुद्ध हृदय तेहिकर सदा, पावै मोक्ष निवास॥ ३९॥

उपर्युक्त विवेकी चैतन्य साधु-गुरु की भक्ति जिसे अच्छी लगती है, उसके सभी मानसिक, शारीरिक तथा वाचिक दोष नष्ट हो जाते हैं। वीतराग पुरुष की सच्ची भक्ति करने से, साधक का हृदय सर्वदा शुद्ध रहता है, उसकी वासनायें निवृत्ति होकर, वह मोक्ष पद में निवास पा जाता है॥ ३९॥

चार तत्त्व जड़ रूप हैं तेहि से न्यारा जीव।
अजर अमर अविचल सदा, परम् विवेक गहीव॥ ४०॥

पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु—ये चारतत्त्व जड़ रूप हैं; चैतन्य जीव

इन तत्त्वों से सर्वथा पृथक् है। अजर अमर और सदैव स्थिर पद है- यह श्रेष्ठ विवेक ग्रहण करना चाहिये ॥ ४० ॥

स्व स्वरूप को बोध यह, संशय रहे न लेश।
पूर सकल पुरुषार्थ तेहि, तारण तरण हमेश ॥ ४१ ॥

चार जड़तत्व रूप पाँचों विषयों की कामना त्यागकर, अपने आप में सन्तुष्ट हो जाना—यही अपने स्वरूप चैतन्य पारख का बोध होना है। इस स्थिति में स्वरूप विषयक किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं रहता। अनादिकाल से तृप्त होने के अनेकों प्रयत्न जो यह जीव करता रहा, उसकी पूर्ति हो जाती है। ऐसे पुरुष ही दूसरे को भवबन्धनों से बचाने वाले. और स्वयं सदैव के लिये तर जाने वाले हैं ॥ ४१ ॥

निज पर हित की बात जो, सीख देत सो सन्त।
धारण करि जो जन रहे, होय सकल दुख अन्त ॥ ४२ ॥

अपने और दूसरे की कल्याणकृत जो बाते हैं, उसकी जो शिक्षा देता है, वह सन्त है। उक्त शिक्षा को जो मनुष्य धारण करके, उसी में अपना ठहराव जीवनपर्यन्त बना लेता है; उसके सम्पूर्ण दुःखों का अन्त हो जाता है ॥ ४२ ॥

मोक्ष होन के मार्ग जो, प्रथमै लेवै जान।
तब पुरुषारथ में डटे, सोई सन्त सुजान ॥ ४३ ॥

बन्धनों से मुक्ति पाने के पन्थको (पारखी सद्गुरु का सत्संग करके) पहले जानले। पश्चात् साधन के पुरुषार्थ में जो तत्पर हो जाय, वही सुजान अर्थात् समझदार, सन्त-पद को पाता है ॥ ४३ ॥

सन्त सो शान्त स्वरूप निज, गहि के होवै शान्त।
लोभ मोह कामादि तजि, जीवन करि निर्भ्रान्त ॥ ४४ ॥

सन्त वही है, जो अपने निर्द्वन्द्व स्वरूप को शरीर से पृथक् कर, उसी में सन्तुष्ट हो गया है। और पदार्थों का लोभ, प्राणियों का मोह तथा दम्पति जनित कामादिक विकारों को सर्वथा त्याग करके; अपने जीवन को भ्रम से रहित, बोधस्वरूप, स्वच्छन्द कर लिया है ॥ ४४ ॥

देह भोग नैराश्य युत, वर्तमान करि गौर।
जीवन स्वच्छ बितावते, दुःख न देते और॥ ४५॥

भूत-भविष्य की कल्पना त्याग कर, आशा और राग से रहित होकर वर्तमान में शरीर-निर्वाह लेते हैं। अपने बोध स्वरूप का निरन्तर लक्ष्य रख कर, जीवन को पवित्रता पूर्वक व्यतीत करते हैं; अपने स्वार्थ के लिये अन्य किसी को कष्ट नहीं देते—सो सन्त हैं॥ ४५॥

कहनी रहनी गहनि सम, बोलै वचन विचारि।
हन्ता ममता त्यागि के, रहतें मन को मारि॥ ४६॥

मुख का कथन, इन्द्रियों का आचरण और हृदय का बोध-भाव-ग्रहण—उनका समान रहता है; वे विचार पूर्वक ही वचन बोलते हैं। विजाति वस्तुओं में, जो मैं-मेरा पन, अर्थात् अहंकार और राग है—उसे त्याग कर और अपने मन को मार कर, शान्त रहते हैं॥४६॥

नाशवान् सब जानते, तन मन जग के भोग।
ताते प्रेम न काहु से, जस करते सब लोग॥ ४७॥

शरीर, शरीरकी अवस्था, रूप, सौन्दर्य, मनके संकल्प-विकल्पकल्पनायें तथा संसार की मान-बड़ाई, पाँचो विषयों के भोग, ऐश्वर्य आदि को भली-भाँति वे (सन्तजन) क्षणभंगुर, अनित्य समझते हैं। अतएव जैसे अन्य संसारी लोग, संसार-शरीर तथा प्राणी-पदार्थों में रागवान् बनते हैं; तैसे वे (सन्तजन) किसी व्यक्ति-वस्तु से मोह नहीं करते॥ ४७॥

मोह-निद्रा से जाग्रत कर देने वाला, एक उदाहरण दिया जाता है, पाठक उसे मनन करें—

दुःख से वैराग्य की प्राप्ति

एक ग्राम में एक ब्राह्मण रहता था। वह पुत्र-स्त्री-पोते इत्यादि कुटुम्बियों से सम्पन्न और धनाढ्य था। रात-दिन पैसा जोड़ना ही उसका धंधा था। वह न स्वयं ठीक से खाता, न दूसरे को खिलाता था। उसकी कृपणता से कुटुम्बी नौकर आदि सभी संतप्त थे। सब लोग

उसका अनिष्ट चाहते थे। वह बात-बात में क्रोध करता था। वह कामी, लम्पट, लालची, अभिमानी और दुर्व्यसनी भी था। धन-कुटुम्ब का उसे बड़ा जोश था। धर्म-कर्म करना तो जानता न था। कभी सन्तों का नमस्कार तक न किया होगा। वह लोक-परलोक तथा दीन-दुनियाँ दोनों के सुकर्मों से हाथ धोये था।

समय का फेर हुआ। गाँव में बीमारी पड़ी। उसके अधिक कुटुम्बी एक ही महीने के भीतर मर गये, धन डाकुओं ने लूट लिया। कुछ बचा धन था, उसे शासकों ने हड़प लिया। घर पर एक दूसरे बलवान् मनुष्यने अधिकार जमा लिया। बचे कुटुम्बियों ने भी उससे मुख मोड़ लिया। इस प्रकार उस ब्राह्मण का सब कुछ लुट गया और वह बहुत ही संतप्त होकर वहाँ से पागल की भाँति चल दिया।

चलते-चलते एक वृक्षके नीचे एक सन्त को बैठे देखा। यह जाकर उनके चरणों में गिर पड़ा और अपनी रामकहानी कह सुनाई। इसकी स्थिति जानकर सन्त ने कहा—"अहो! जिसपर विश्वास नहीं करना चाहिये, उन संसारी कुटुम्बियों पर तूने विश्वास किया। जो कुटुम्बी अपने मन के अनुकूल न पाकर थोड़ी-थोड़ी बात में केले के पत्ते की भाँति फट जाते हैं। परन्तु सदा जो अपना है, विश्वासनीय है, वह घट भीतर अपना ही अविनाशी चैतन्य स्वरूप है। उसका तू विश्वास नहीं किया तथा वैराग्यप्रिय सद्गुरु-सन्तोंमें प्रेम नहीं किया। जो जीव के उद्धारक हैं।"

सन्त ने पुनः कहा—तूने सद्गुण, ज्ञान, सत्संग और भक्ति रूपी धन का संचय नहीं किया; जो सदा स्ववश सर्वतोभाव से कल्याणकारी हैं। बल्कि तूने उस धन का संचय किया जो कंकड़-पत्थर और मिट्टी रूप है। जिसके संग्रह में अनेकों पाप, चिन्ता एवं छल लगे रहते हैं। अधिक धन का संग्रह अनर्थों की जड़ है। चोरी, हिंसा, मिथ्या-भाषण, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जूवा और मद्यपान—धन के कारण मनुष्य में ये पन्द्रह अनर्थ आते हैं।

श्लोक—स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥
(श्रीमद्भागवत ११।२३।१८)

धन के कमाने में, बढ़ाने में, रक्षा करने में, खर्च करने में तथा उपभोग करने में—सदैव भय, परिश्रम, चिन्ता, शोक, मोह एवं पाप होते हैं। अतएव अर्थ कहे जाने वाले इस अनर्थ का त्याग करना ही बुद्धिमान मनुष्य का कर्तव्य है। तात्पर्य यह है कि धन का अधिक संग्रह न करे, उसका सदुपयोग करता रहे; 'ज्यों आवे त्यों फेरी हो' यह गुरु-कबीर का मन्त्र स्मरण रखे। परन्तु तूने तो धन कमाकरके न दान किया, न परोपकार किया और न उसका उपभोग ही कर सका। जीवन क्षणभङ्गुर है, समय अनोखा है। ऐसे अवसर को पाकर बुद्धिमान कल्याण काही साधन करते हैं। हृदय में ही रमण करने वाला अपना शुद्ध स्वरूप पारख अविनाशी चैतन्य है। उसी में स्थित होने का प्रयत्न करना चाहिये। इत्यादि उपदेश सन्त ने दिया।

निदान उस ब्राह्मण को वैराग्य प्राप्त हो गया। वह 'अहं 'मम' की ग्रन्थि तोड़ कर स्वच्छन्द विचार में विचरण करने लगा।

वह ब्राह्मण विवेक-वैराग्य तथा स्वरूप स्थिति के ही अभ्यास में सदैव मस्त रहता। वह लोगों से बहुत कम मिलता, बोलता भी कम था। उसे कोई अच्छा ज्ञानी समझकर पूजता और कोई मूर्ख समझ कर ठुकराता। कोई तो कहता "नारि मुई गृह सम्पति नाशी। मूड़-मुड़ाय भये सन्यासी॥" देखो तो, इसका जब सर्वनाश हो गया, तब साधू बनने चला है' दुष्ट लोग उसकी निन्दा करते उस पर धूल उड़ाते। पात्र-आसन छीन लेते और मार भी देते। परन्तु वह किसी को कुछ नहीं कहता। सदैव सन्तोष धारण कर, अपने स्वरूप की स्थित-अभ्यास में सन्तुष्ट रहता।

वह सोचता "हमें जो कुछ सुख-दुःख मिल रहे है, सब हमारे पूर्व-जन्मों के कर्म-फल-भोग हैं। उसमें हम दूसरे को क्यों दोषी कहें ?

अथवा यों समझिये कि, सुख हमें उदार बनाने तथा दुःख वैराग्य बढ़ाने आता है। ये हमारे कल्याण के लिये हैं। अथवा यदि अपने दाँत से अपनी जीभ कट जाय या अपनी अगुली से अपने नेत्र दुख जायं या अपने ऊपर वृक्ष तथा घर गिर पड़े एवं चलते-चलते टकरा कर स्वयं गिर पड़े, और घाव लग जाय, तो हम किनपर क्रोध करेंगे ? जैसे अपने एक अंग से दूसरे अंग में चोट लग जाय, तो हम अपने उस अंग को नहीं तोड़ेगे कि, जिससे चोट लग गयी है। इसी प्रकार जितने जीव हैं, स्वजाति होने से सब अपने हैं। यदि किसी जीव ने हमें दुःख दे दिया, तो हम उसे कैसे दुःख देंगे ? क्योंकि वह भी अपना स्वजाति है। अपने वैरी अपने हृदय के-काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि हैं। बाहर कोई वैरी नहीं है।

और इस संसार में किसी को अपना अनुकूल मान कर, उसके प्रेम-रस्सी मे बंधना भी नहीं है। क्योंकि संसार का प्रेम निस्सार है, क्षण भंगुर है, और प्रेम (स्नेह ही दृढ़ बन्धन है।" इस प्रकार वह ब्राह्मण-मुमुक्षु वैराग्य-विचार में निष्ठ रहकर और रागद्वेष त्यागकर मोक्ष-दशा में विचरण करने लगा।

शिक्षा—संसार का राग-द्वेष बिना त्याग किये जीव का कल्याण नहीं होता।

पूर्वी

भैया स्वारथ काही साथी सब संसार बाय,
कोई न तुम्हार बाय नाय ॥टेक॥
भूले देखि कुटुम सुत दारा। सगे सबन्धी मित्र पियारा॥
तुम हो किसके कौन तुम्हारा ? करो विचार बाय ॥ कोई० ॥ १ ॥
जिसको कहता मेरी मेरी। स्वारथ वश नहिं फटते देरी॥
देखो अपने नैन उघारी, जग असार बाय ॥ कोई० ॥ २ ॥
जिनके हित तू पाप कमाया। धन को जोरि-जोरि घरलाया॥
कोई साथ न देंगे तेरे, मरती बार बाय ॥ कोई० ॥ ३ ॥

मूँठी बाँधि जगत में आये। इक दिन हाथ पसारे जाये ॥
सपने की सम्पति में, झूठा इतबार बाय ॥ कोई० ॥ ४ ॥
तजदे माया मोह सबेरे। करले भजन भक्ति यहि बेरे ॥
ऐसा समय न आवे तेरे, बारम्बार बाय ॥ कोई० ॥ ५ ॥
हुआ सबेर शाम फिर आई। ऐसे जीवन जात सिराई ॥
तजि अभिलाष मोह ममताई, करे सुधार बाय ॥ कोई० ॥ ६ ॥

सत्गुरु संगति विमुख जो, तिनकी कथा अपार।
विषय देह सत मानही, भक्ति धरम निःसार ॥ ४८ ॥

वैराग्यवान सद्गुरु-सन्तों के सत्संग से जो विपरीत हैं, उनकी लीला तो विचित्र है। वे तो विषय-भोग और शरीर ही को सत्य मानते हैं; उनकी दृष्टि में भक्ति-धर्म सब व्यर्थ हैं ॥ ४८ ॥

तिन उपदेश न भावहीं, जिन्हें विषय में प्रेम।
मनके फन्दे में पड़े, छोड़ि ऐन गुरु नेम ॥ ४९ ॥

जिनकी सांसारिक भोगों में अति आसक्ति है, उन्हें सदुपदेस अच्छे नहीं लगते। सद्गुरु के नियम--कानून को छोड़ कर, वे मन के फन्दे में पड़े रहते हैं ॥ ४९ ॥

नमाज मत पढ़ो

कहा जाता है कि, कुरान में लिखा है—"नमाज मत पढ़ो, जब कि तुम नापाक हो।" एक मुसलमान बड़ा आलसी था। वह नमाज नहीं पढ़ना चाहता था। अतः वह नमाज पढ़ने से अपना पीछा छुड़ाने के लिये, अपने साथियों के सामने "जब तुम नापाक हो" इस वाक्य को दबाकर, कुरान के इस वाक्य को दिखाने लगा कि, देख लो कुरान में लिखा है कि "नमाज मत पढ़ो।"

इस दृष्टान्त से यह लेना है कि, आलस्य त्यागकर सत्योपदेशानुसार अपना आचरण बनाने का प्रयत्न करे। अपने स्वार्थ साधने के लिये सद्ग्रन्थों के अर्थ का अनर्थ करना महा पाप है।

याते गुरु की ऐन लहि, जो चाहे कल्यान।
जीवन भर तेहि घेर में, ठहरे तजि अभिमान ॥ ५० ॥

अतएव यदि कोई अपना कल्याण चाहे, तो पारखी वैराग्यवान् सद्गुरु के ज्ञान मार्ग को ग्रहण करे; जीवन पर्यन्त उन्हीं के नियमों में चले, और शरीरादि सब विजाति पदार्थों का अहंकार सर्वथा त्याग कर स्वस्वरूप में स्थिति होवे ॥ ५० ॥

संसार वन में सद्गुरु सहायक

एक विराट वन में चार-पांच डाकू एक पथिक को पकड़ कर बहुत मारे एवं उसका सब धन छीन लिये, और उसके हाथ-पैर को बाँधकर तथा आँख में पट्टी लगा कर, उसी सघन वन में छोड़ दिये। वह इस दुःख से रो-विलख रहा था। इतने में एक दयालु पुरुष आया, और उसके बन्धन तथा आँख की पट्टी खोलकर, उसके घर का ठीक मार्ग बतला दिया; और वह सुख पूर्वक अपने घर पहुँच गया।

उपर्युक्त दृष्टान्त का सिद्धान्त यह है कि, संसार ही विराट भयावन वन है। आवागमन के चक्कर में भ्रमता हुआ, यह जीव ही पथिक है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, मद, मत्सर आदि डाकू हैं। ये जीव के सद्गुण तथा सद्ज्ञान धन को लूट कर, और विवेक-विचार रुपी नेत्र पर अज्ञान तथा मोह की पट्टी बाँधकर तथा कल्याण के पुरुषार्थ रूपी हाथ-पैर को भी बाँध देते हैं; और विराट वन रूप संसार में असहाय डाल देते हैं। अतः जीव को अपने ध्येय-धाम-कल्याण-पद तक पहुँचाने के लिये कोई साधन स्ववश नहीं रह जाता। जब विवेकवान् पारखी सद्गुरु इसे मिलते हैं। तब इस जीव के काम-क्रोधादि बन्धनों को काट कर, और ज्ञान रूप नेत्र की पट्टी खोल कर, सीधा कल्याण-मार्ग दिखा देते हैं। फिर यह जीव सुगमता से कल्याण-पद पाकर संसार-वन से छूट जाता है। अतएव जिज्ञासु को सद्गुरु की शरणं ग्रहण करनी चाहिये।

तन से शुभ कर्तव्य करि, मन में धरि गुरु ज्ञान।

धन से परउपकार करि, नाशै, दुख अज्ञान ॥ ५१ ॥

सत्य-भाषण, अहिंसा, सरलता, ब्रह्मचर्य, आर्त-रक्षा, माता-पिता, बड़े-बूढ़े, सन्त-गुरुजनों की सेवा, अस्तेय, पवित्रतादि—शरीर से अच्छे कर्म करे, और हृदय में स्वरूप-ज्ञान धारण करे। सम्पत्ति से पराये का उपकार, दान आदि करे, फलतः उसके मानसिक कष्ट और अज्ञान नष्ट हो जायगे ॥ ५१ ॥

मानव तन तेहि सफल है, जिनके उर असभाव।

सर्वोपरि सिद्धान्त जो, निज स्वरूप को चाव ॥ ५२ ॥

उपर्युक्त प्रकार से जिनके हृदय में भाव है, उन्हीं का नरतन सफलीभूत है। सबका जनैया सबसे पृथक् है, यह जीव-सिद्धान्त ही सर्वोपरि है। क्योंकि जीव ही सबकी कल्पना करने वाला, सबका ठहराने वाला है। साखी—जीव बिना नहीं आतमा, जीव बिना नहिं ब्रह्म। जीव बिना शीवो नहीं, जीव बिना सब भ्रम ॥ क० १० ॥ अतः सर्वज्ञाता निजस्वरूप में प्रेम करो ॥ ५२ ॥

दुख अनन्त बहुकालसे, लगे रहे जो साथ।

तेहि को गुरु परिचय दिये, मेटि के दशा अनाथ ॥ ५३ ॥

अनादि काल से जीव के साथ में जो तीन तापके दुःख लगे रहे। उसके कारण का सद्गुरु परिचय दिये, तथा उस दुःख रूप अज्ञान-दशा को मिटाकर कृतार्थ कर दिये ॥ ५३ ॥

जब तक यह प्रारब्ध है, तब तक रहे सचेत।

मन प्राणी व्यवहार जग, कबहुँ न होय अचेत ॥ ५४ ॥

जब तक यह स्थूल शरीर है, तब तक बन्धनों से सावधान रहे। अपने मन के जाल, संसार के प्राणियों के राग-द्वेषकृत जाल तथा सांसारिक व्यवहार के जाल में कभी असावधान होकर न फंसे ॥५४॥

मनन प्रवाह प्रवीण अति, बहे जीव तेहि धार।

द्रष्टा कोई सुजन जन, करि विचार ह्वै पार ॥ ५५ ॥

संकल्प-तरंग में जीव अति चंचल है; उन्हीं तरंगों में जीव निरन्तर बहते रहते हैं। कोई-कोई ज्ञानी पुरुष; विचार करके, द्रष्टा बन कर, मन के प्रवाह से पार होते हैं॥ ५५॥

संसार के जितने सुख हैं, सबके परिणाम में घोर दुःख है। मन को एकाग्र कर शान्त होने में ही परम एकरस सुख है, अतः मनोनिग्रह ही में लक्ष देना चाहिये।

मनोनिग्रह ही परम् सुख है

एक राजा के घर में एक नवयुवक लड़का नित्य कोई काम करने के लिये जाया करता था। एक दिन घर के भीतर जैसे गया, तैसे रानी को बैठी हुई देखा; और देखते ही मोहित हो गया। किसी प्रकार काम करके अपने घर आया और उसीकी चिन्ता में खाट पर पड़ गया। उसकी स्त्री ने चिन्ता का कारण पूछा। उसने अपनी सारी मनोदशा स्त्री से कह दी, और कहा कि, 'मैं रानी से मिले बिना मर जाऊँगा।' उसकी स्त्री ने अपने पति की चिन्ताजनक बात रानी से जाकर ज्यों-की-त्यों कह दिया। रानी ने कहा—'जाकर अपने पति से कह दे, कि वह नदी के तट पर चलकर रातदिन एक लक्ष्य से ध्यान धारण करे, फिर मैं किसी दिन उससे मिलूँगी। यह वार्ता स्त्री जाकर अपने पति से कही। वह नदी पर जाकर अविचल आसन जमा दिया।

उसके सामने कोई आकर चाहे कोई पदार्थ रख जावे और चाहे रखे हुए पदार्थ उठा ले जावे। चाहे कोई आकर निन्दा करे और गाली बके, चाहे कोई प्रशंसा करे—वह सबकी ओर से चिन्ता-हीन होकर, समाधि में ही दृढ़ रहे। उसके दर्शन के लिये भीड़-पर-भीड़ आने लगी। एक दिन राजा भी सुना कि, नदी पर एक महात्मा जी आये हैं, वे रात-दिन समाधिस्थ रहते हैं। अतः वह भी दर्शनार्थ आया।

एक दिन रानी भी राजा से आज्ञा लेकर महात्मा के दर्शनार्थ आयी; और सबको हटवा कर, केवल अकेली महात्मा के पास

पहुँची। रानी ने कहा—'हे महात्मन्! जिस रानी के लिये आप रात दिन समाधि-अभ्यास करते हैं, वही मैं रानी आप से मिलने आयी हूँ। आप आँख खोलिये।' उसने कहा—'हे रानी! अब तेरी आवश्यकता नहीं है। तू अपने घर चली जा। मैं अविचल सुखदायी शान्ति रूपी रानी को पा गया। अब मल-मूत्र की पात्री रूपी क्षण भंगुर तुझ रानी की आवश्यकता नहीं है।'

तात्पर्य यह है कि, मनोनिग्रह करते-करते शान्ति का एकरस सुख उसे मिलगया, और उसकी दृष्टि में संसार फीका हो गया। वास्तव में मनका भटकते रहना ही दुःख है, और उसका शान्त हो जाना ही नित्य-सुख है। इस विषय को कोई केवल बात-बात से नहीं समझ सकता। अभ्यास करके स्वतः देखना चाहिये।

नर नारी सुत बन्धु गण, सब स्वारथ के यार।
सुख चाहत यक यक से, सुख बिन होते न्यार॥ ५६॥

स्त्री-पुरुष, पुत्र, भाई तथा कुटुम्ब-समूह या प्राणी मात्र—सब अपने स्वार्थ के प्रेमी हैं। एक दूसरे से सुख-पदार्थ चाहते हैं; सुख न मिले, तो केले के पत्ते के समान तुरन्त फट जाते हैं॥ ५६॥

सो सुख दुःख स्वरूप है, मानि मानि जिव बन्ध।
बिन सद्गुरु सद्ज्ञान के, जानि न जा मन सन्ध॥ ५७॥

उपर्युक्त सांसारिक सुख यद्यपि में दुःख स्वरूप है। तथापि भूलवश, उसे सत्य सुख मान-मान कर जीव बंधा है। विवेकी सद्गुरु के पारख ज्ञान बिना, मन की चाल जानने में नहीं आती॥ ५७॥

जो जन सदा विवेक रत, जड़ चेतन निरवार।
करत रहें खरशान नित, सृष्टि मनोमय छार॥ ५८॥

जो सुज्ञजीव सदैव विवेक में प्रेम रखने वाले हैं, वे जड़-चेतन का निर्णय करते रहते हैं। वे निरन्तर विवेक के खरशान पर चढ़ाकर, मनोमयसृष्टि काम, क्रोध, लोभादि को मिटाते रहते हैं॥ ५८॥

शेष आप जस आप है, शान्त स्वरूप अखण्ड ।
तैसे रहि निजरूप में, जहाँ न कोई उदण्ड ॥ ५६ ॥

निर्द्वन्द्व, अखण्ड, जैसा अपना चेतन स्वरूप है, तैसे (सबको त्यागकर) शेष अपने स्परूप में स्थिति करना चाहिये । जहाँ पर किसी प्रकार हलचल नहीं है ॥ ५६ ॥

परम् लाभ नर जन्म को, निज स्वरूप रत होय ।
सकल दीनता नष्ट ह्वै, निज पद पावै सोय ॥ ६० ॥

मनुष्य जीवन का श्रेष्ठ लाभ—स्वस्वरूप पारख में स्थित होना है। उसकी सम्पूर्ण गरीबी नष्ट हो जाती है, ओर वह अपने अविचल-मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है ॥ ६० ॥

मुक्ति हेतु पुरुषार्थ करि, सब मानन्दी टारि ।
नारि पुरुष सम्बन्ध तजि, ब्रह्मचर्य को धारि ॥ ६१ ॥

विजाति पदार्थों की सब अनन्ता-ममता मिटाकर, मोक्ष-प्राप्ति के लिये साधन-प्रयत्न करना चाहिये । स्त्री-पुरुष के पारस्परिक काम-भोग को त्याग कर, अखण्ड ब्रह्मचर्य ब्रत का पालन करना चाहिये ॥ ६१ ॥

जहँ तक निज से मानिये, सो सब मन का रूप ।
देह गेह वर्ण आश्रम, पंच विषय जड़ रूप ॥ ६२ ॥

अपने मन की कल्पना से जीव जहाँ तक अहंता-ममता करता है, वह मानन्दी का ही स्वरूप है । शरीर, घर, वर्ण आश्रम, पंचविषय-भोग—सभी जड़ पदार्थ अपने से पृथक हैं ॥ ६२ ॥

मन इन्द्रिय से पार है, आपहिं आप असंग ।
ऐसा जानि स्वरूप को, तजि विजाति को संग ॥ ६३ ॥

अपना चेतन स्वरूप मन-इन्द्रियों से परे, स्वतः अकेला है, इस प्रकार स्वस्वरूप को जान कर, चित्त से शरीरादि जड़-पदार्थों का संग-राग त्यागो ॥ ६३ ॥

जाके शील विचार उर, अरु परिणाम को ज्ञान।
बन्धन सकल उपाधि गत, ठहरै निजपद जान ॥ ६४ ॥

जिसके हृदय में शील, विचार और परिणाम का ज्ञान है, उपाधि रूप सम्पूर्ण बन्धनों को त्याग कर, वह अपने ज्ञानस्वरूप में स्थित हो जाता है ॥ ६४ ॥

निश्चय दुख छूटनहितू, निज स्वरुप का बोध।
साधु गुरू की भक्ति लहि, करै अहर्निश शोध ॥ ६५ ॥

निश्चय पूर्वक दुःखों से छूटने के लिये, स्वस्वरूप चैतन्य पारख का बोध करना चाहिये। वीतराग संत-गुरु की भक्ति करते हुए, रात-दिन अपने दोषों-बन्धनों का संशोधन और निष्कासन करता रहे ॥६५॥

दान धर्म अरु भक्ति करि, दया विचार समेत।
संस्कार शुचि ताहि के, सुयश मोक्ष सुख लेत ॥ ६६ ॥

अन्न, वस्त्र, औषध, जल, द्रव्य, विद्या, ज्ञान आदि का दान करे; सद्गुरु-सदाचार रूपी धर्म में तत्पर रहे; और वैराग्यवान् संत-गुरु की सेवा-आज्ञा-पालन करके, उपदेश ग्रहण करे। कीड़े से हस्ती तक—जीव मात्र पर दया धारण करे, और सब व्यवहार विचार पूर्वक बरते। ऐसे साधक के अन्तःकरण के संस्कार शुद्ध हो जाते हैं, और संसार में भले मनुष्यों-द्वारा कीर्ति को प्राप्त होते हुए, वह मोक्ष-सुख में रमण करता है ॥ ६६ ॥

'द' के तीन अर्थ

एक ग्राम में तीन व्यक्ति ऐसे रहते थे, जिनमें एक अधिक विषयी—कामी था। दूसरा धन का अधिक लोभी और तीसरा क्रोधी—जीव-हिंसकी था। तीनों के कुछ शुभ-संस्कार उदय हुए, और ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से, वे गुरु की खोज में, घर से निकल पड़े। घूमते-फिरते एक वैराग्यवान सन्त के पास पहुंचे। ब्रह्मचर्य धारण करके तीनों उन सन्त की सेवा करने लगे। कुछ दिन के पश्चात, तीनों ने सन्त से दीक्षा लेने के लिये प्रार्थना किये।

सन्त ने तीनों व्यक्तियों के कानों में एक ही अक्षर कह दिया 'द'। दीक्षा के पश्चात् तीनों पृथक-पृथक बैठ कर विचार करने लगे कि 'गुरु ने केवल 'द' कह दिया है, इसका तात्पर्य क्या होता है ?' विचारते-विचारते वे लोग इस प्रकार निश्चय किये—जो अधिक रजोगुणी, विलासी एवं विषयासक्त था, उसने सोचा कि "हम अधिक इन्द्रिय-लम्पट हैं। अतएव गुरुने 'द' कहकर इन्द्रियों पर 'दमन करने को कहा है।" अतएव लोभी ने सोचा "हम धन का अधिक लोभ करके बहुत द्रव्य जोड़ रखे हैं। अतएव गुरु ने 'द' कहकर, हमें दान करने की शिक्षा दी हैं।" तीसरे क्रोधी ने सोचा "हम सदैव निर्दयता पूर्वक जीवों को मारते-खाते रहे। हमारे में क्रोध एवं हिंसावृत्ति अधिक है। अतएव गुरु ने 'द' कहकर जीवों पर 'दया' पालन करने का उपदेश किया हैं।"

इस प्रकार तीनों शिष्य एक 'द' अक्षर का अपने-अपने लिये उपयोगी अर्थ लगा कर, साधन में लग गये। और काम, लोभ तथा क्रोध-(हिंसा) शत्रु को जीत कर, ज्ञान-प्राप्ति के अधिकारी हुए।

"देव दनुज मानव सभी, लहैं परम कल्यान।
पाले जो 'द' अर्थ को, दमन दया अरु दान ॥"

अस मुक्ती जो चाहता, विष सम विषयन त्याग।
क्षमा शील सद्गुण गहे, सत्य सुधामृत पाग ॥ ६७ ॥

इस प्रकार जिसे मुक्ति की सच्ची इच्छा हो, उसे विषके समान विषय भोगों को छोड़ना होगा। और क्षमा, शील, आदि सद्गुणों को अमृत के समान धारण कर, सत्य स्वस्वरूप में तद्गत होना होगा ॥ ६७ ॥

मद प्रमाद आलस तजै, शान्ति निकेत निवास।
यहि विधि नित अभ्यास करि; श्रवण मनन करि खास ॥ ६८ ॥

मुख्य जीव के उद्धार के लिये, सत्य शब्दों का श्रवण-मनन करते हुए, इस प्रकार अभिमान, भूल और आलस्य को छोड़ कर निरन्तर

स्वरूपस्थिति का अभ्यास करे; और शान्ति-निकेतन--स्वस्वरूप में निवास करे ॥ ६८ ॥

गुण अवगुण निज की तरफ, देखि देखि निशियाम ।
गुण धारै अवगुण तजै, यही सयानो काम ॥ ६९ ॥

अपने शरीर-स्वभाव के गुण-अवगुणों को रात-दिन देखे । सद्गुण धारण करे और दुर्गुण त्याग करे--यही ज्ञानी का कर्तव्य है ॥ ६९ ॥

सार तो रख लिया

एक बार गाँधी जी लन्दन जा रहे थे । मार्गमें एक उजड्ड-स्वभाव का अंग्रेज मिल गया । मार्ग में बात-बात पर वह गाँधी जी को जली-कटी बातें सुनाता रहा । एक बार उसने गाँधी जी के ऊपर एक व्यंग कविता लिखकर भेजी । गाँधी जी ने उसे बिना पढ़े ही रद्दी की टोकरी में डाल दी; और उसमें जो पिन लगी थी; उसे निकाल कर डिबिया में रख ली । अँग्रेज ने कहा--"गाँधी जी ! उसमें कुछ सार भी है, उसे पढ़िये तो !" गाँधी जी ने हँसकर कहा--'सार तो मैंने पहले ही निकाल कर डिबिया में रख ली ।' वह अपना-सा मुँह लेकर रह गया ।

शिक्षा--बड़े पुरुष दूसरे पर, सदैव क्षमा से विजय करते हैं । वे सबके दोषों का त्याग करते हुए, गुणों का ग्रहण करते हैं ।

सावधान मन से सदा, विषयासक्तिहिं छोड़ि ।
निज स्वरूप निश्चय करे, जग बन्धन को तोड़ि ॥ ७० ॥

विषय-वासना का त्याग करके धोखेबाज मन से सदैव सावधान रहो; और जगत जंजालों को तोड़ कर, अपने चैतन्य स्वरूप को, सबसे पृथक निश्चय करते रहो ॥ ७० ॥

मन्दिर देह को जानिये, चेतन जिव सरकार ।
तजि अनुमान अरु कल्पना, आप स्वतः निरधार ॥ ७१ ॥

इस शरीर को मन्दिर समझो, और इसमें रहने वाला चैतन्य जीव ही सम्राट है । इसके ऊपर जो अन्य कर्ता-धर्ता देवी-देव का अनुमान

या कल्पना करते हो, उसको छोड़ कर, अपने आप स्वतः असंग स्वरूप में स्थित होओ ॥ ७१ ॥

तन हन्ता ममता नशै, गुरू ज्ञान को पाय।
क्षण भंगुर यह जगत है, दुखमय सदा दिखाय ॥ ७२ ॥

पारखी सद्गुरु से स्वरूपज्ञान को प्राप्तकर, शरीर के अहंकार और ममत्व नष्ट हो जाते हैं। यह संसार उसे सदैव नाशवान् दुःखरूप दिखाई देता है ॥ ७२ ॥

दुख सुख द्रष्टा जीव है, मन इन्द्रिन के पार।
मात्र भूल निज रूप के, विषय सुखों को धार ॥ ७३ ॥

यह अविनाशी जीव सुख-दुःख तथा मन-इन्द्रियों का साक्षी, और उससे परे है। केवल अपने स्वरूप के अज्ञान से ही, विषयों में सुख की कल्पना करके, उसे पकड़ता है ॥ ७३ ॥

भूल त्याग सुख भास नशि, तब निज में ठहराव।
यकरस ऐसे भाव गहि, आवागमन अभाव ॥ ७४ ॥

स्वस्वरूप का अज्ञान मिट जाने पर, विषयों में सुख की प्रतीति नहीं रहती। तब विषय-वासनाओं से छूटकर, जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। विषय-वासना-रहित, एकरस स्वरूप लक्ष्य में जीवन यापन करते हुए, प्रारब्धान्त में गमनागमन से रहित होकर, जीव शुद्ध विदेह-मुक्त हो जाता है ॥ ७४ ॥

दुख छूटन के भाव को, सबहिन का यहि ध्येय।
बिन सद्गुरू सत्संग के, जानि न पावत तेय ॥ ७५ ॥

जीवमात्र की इच्छा एवं उद्देश्य, दुःखों से छूटने की है। परन्तु विवेकी सद्गुरु-सन्तों के सत्संग-बिना, मनुष्य दुःखों से छूटने का मार्ग नहीं जान पाता ॥ ७५ ॥

अज्ञानी जीव की उल्टी मति

एक घर में आग लगी थी। लोग बुझाने के लिये इकट्ठे हो गये। पास में टीपों-के-टीपे मिट्टी का तेल रखा था। लोग समझे यह भी पानी

के समान द्रव पदार्थ है। अतः इसके डालने से आग अवश्य बुझ जायगी। अतएव मिट्टी के तेल को वे लोग लगे आग में डालने। जितना उसे आग में डालते, उतनी ही धूँ-धूँ करके आग बढ़ती गयी। इतने में समझदार मनुष्य आये, और उन लोगों ने पानी डाल कर आग बुझाया।

सिद्धान्त—विषय-भोगों की इच्छा ही अग्नि है। जीव का अन्तःकरण घर है। विषय-भोग-पदार्थ मिट्टी का तेल है। तात्पर्य यह कि, जीव के अन्तःकरण रूपी घर में, भोगों की इच्छा रूपी अग्नि लगी है। अज्ञानी विषय भोगों को भोग कर, उस भोगेच्छा को तृप्त करना चाहता है। परन्तु भोगों को भोगने से तो इच्छा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही है। विवेकी जन भोगेच्छा में भोग रूपी आहुति न डाल कर, त्याग तथा सन्तोष रूपी जल डाल देते हैं। अतः उनकी भोग-इच्छा सदा के लिये शान्त हो जाती है।

सारांश—दुःखों से छूटनेकी इच्छा सभी को है। परन्तु सद्गुरु ज्ञान बिना, दुःखों से छूटने का मार्ग नहीं जानते। सब लोग भोगों के सेवन से दुःख-निवृत्ति—सुख की प्राप्ति समझते हैं। परन्तु वास्तव में भोगों का त्याग और सन्तोष-धारण ही दुःख-निवृत्ति—सुखप्राप्ति का मार्ग है। सद्गुरु श्री विशाल साहेब भवयान में कहते हैं—

"जगत ज्ञान गुरु ज्ञान से, बहुत भेद लखि लेव।
जगत भोग सुख मानई, गुरू भोग तजि देव॥
गुरू कथन प्रत्यक्ष है, दुख सकलो मिटि जाय।
जगत भोग भरमत फिरै, कबहुं न सुखी देखाय॥"

सत्संगत में बैठि के, योग्य अयोग्य विचार।
त्याग करन के कर्म जो, ताको दिल से टार॥ ७६॥

विवेकी सन्तों के सत्संग में बैठ कर, उचित-अनुचित का विचार करो। त्याग करने योग्य अनुचित कर्म—चोरी, हिंसा, व्यभिचार, अभक्ष्य-भोजन, गाली, निन्दा, झूठ, ईर्ष्या, अभिमान, छल, कपट, क्रोध, मद, मोहादि को हृदय से सर्वथा त्याग करो॥ ७६॥

अन्तःकरण पवित्र हित, सत साधन मन लाय ।
तब पावै निज स्थिति, सफल जन्म तेहि काय ॥ ७७ ॥

अन्तःकरण शुद्ध करने के लिये विवेक, वैराग्य, भक्ति आदि सद्-साधनों में लगन लगानी चाहिये। तभी जीव स्वस्वरूप की स्थिति प्राप्त करता है और उसी का नर-जन्म सफल होता है ॥ ७७ ॥

परदोषन को छोड़ि के, निज दोषन को देखि ।
परखि परखि तिसको तजै, भूल आपनि लेखि ॥ ७८ ॥

दूसरे के दोषों से दृष्टि घुमा कर, अपने दोषों को निरन्तर देखे। अपने दिन-रात के दोषों-भूलों का हिसाब करता रहे, कि आज चौबिस घण्टे में हमसे कितनी गल्तियाँ हुईं; और परीक्षा करके ग्लानि पूर्वक उन्हें त्यागता रहे ॥ ७८ ॥

बुरा न पाया कोय

एक जिज्ञासु किसी विवेकी महात्मा के पास गया, और कहा कि--'आप मुझे अपना शिष्य बनालें।' महात्मा ने कहा--'संसार से खोज-कर कोई बुरी वस्तु ले आओ।' जिज्ञासु बुरी वस्तु खोजने चला। कई दिन खोजने परभी, जब कोई बुरी वस्तु नहीं मिली; तब आकरकहा-'गुरुदेव ! संसार में कोई बुरी वस्तु मुझे नहीं मिली।' गुरुदेव ने परीक्षार्थ पूछा—'क्या विष्ठा भी बुरी वस्तु नहीं है?' जिज्ञासु ने कहा—'सरकार ! विष्ठा का पहला रूप तो उत्तम अन्न या पकवान था। वह हम मनुष्यों के मुख का सम्बन्ध करके ही विष्ठा बना। अतः उत्तम को भी बुरा बनाने वाले हम मनुष्य ही बुरे हैं*। जिज्ञासु की बात पर गुरु प्रसन्न हो गये; और उसे अपना शिष्य बना लिये।

शिक्षा—शिष्य साधू या गुरु या मनुष्य बनने का अधिकारी तथा

---

* उत्तम को भी बुरा बना कर, ईर्ष्या-वश मनुष्य अपने मुख से पर-निन्दा करता है। जो महा पाप है।

परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा। पर निन्दा सम अघ न गरिसा॥ (मानस)

कल्याण का पात्र वही होता है, जिसे अपने दोषों के सामने दूसरे के दोष नहीं दिखते, इसी से कहा है--

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न पाया कोय।
जो दिल ढूढा आपना, मुझसा बुरा न कोय ॥

परवृत्ती निरवृत्ति अरु, साधक बाधक शोध।
योग्य सहायक लेय करि, त्यागि सकल अनुरोध ॥ ७६ ॥

प्रवृत्ति-निवृत्ति क्या है, तथा साधक-बाधक किसे कहते हैं, इसका विवेक करके, कल्याणके उचित सहायक अंशों को लेकर, साधन में तत्पर रहे। शेष सब विघ्नों को दृढ़ता से हटाता रहे ॥ ७६ ॥

जिस निवृत्ति के परिणाम में बन्धन खड़ा हो जाय, वह निवृत्ति ही प्रवृत्ति हैं। और जिस प्रवृत्ति के परिणाम में निर्वासना, निर्बन्धता, स्वच्छन्दता प्राप्त हो, वह प्रवृत्ति भी निवृत्ति ही है।

क्रिया मात्र का त्याग कर और हाथ-पैर बटोर कर बैठ जाना ही निवृत्ति नहीं है। विचार, विवेक और साधन-रहित शुष्क ज्ञान शुष्क वैराग्य केवल अभिमान और दम्भ ही बढ़ाते हैं। इसी प्रकार भक्ति और धर्मके नाम पर अयोग्य प्रवृत्ति के जाल में फँस कर, अच्छी तरह अपने को व्यवहार में बाँध देना भी, मुमुक्षु के लिये कम हानिकर नहीं है।

वैराग्य-प्रिय पारखी सद्गुरुदेव तथा सन्तों की यथायोग्य सेवा-आज्ञापालन आदि करते हुए, जहाँ, जिस समाज में रहे, वहाँ के योग्य व्यवहार में हाथ बँटाते हुए, अपने निवृत्ति-मार्ग को पुष्ट करे। वैराग्य-प्रिय मुमुक्षु को अधिक व्यावहारिक प्रवृत्ति तथा चिन्ता से दूर होना चाहिये। अन्तिम स्थिति तभी सम्भव है।

तभी सफलता जानिये, मोक्ष हेतु पुरुषार्थ।
दुःख अमित जो जगत में, मेटि होय निःस्वार्थ ॥ ८० ॥

मोक्षप्राप्ति के लिये किया गया प्रयत्न तभी सफल हुआ जानना चाहिये, जब संसार के अज्ञानकृत अनन्त दुःखों को नष्ट कर, जीव निष्काम हो जाय ॥ ८० ॥

किसी से राग करके दुःख होता है। किसी से द्वेष करके दुःख होता है। किसी की आशा करके दुःख होता है। कहीं प्रलोभन-वश, संसार के जंजालों में फँस कर दुःख होता है। फलतः कामना करके ही दुःख होता है। मुक्ति-इच्छुक को चाहिये कि वह संसारकृत जंजालों के दुःखों में न पड़े। सबसे निष्काम रहे। गुरुदेव श्री विशाल साहेब कहते हैं—

"जो इच्छा छोड़े फिरे, तेहि को को यहि लीन ?"

दुःख का कारण अपना अज्ञान

एक लड़का खेलता-खेलता एक काँच के मन्दिर में चला गया। वह काँच की दीवार में अपना प्रतिबिम्ब देखकर समझा 'यह कोई दूसरा लड़का है।' लड़के ने शब्द किया, तो उसका शब्द प्रतिध्वनि होकर प्रतिबिम्ब-द्वारा सुनाई पड़ा। वह प्रतिबिम्ब को गाली देने लगा। फिर प्रतिध्वनि सुनकर वह समझा कि यह हमें गाली देता है। लड़के ने प्रतिबिम्ब को मारने के लिये हाथ उठाया। उधर प्रतिबिम्ब की ओर से भी हाथ उठा दिखाई दिया। जब प्रतिबिम्ब रूप कल्पित लड़के को वह किसी प्रकार भी नहीं हटा सका। तब रोते हुए माता के पास आया और अपना हाल कह सुनाया कि 'मन्दिर में एक लड़का है, वह हमें गाली देता तथा मारने को हाथ उठाता है। माता ने कहा—"बेटा। तेरे अतिरिक्तमन्दिर में अन्य कोई लड़का नहीं है। वह मन्दिरकी दीवार में दिखता हुआ लड़का तेरा प्रतिबिम्ब (परछाइँ) है। तू जैसी-जैसी चेष्टा करता है, प्रतिबिम्ब-द्वारा वैसी ही प्रतीत होती है। करोड़ों यत्न करने पर भी तू प्रतिबिम्ब को हटा या मिटा नहीं सकता। परन्तु अपने आप को ठीक कर ले, तो प्रतिबिम्ब तेरा कुछ न कर सकेगा। तू प्रतिबिम्ब को यदि भली दृष्टि से देखेगा, तो प्रतिबिम्ब भी तुझे भली दृष्टि वाला दिखाई देगा और यदि तू उसे बुरी दृष्टि से देखेगा, तो वह तेरे को बुरी दृष्टि वाला ही दिखाई देगा।

ऊपर के दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य राग-द्वेष की

दृष्टि वाला देहाभिमानी है। वह जहाँ-जहाँ जाता है, जहाँ-जहाँ रहता है, उसे ज्ञात होता है कि "हमारा लोग अपमान या अनादर करते हैं, हमें लोग तुच्छ-दृष्टि से देखते हैं।" क्योंकि उसका अन्तःकरण मलिन है। इस प्रकार उसकी दूसरे पर सन्देह की भावना तबतक नहीं जाती, जब तक वह ज्ञान-वैराग्य-द्वारा अपने अन्तःकरण को बिलकुल शुद्ध नहीं कर लेता।

जो ज्ञानी पुरुष हैं, जिनका अन्तःकरण निर्मल है। उन्हें संसार में कोई भी प्राणी अपना बैरी, अनादर-अपमान करने वाला नहीं दिखता।

सारांश—जब तक साधक अपने आपको ठीक नहीं करता, तब तक ही उसके बैरी रहते हैं, और वह राग द्वेष की कल्पना करता है। जब अपने को ठीक कर लेता है, तब उसके न राग-द्वेष रहते हैं और न बैरी ही।

याहि हेतु सब साधु गुरु, युक्ति ज्ञान निर्माण।
जेहि ते हो कल्याण निज, सब जीवन के प्राण॥ ८१॥

इसीलिये सब विवेकी साधु-गुरू, ज्ञान की अनेक युक्तियाँ शोध रखे हैं। जिससे जीव को शान्ति पद की प्राप्ति हो, जो शान्ति (दुःख-हीनता) सब जीवों को प्राणप्रिय है॥८१॥

सत्यज्ञान परदान करि, नशि अज्ञान महान।
ताते जग में पूज्य सोइ, सबके हित जेहि ध्यान॥ ८२॥

विवेकी सन्त-गुरु, सत्य स्व-स्वरूप-ज्ञान का दान करके, महान अविद्या का नाश कर दिये। अतएव जीवमात्र का कल्याण जो चाहते हैं, वे सन्त-गुरु ही जगत् में पूज्य हैं॥८२॥

परम हितैषी जानि तेहि, गहि तेहि के आधार।
माँझी तरणी भाव जिमि, पार करत भव धार॥ ८३॥

उन वैराग्यप्रिय साधु-गुरु को महान हितकारी जानकर, उन्हीं का

आश्रय पकड़ो। करणधार जैसे नौका को पार करता है, तैसे विवेकी सद्गुरु-सन्तरूप करणधार, जीवन नैया को संसार-प्रवाह से पार कर देते हैं ॥८३॥

निर्णय वच श्रद्धा सहित, करै सदा अभ्यास।
सुखाध्यास को नाश करि, आपहिं आप निवास ॥ ८४ ॥

वैराग्यवान् के निर्णय-वचनों को श्रद्धा-भक्ति सहित श्रवण करे, और तदनुसार ही साधन करे। इस प्रकार विषयासक्ति का नाश करके, अपने आप पारख चैतन्य स्वरूप में शान्त होवे ॥८४॥

देह भोग प्रारब्ध जो, आपहिं भोगि नशाय।
केवल रहस्य निराशता, पुरुषारथ मन लाय ॥ ८५ ॥

स्थूल शरीर के सुख-दुःखादि प्रारब्ध-भोग अपने आप भोग करके एकदिन समाप्त हो जायँगे। विवेकी को केवल नैराश्य-रहनी के पुरुषार्थ में मन लगाना चाहिये ॥८५॥

तात्पर्य यह है कि विवेकी को शरीर-निर्वाह के लिये नहीं झंखना है। प्रारब्धानुसार इसका निर्वाह होता जायगा। उन्हें तो केवल संसार, शरीर और भोगों की आशा-वासना मिटाने के पुरुषार्थ में ही निरन्तर डँटना है। आशा-कामना से रहित पुरुष के लिए, शरीर-निर्वाह तो बहुत साधारण बात है।

सद्गुण विरति विवेक सह, धर्माचरण गहाय।
धारण करि पुरुषार्थ यहि, मनोविकार हटाय ॥ ८६ ॥

विवेक-वैराग्यादि सद्गुणों के सहित, धर्म का आचरण ग्रहण करे। इस पुरुषार्थ को धारण करके, मन के दोषों को दूर करे ॥८६॥

प्रश्न—मन के विकारों को दूर करने के लिये, सरल साधन क्या है?

उत्तर—वैराग्यभाव तथा अपनी मृत्यु का स्मरण करने से, सब मनोविकारों का शमन होता है।

मृत्यु का स्मरण मन मारने का उपाय

एक महात्मा शरीर से हृष्ट-पुष्ट, नवयुवक तथा देखने में रूपवान् भी थे। कोई गृहस्थ सज्जन उनके दर्शन करने आये। महात्मा को देखकर वे आश्चर्जित हो गये, और उन्होंने प्रश्न किया—"महात्मन् ! आप ऐसी चढ़ती जवानी में अपने मन को कैसे रोक सकते होंगे ?" महात्मा ने हँस कर कहा—"भैया ! इसका उत्तर फिर किसी दिन दिया जायगा।"

वे सज्जन कई दिन महात्मा के पास आते-जाते रहे। एक दिन पुनः आये। जब वे अपने घर जाने लगे, तो महात्मा ने कहा—"भैया ! जो करना हो, करलो, कल प्रातःकाल तक तुम मर जाओगे।।" वह सज्जन बहुत घबराया, और अपने घर आकर कुछ दान-पुण्य किया, तथा शान्त होकर चारपाई पर लेट गया। मृत्यु के भय से रात भर नींद न लगी। प्रातःकाल हुआ, फिर दोपहर हुआ, संध्या भी आगयी। किन्तु उसकी मृत्यु न हुई। वह सज्जन महात्मा के पास जाकर कहा— "महाराज ! आप भी झूठ बोलते है। मेरी मृत्यु तो नहीं हुई। "महात्मा ने कहा—"ये सब वातें छोड़ो। अच्छा। यह बताओ कि कल जब से हमारे पास से गये हो, तब से इस समय तक, कितना पाप किये हो, और कितना विषयासक्त रहे ?"

उसने कहा—"महात्मन् ! मृत्यु के भय से हम वैसे भयभीत थे, फिर वहाँ विषय-वासना में कहाँ चित्त जाय, और मृत्यु निकट जानकर कोई अन्य पाप भी नहीं हुआ।" महात्मा ने कहा—"देखो, तुम्हें अपनी मृत्यु निकट दिखने से, जैसे कोई पाप या विषय-वासना तुम्हारे मन में नहीं उत्पन्न हुई। इसी प्रकार हम अपनी मृत्यु सदा निकट देखकर, संसार तथा विषय-वासना से उदास रहते हैं।" संत की ये बात सुनकर, सज्जन के चित्त का समाधान हो गया।

शिक्षा—देहाभिमान से ही, कामादि वासनायें उत्पन्न होती हैं। विवेक पूर्वक शरीर की वास्तविकता, अर्थात् इसकी अपवित्रता, दुःख-

रूपता, क्षणभंगुरता एवं जड़रूपता को भलीभाँति जान लेने पर, कामादिक समस्त वासनायें समूल नष्ट हो जाती हैं।

निज निज मत का पक्ष तजि, सत्यासत्य विचार।
जो यथार्थ धारण सोई, बँधै न वाक्य मँझार ॥ ८७ ॥

अपने-अपने मत-पन्थों का पक्षपात त्याग कर सत्य और असत्य का विवेक करना चाहिये। जो सत्य हो, वह ग्रहण करना चाहिये, वाणी जाल के प्रलोभन में पड़कर, असत्य धोखाधार में नहीं फँसना चाहिये ॥८७॥

जीव पृथक कल्पित सबै, जीवै सत्य स्वरूप।
ताहि जानि निश्चय करै, जो सबका है भूप ॥ ८८ ॥

अपने चैतन्य स्वरूप जीव के अतिरिक्त ईश्वर, ब्रह्म, देवी, देवादि-सब जीव ही के कल्पित हैं, अतएव हृदयस्थ जीव ही सत्य पदार्थ है। जो सर्व भास का जानक-मानक-थापक स्वतन्त्र चैतन्य जीव है, उसको विवेक से अविनाशी, अखण्ड, शुद्ध-बुद्ध तथा मुक्त रूप जानकर, लक्ष्य में दृढ करे ॥८८॥

सबसे श्रेष्ठ तुम स्वयं हो

एक मनुष्य गणेश जी की पूजा करता था। एक दिन देखा तो एक चूहा गणेश जी की मूर्ति पर चढ़ कर, चढ़ाये हुए द्रव्यों को खा रहा है। उसने सोचा "गणेश जी जब अपनी ही रक्षा नहीं कर पाते तब हमारी रक्षा क्या करेंगे ? इनसे बलवान् तो चूहा है, अतः मैं चूहा को ही पूजूंगा।" ऐसा विचार कर उस चूहे को बांध कर, उसे ही पूजने लगा। एक दिन वह चूहा एक बिल्ली के सामने पड़ गया, तो अपनी जान बचा कर भागा। उस दिन से पुजारीने सोचा "चूहा से तो बिल्ली ही बलवान् है।" अतः वह बिल्ली को ही पूजने लगा। एक दिन बिल्ली को देखकर कुत्ता दौड़ पड़ा, और बिल्ली भाग कर छिप गयी। उस दिन से बिल्ली से कुत्ता को बलवान् जानकर, वह कुत्ता को पूजने

लगा। एक दिन कुत्ता रसोइया घर में चला गया। उधर पुजारी की स्त्री आकर देखी, तो कुत्ते को लगी पीटने। पुरुष आकर देखा, तो कुत्ते से भी अपनी स्त्री को बलवान् समझ कर, उसी को पूजने लगा। एक दिन स्त्री से कोई गल्ती हो गयी। फिर पुरुष उसे लगा मारने। लोगों ने आकर छुड़ाया। एक घन्टे के पश्चात् जब क्रोध शान्त हुआ, तब पुरुष सोचने लगा "स्त्री से बलवान् और उसपर शासक तो मैं ही हूँ। अःत अपने उद्धार के लिये, मैं अपने आप को ही पूजूँगा। तात्पर्य यह है कि तन, मन, वचन के सम्पूर्णं दोषों को त्याग कर, मैं अपने चेतन स्वरूप में ही सन्तुष्ट होऊँगा।"

शिक्षा—ईश्वर-ब्रह्म, देवी-देवादि कल्पित हैं। उनकी कल्पना करने वाला, मनुष्य जीव ही श्रेष्ठ है। उसे सब कल्पना त्याग कर, और तन, मन, वचन के दोषों को छोड़ कर, स्व-स्वरूप चैतन्य में ही सन्तुष्ट होना चाहिये।

श्री कबीर साहेब कहते हैं—

जेहि खोजत कल्पौ गया, घटही माहिं सो मूर।
बाढ़ी गर्भ गुमान ते, ताते परि गई दूर॥ (बीजक)

श्री कृष्ण जी कहते हैं—

श्लोक :—उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥
(गीता १३।२२)

अर्थ :—शरीर-निवासी यह गुणातीत चैतन्य जीव ही द्रष्टा, इन्द्रिय-मन का प्रेरक, धारणकर्त्ता, भोक्ता, सब की कल्पना करने वाला तथा सबका स्थापक होने से महान ईश्वर तथा स्वरूप से शुद्ध होने से परमात्मा है॥

मानुष पशु अण्डज अहै, योनि भोग विस्तार।
उष्मज तत्त्व अधार में, देही देह विचार॥ ८९॥

मनुष्य, पिण्डज और अण्डज—ये तीन खानियाँ योनिज हैं, स्त्री-

पुरुष तथा नर-मादा के सम्पर्क से ही, उक्त तीनों खानियों का फैलाव है। उष्मजी जीव जड़ तत्त्वों के आधार में शरीर धारण करते हैं। परन्तु विवेक से देखिये, उपर्युक्त चारों खानियों में देही—चैतन्य जीव और देह—जड़ शरीर भिन्न-भिन्न हैं ॥८९॥

जीव शुभाशुभ कर्म करि, ताहि विवश जस योग।
देह धरत छोड़त रहत, रोग अनादि सो भोग ॥ ९० ॥

विषय-कामना के वश होकर, जीव स्वतः शुभ या अशुभ कर्म करता है। फिर उसी कर्म के वश होकर, मनुष्य-पशु-अण्डज-उष्मज—चार खानियों का शरीर धारण करता और त्यागता रहता है। इस प्रकार अज्ञान-वश स्वयं कर्म करना और तदनुसार चार खानियों का शरीर धारण कर-कर के सुख-दुःख भोगना—यह रोग अनादिकाल (सदा-सर्वदा) का है ॥९०॥

कर्ता कोई अन्य नहिं, जेहि कल्पत सब लोग।
मनुज आप निजभूलि के, सब विधि लहि मन शोग ॥९१॥

जीवों का कर्म-फल-भोग देने वाला और योनियों में भ्रमाने वाला-- जिसकी साधारण लोग कल्पना करते हैं, वह जीव के अतिरिक्त कोई मालिक नहीं है। मनुष्य अपने चैतन्य ज्ञान स्वरूप को भूलकर, ईश्वर-ब्रह्म, देवी-देव, भूत-प्रेत तथा काम, क्रोध, लोभ, मोहादि की कल्पना-चिन्ता का मन में धारण कर रखा है ॥९१॥

शिक्षा—अपने कर्म को सुधार लो, तुम्हें अन्य कोई दण्ड देने वाला नहीं है। तुम्हारे कर्म ही तुम्हें दण्ड देते हैं।

अंकूरज में जीव नहिं, तत्त्वन के सम्बन्ध।
उपजि विनशि सब तत्त्व में, जड़ सरूप तम अन्ध ॥ ९२ ॥

अंखुवा से उत्पन्न होने वाले वृक्ष-वनस्पतियों में जीवों का निवास नहीं होता, वे केवल चार जड़तत्त्वों के सम्बन्ध में उत्पन्न होते और

परिवर्तन रूप विनष्ट होकर सब तत्त्वों में लीन हो जाते हैं। अतएव वृक्ष-वनस्पतियाँ ज्ञान-हीन अंधकारमय जड़-पदार्थ हैं* ॥६२॥

चेतन से जड़ है पृथक्, जड़ से चेतन पार।
भिन्न भिन्न लक्षण उभय, है परत्यक्ष विचार ॥ ६३ ॥

अविनाशी अगणित चेतन जीवों से चारों जड़तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) पृथक हैं, और चार जड़तत्त्वों से नाना चेतन पृथक् हैं। इस प्रकार जड़-चेतन—दोनों के लक्षण पृथक-पृथक हैं, यह प्रत्यक्ष विचार में आता है ॥६३॥

दोऊ नित्य अनादि हैं, जड़ तजि चेतन सार।
सत्संगति में बैठि के, करो विवेक विचार ॥ ६४ ॥

जड़-चेतन दोनों अनादि-नित्य वस्तु हैं; हाँ! जड़-वस्तु त्याग कर चैतन्य जीव ही अपना सत्य स्वरूप है। विवेकियों के सत्संग में बैठकर, इस पर विचार तथा विवेक करो ॥६४॥

स्थित होन के भाव उर, निशिदिन करि अभ्यास।
आप आप में शान्त ह्वै, जीवन्मुक्त निवास ॥ ६५ ॥

स्व-स्वरूप पारख चैतन्य में शान्त होने की चेष्टा हृदय में रखकर, रात-दिन (निरन्तर) अभ्यास करो। बाह्य आकर्षण से रहित होकर, अपने आप में शान्त होना ही, जीवन्मुक्ति-दशा में ठहरना है ॥६५॥

पंच विषय मुझ में नहीं, भूल अनादी भास।
भास मेटि निज में रहै, तजि विजाति की आश ॥ ६६ ॥

मेरे शुद्ध चैतन्य स्वरूप में, पंच-विषय जड़-पदार्थ नहीं हैं। स्व-स्वरूप की अनादि भूलवश ही, यह जड़-भास (विषयाध्यास) लगा है।

---

* वृक्षों में जीवों का निषेध अच्छी तरह समझने के लिये भवयान सटीक का सातवां प्रकरण 'जड़-चेतन निर्णय' देखना चाहिये। रहनि प्रबोधिनी सटीक के प्रथम प्रकरण चौपाई १९ की व्याख्या में सार निर्णय द्रष्टव्य है।

अतएव विषयाध्यास मिटा कर, और जड़-पदार्थों की आशा त्याग कर, स्व-स्वरूप में स्थित करो ॥९६॥

अहै विदेह स्वरूप निज, तैसे रहै हमेश ।
दृश्य जगत तहँ लेश नहिं, नित निरधार रहेश ॥ ९७ ॥

अपना चैतन्य पारख स्वरूप, देह से अतीत है, वहाँ जगत्-दृश्यों का लेश भी नहीं है, वह सदैव निराधार-असङ्ग स्वरूप है। अतएव इसी प्रकार अपने लक्ष्य को दृढ़ कर, स्थिति-रत होना चाहिये ॥९७॥

धन्य धन्य गुरुदेव को, जिन दीन्हा यह बोध ।
भाग्य उदय तेहि जीव को, जो पावै यह शोध ॥९८॥

इस देहातीत अविनाशी चैतन्य-स्वरूप का बोध देने वाले, सद्गुरुदेव की बारम्बार धन्यता है। उस जीव का भाग्य उदय समझना चाहिये, जो स्वस्वरूप का शोधन कर, अपने को जड़ से पृथक कर लिया ॥९८॥

पारख रूप कबीर प्रभु, परख प्रकाशी आप ।
सोई रूप गुरु साधु हैं, परम्परा तेहि थाप ॥९९॥

पारखस्वरूप सद्गुरु श्रीकबीर साहेब, आप ही पारख-ज्ञान का प्रकाश करने वाले हैं। वही—श्रीकबीर साहेब के रूप पारखी सद्गुरु और सन्त जन हैं कि जिन्होंने श्रीकबीर साहेब के समय से, उनके उपदिष्ट पारख-बोध की सत्संग-सिलसिला को आज पर्यन्त सुरक्षित रखा। आप पारखी साधु-गुरु भी श्रीकबीर साहेब के समान ही वन्दनीय है ॥ ९९ ॥

नमों नमों तेहि पद कमल, सूरत निज पद पाय ।
पूर सकल पुरुषार्थ भौ, गुरु दाया अपनाय ॥१००॥

सद्गुरु श्रीकबीर साहेब तथा आपके पश्चात् आज तक के पारखी गुरु—साधु के चरण-कमलों का बारम्बार नमस्कार है। ग्रन्थकर्ता सद्गुरु का कहना है कि जो गुरु-कृपा रूप रहस्ययुत पारख बोध को अपना लिया, वह अपना अमृतपद पा गया; और उसका सारा पुरुषार्थ पूरा हो गया ॥१००॥

बोधसार सटीक प्रथम खण्ड समाप्त

प्रकरण फल

जब दिव्य ज्ञान का हो प्रकाश ।

मन की मलीनतायें मिटतीं ।
संशय भ्रम की ग्रन्थी कटती ॥
भय शोक मोह मद कोह काम ।
आशा तृष्णा पाती विराम ॥
सब बहिर वृत्ति होती विनाश ॥ जब दिव्य ॥१॥

हिंसा अनीति अदया नशते ।
सब शील क्षमा उरमें बसते ॥
समता सौरभ रग-रग भरते ।
विषमता द्वेष भव-भट मरते ॥
साम्राज्य शान्ति का हो विकास ॥ जब दिव्य ॥२॥

इकरस इकाग्र होती वृत्ती ।
उर को अनन्त होती तृप्ती ॥
अद्भुत अनुभव कपाट खुलते ।
सबहीं भवरुज मानस धुलते ॥
मुक्ती मिलती मिटता प्रयास ॥ जब दिव्य ॥३॥
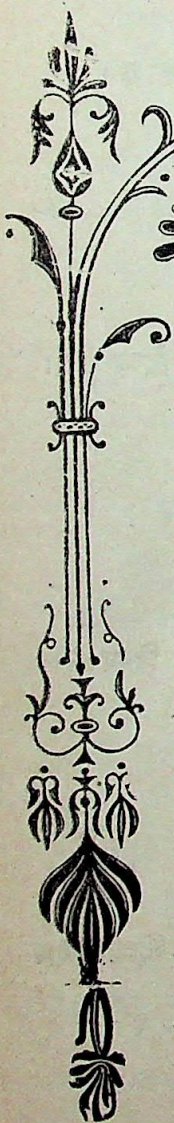
द्वितीय खण्ड

निज रूप बोध में हो सुथीर।
तज जगत् विषय-वासना जाल।
मद काम क्रोध लोभादि काल॥
सब मन की ग्रन्थी को विदार।
अभिमान देह का करे छार।
भट राग द्वेष दो शत्रु चीर॥ निज रूप॥१॥
सत शील धीर दाया विचार।
वैराग्य भक्ति सुविवेक सार॥
सब शुभ गुण संयुत परख बीच।
ले शान्ति सदा तज दृश्य कीच॥
मन-मर्दन हित बन सुभट धीर॥ निज रूप॥२॥
अज अविनाशी सच्चिद् स्वरूप।
मैं नित्य निरामय परख रूप॥
यह जाप निरन्तर हृदय बीच।
अन्तर बाहर जग से अखींच॥
हो जीवन्मुक्त कबीर वीर॥ निज रूप॥३॥

* सद्गुरवे नमः *

बोधसार-सटीक

द्वितीय खण्ड

वन्दना-साखी

वन्दौं गुरु पद परख को, स्थित होनहि हेतु।
तन मन चंचल थिर नहीं, भव निधि पारख सेतु ॥ १ ॥

स्व-स्वरूप चैतन्य की स्थिति-प्राप्ति के लिये, पारखी सद्गुरु के चरण-कमलों की मैं वन्दना करता हूँ। अनस्थिर-चंचल तन-मन रूप संसार-सागर से तरने के लिये, पारखज्ञान ही श्रेष्ठ पुल के तुल्य है ॥१॥

सोई प्रभू मिलाइये, जेहि गहि लागहुँ तीर।
सद्विवेक गुरु दृष्टि लहि, सुखी होऊँ तजि भीर ॥२ ॥

हे स्वामी! वही स्व-स्वरूप पारख-ज्ञान से हमारी भेंट करा दीजिये, जिसको ग्रहण कर, मै संसार-सागर से पार हो जाऊँ। पारख सिद्धान्त रूप आपकी दृष्टि तथा आचरण से सच्चा विवेक धारणकर और संसार की प्रवृत्ति को त्यागकर मैं सुखी-शान्त हो जाऊं ॥२॥

इष्टदेव गुरु साधु बल, निज बल तीनों धारि।
सद्ग्रन्थन सत्संग विधि, श्रद्धा मुदित विचारि ॥ ३ ॥

पूज्य सद्गुरुदेव, श्रद्धास्पद विवेकी सन्त तथा अपने आप—तीनों की शक्ति धारण कर, प्रसन्नता; पूर्वक सद्ग्रन्थों का विचार करते तथा सत्संग करते हुए, मोक्ष-कार्य में श्रद्धायुत डटा रहूँ ॥३॥

सोई ध्येय सोई ध्यान प्रभु, देहु मोहि वरदान।
देह भोग को अन्त करि, नहिं भूलूँ सुख मान ॥ ४ ॥

हे सद्गुरु! हमें वही आशोर्वचन का दान दो, जिससे कि हमारे लक्ष्य और चिन्तन मोक्ष के लिये बने रहें। विवेक पूर्वक शरीर-प्रारब्ध-भोग की समाप्त कर दूँ; दृश्य संसार-शरीर में, सुखमान कर न भूलूँ ॥४॥

विषयारम्भ-साखी

चारों तत्त्व के घेर में, पंच विषय के फेर।
यह चेतन निज भूलि कै, खानि बानि अरुझेर ॥ ५ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु--इन चार तत्त्वों के कोट में, तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच विषयों के चक्कर में, यह अविनाशी चैतन्य जीव, अपने स्वरूप को भूलकर, मोटी-झीनी माया में फँसा है ॥५॥

जनम मरण अरु गरभ में, तपत अनल दुख झेलि।
बहत अनादि प्रवाह से, खानिन बीच झमेलि ॥ ६ ॥

इस प्रकार चारों खानियों के रगड़े के बीच में, अनादिकाल से अविनाशी जीव, जन्म–मृत्यु के प्रवाह में बहता हुआ दुःख झेलता तथा जठराग्नि में बारम्बार तपता है ॥६॥

धरि धरि तन बहते रहे, सृष्टि मनोमय धार।
आधि रु व्याधि उपाधि युत, निज-निज शिर पर भार ॥ ७ ॥

शरीर को धर–धर कर, अविनाशी जीव मनोमय की धारा में बहते रहते हैं। काम, क्रोध, लोभादि–जनित मानसिक पीड़ा; पित्त-वात-कफ-जनित शारीरिक पीड़ा तथा बाहरी सांसारिक झंझटोंके सहित अपने-अपने शिर पर दुःखों का बोझा सब जीव लिये हैं ॥७॥

तन मग मन व्यापार करि, राग–द्वेष मिलि झार।
तहाँ न स्थित देखिये, निशदिन होते रार ॥ ८ ॥

जीवन-पथ में मनुष्य, भूल वश मानसिक दोषों का व्यापार करता है; उसमें फल केवल मोह-बैर मिलते हैं। विचार करके देखिये! ऐसी दशा में शान्ति कहाँ है? रात-दिन भीतर-बाहर झगड़ा-ही-झगड़ा है ॥ ८ ॥

सुख हन्ता सुख मानिकै, सबै जीव हैरान।
शत्रु मित्र की खेद दिल, रहत सदा भयमान ॥ ९ ॥

विषयों में सुखमान कर, उसमें अहंकार करके सब जगत्-जीव दुखी है। माने हुए विषय-सुखों में किसी को बाधक मानकर, उसे शत्रु मानता; और किसी को साधक मानकर, उसे मित्र मानता। फिर शत्रु को दबाने तथा नाश करने के लिये और मित्र की मित्रता निभाने तथा उसे जीवन-पर्यन्त अनुकूल बनाये रखने के लिये मनुष्य के मनमें सदैव चिंता रहा करती है। शत्रु के बलवान होने और मित्र के छूट जाने का भय, उस पर सर्वदा सवार रहता है ॥९॥

शिक्षा—शत्रु की शत्रुता का स्मरण रखने से और उससे बदला लेने की भावना बनाये रखने से, शत्रुता नहीं जाती और न शत्रु ही कम होते हैं। बल्कि शत्रु के प्रति भी क्षमा और मैत्री का भाव बरतने से शत्रुता मिटती है और शत्रु भी समाप्त हो जाते हैं। अतः शत्रु को न मार कर, शत्रुता को मारो—शत्रु का भी हित चाहो और उससे मैत्री का बरताव करो।

दुर्जन-भाई के प्रति क्षमा

एक ग्राम में दो भाई थे। बड़ा भाई सज्जन था और छोटा भाई दुर्व्यसनी था। यह तो सर्वविदित है कि दुर्व्यसनी सदैव दरिद्र रहता है। गोस्वामी जी कहते हैं—

"सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन शुभगति व्यभिचारी॥
लोभी यश चह चारु गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी॥"

अतएव दुर्व्यसनी होने से छोटा भाई बड़े भाई से बारम्बार पैसा माँगा करे। बड़ा भाई पैसा तो देता रहता, साथ-साथ दुर्व्यसन त्याग

करने का उपदेश भी करता रहता था। एक दिन छोटा भाई बड़े भाई से पैसा माँगा ; उस दिन बड़े भाई का हाथ तंग था, अर्थात् पैसा नहीं था, अतः न दे सका। छोटे भाई के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई, अतः उस दुष्ट ने बड़े भाई के चार वर्ष के छोटे बच्चे को चुपके से गला दबा कर कुवाँ में डाल दिया।

पीछे गुप्त रूप से पता चलने पर बच्चा कुंवा से निकाला गया। बड़े भाई को पूरा ज्ञात हो गया कि छोटे भाई ने मारा है। परन्तु पुलिस के आने पर मृतक बच्चे के पिता ने कहा "बच्चा स्वयं फिसल कर कुयें में गिर पड़ा है।" जब बच्चे का शव श्मशान में गाड़ा जाने लगा, बड़े भाई की मानवता देखकर छोटा भाई फूट कर रो पड़ा। बड़े भाई ने कहा—"भैया! रोवे मत, यदि अब तू सुधर जा, तो सौदा घाटे में नहीं है। भाग्य में होगा तो पुत्र पुनः मिलेगा; भाई तो बार-बार नहीं मिलता।"

बड़े भाई की अतिमानवता और अपनी अति दानवता के घर्षण से छोटे भाई के हृदय में पश्चाताप की प्रबल अग्नि लग गई। और उसके सब मनोमल जल गये तथा वह सदैव के लिये सब दुर्व्यसनों का त्याग कर सद्गुण-सम्पन्न भ्रातृभक्त बन गया।

शब्द श्रवण सुनि मुदित ह्वै, रूप देखि तेहि लीन।
गन्ध घ्राण आसक्ति मन, स्वाद रसन में छीन॥ १०॥

कान से अनुकूल-रसिक शब्द सुनकर साधारण जीव प्रसन्न होता है; और माने हुए नर-नारियों के सुन्दर रूप देखकर, उसमें आसक्त होता है। नाक से नाना गन्ध-सुगन्ध में मन-वश जीव आसक्ति टिकाता है, षट्रस स्वादों में जिह्वा से आसक्त होकर पतित होता है॥१०॥

त्वचा परश कोमल विषी, बन्धन मूल है खस।
साधक चारों ताहि के, पंच विषय सुख आश॥ ११॥

चमड़ी से कोमल प्रकार के तथा नवयुवती आदि के स्पर्श बन्धनों की मुख्य जड़ है। उपर्युक्त शब्द, रूप, रस तथा गन्ध—ये चारों विषय

इस स्पर्श विषय के साधक हैं। इस प्रकार पाँचों विषयों में, जीव सुख की आशा करता है ॥११॥

भेद न जाने जीव यह, फँसि-फँसि प्राण सो घात।

अलि पतंग मृग मीन गज, इक इक विषयन पात ॥ १२ ॥

विषय-सुखों में दुःख है- यह रहस्य जीव नहीं जानता; बल्कि उसमें फंस-फंस कर, अपना प्राणघात कर बैठता है। भंवरा, पतंग, मृगा, मछली और हाथी क्रम से गन्ध, रूप, शब्द, रस तथा स्पर्श में फँसकर, एक-एक विषय में जान गँवा देते हैं ॥१२॥

स्पष्ट (१) विकसित (खिले हुए) कमल-पुष्पों में, भँवरा जाकर सुगन्ध लेता हुआ मस्त हो जाता है। इतने में सायंकाल का समय आने पर कमल-पुष्प सम्पुट हो जाता है। भंवरा आसक्ति-वश फूल को काट कर, वाहर निकलता नहीं। इस प्रकार रात भर कमल-पुष्प में, वह बन्द रहता है। प्रातःकाल होते ही हाथियों का झुण्ड वन से आ जाता है, और कमल-पुष्पों को हाथी अपने मुख में रखकर, चबा जाते हैं या पैर से ध्वंस कर देते हैं। इस प्रकार पुष्प-गन्ध की आसक्ति में. भंवरा मारा जाता है।

(२) दीपक की ज्योति की सुन्दरता देखकर रूपविषय में आसक्त होकर, पतिंगे ज्योति से चिपटना चाहते हैं। तुरन्त ही जलकर राख हो जाते हैं। इस प्रकार रूप की आसक्तिमें, पतिगे मारे जाते हैं।

(३) मृगा को फंसाने वाले बधिक लोग वंशी आदि बजाते हैं। उस शब्द में मोह कर, मृगा बधिक के पास चला आता है, फिर बधिक उसे पकड़कर मार डालता है। और उसका चाम ले लेता है। इस प्रकार शब्द की आसक्ति में मृगा मारा जाता है।

(४) मछली मारने वाले बंसी (काँटे) में आटा या केचुआ लगा कर, पानी में डाल देते हैं। स्वाद-वश मछली उसको खाने के लिये मुख में लेती है। तुरन्त काँटा चुभ जाता है, और मछुवा उसे खींच कर मार डालता है, इस प्रकार रस-विषय की आसक्ति-वश, मछली मारी जाती है।

(५) हाथी को फंसाने वाले, जंगल में गड्ढा खोदकर, उसके ऊपर टाटी रख देते हैं। टाटी के ऊपर मिट्टी-घास आदि फैलाकर उसके ऊपर एक कागज की हथिनी बना देते हैं। हाथी जब आता है, तब उसे हथिनी समझ कर, स्पर्श-विषय के लिये उसके पास जाता है; और स्पर्श करते ही कागज की हथिनी, टाटी इत्यादि टूट जाती है और हाथी गड्ढे में गिर जाता है। फिर फंसाने वाले उसे पकड़कर, बाँध लेते हैं। इस प्रकार स्पर्श-विषय में हाथी बाँधा जाता है, और जीवन पर्यन्त सवारी ढोता तथा भाला डण्डा खाता है।

उपर्युक्त एक-एक विषय में, एक-एक प्राणी मारे या बाँधे जाते हैं; मनुष्य के तो पाँचों विषय लगे हैं, फिर इसे असह संकट क्यों न भोगना पड़े ? अतएव इन पाँचों विषयों को सब प्रकार से, दुःखदायी जानकर, इनका त्याग करना चाहिये।

तैसहिं निज को भूलिके, मानुष पद से हीन।
शान्ति न पावत जीव यह, विवश वासना दीन ॥ १३ ॥

उपर्युक्त रीति से, अपने स्वरूप को भूलकर, मनुष्यता-विवेक-विचार से जीव रहित है। यह विषयासक्त जीव, शान्ति को नहीं प्राप्त होता; हरक्षण वासनाओं के वश होकर, लाचार बना रहता है ॥१३॥

याते सबहीं त्यागि के, निज में निजही थीर।
हेतु न कोई जीव को, शान्ति हिये धरि धीर ॥ १४ ॥

अतएव सभी विषयों की इच्छा त्यागकर, अपने आप स्वतः चेतन स्वरूप में ही स्थिति होवे। संसार के प्रपंचों में, जीव का कोई प्रयोजन नहीं है; अतः हृदय में धैर्य धारण कर शान्त होना चाहिये ॥१४॥

मुक्ति-इच्छुक को समझना चाहिये कि शुद्ध पुरुषार्थ और प्रारब्धानुसार जीवन-निर्वाह सहजिक होता रहेगा। अतएव इसकी तो चिन्ता ही नहीं करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त सभी आशा-वासना मिटाकर स्व-स्वरूप में शान्त होने का कर्तव्य करना चाहिये। आशा ही विकट दुःख है, इसका त्याग ही मोक्ष है। श्रीकबीरदेव कहते हैं—

साखी—जो तू चाहे मूझको, छाड़ि सकल की आश।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥

(बीजक)

आशा ही परम दुःख है

श्रीमद्भागवत में एक कथा आती है—मिथिलापुरी में पिंगला नाम की एक वेश्या रहती थी। वेश्या-वृत्ति ही उसका धंधा था। एक दिन वस्त्राभूषणों से सजकर कामी पुरुषों की प्रतीक्षा में वह बाहरी द्वार पर खड़ी रही। वास्तव में उसे मुख्य पुरुष की इच्छा नहीं, धन की इच्छा थी। वह मार्ग में आने-जाने वालों के प्रति सोचती रहती थी कि "यह कोई धनी है, हमें धन देकर उपभोग करने आ रहा है।" जब आने-जाने वाले सामने होकर चले जाते, तब वह दूसरे की आशा करती। कभी घर के भीतर जाती, कभी बाहर आती। इस प्रकार धन और भोग की आशा में वह पराये पुरुष की राह देखती-देखती द्वार पर आधी रात तक खड़ी रही। आधी रात तक कोई जब उसके पास न आया और नगर में सर्वत्र सन्नाटा छा गया, तब वह बहुत उदास हो गयी; और उसके मन में अपने नीच कर्तव्य पर वैराग्य हो गया।

वह पश्चाताप करने लगी—"अहो! मैं इन्द्रियों के अधीन होकर विषय-सुखों की इच्छा करती हूँ। मैं कितने मोह में हूँ? इन मन-वशी पुरुषों का, जिनका कोई अस्थायित्व नहीं है, इनसे क्या सुख मिलेगा? ये संसार के पुरुष जब स्वयं इच्छा-वश दीन हैं; तब इनसे हमारी इच्छा की पूर्ति क्या हो सकती है। अहो! मैं महान मूर्खा हूँ, जो ऐसी निन्दनीय वेश्या-वृत्ति को ग्रहण करके, व्यर्थ ही अपने शरीर-मन को पीड़ा दिया। यह हमारा शरीर कामी, लम्पट पुरुषों के हाथ बिक गया। हाड़, मांस, मल, मूत्रों से पूर्ण, आधि-व्याधि-उपाधियों से युक्त इस निन्दनीय शरीर से, जो मैं सुख चाहती हूँ; यह मेरी बड़ी मूर्खता है। सभी लम्पट पुरुषों की मूत या थूक चाटने वाली मेरे समान अन्य कौन मूर्खा स्त्री होगी?"

"अरे मूर्ख चित्त ! जिनसे तू विषय-सुख चाहता है। वे पुरुष स्वयं जन्मते, बदलते, अभाव का अनुभव करते, रोगी-बूढ़ा होते एवं मरते रहते हैं। क्या रूप-यौवन तथा बल-वीर्य सम्पन्न बड़े-बड़े शूर-वीरों ने भी अपनी पत्नियों के मन को भोग से तृप्त कर सका है ? जब वे स्वयं काल के कवल बने तड़फ रहे हैं, तब और को क्या सुख दे सकते हैं ? आज जो यह निर्वेद मुझे प्राप्त हुआ है, बड़े सौभाग्य से। क्योंकि बिना प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न हुए दुःख नहीं होता, और बिना दुःख उत्पन्न हुए वैराग्य नहीं होता, तथा बिना वैराग्यरूपी तीव्र शस्त्र प्राप्त हुए यह धन, भोग, घर, कुटुम्ब और जीवन का दुराशारूपी दृढ़मूल वृक्ष जड़ से नष्ट नहीं होता। सर्वकामना मिटाकर परम शान्ति देने वाला अपने हृदय में ही विराजमान जो अपना अविनाशी चैतन्य स्वरूप है, उसकी ओर तो मैंने कभी ध्यान नहीं दिया। और इन हाड़, मांस, मल, मूत्र, के अपवित्र, दुःखरूप पुतले-पुरुषों का मैं सदैव जाप करती रही। जो हमारी एक भी इच्छा पूरी नहीं कर सकते।"

"यह मनुष्य-शरीर मोक्ष का खुला हुआ उत्तम द्वार है। इसको पाकर भी, जो पशु-पक्षी कृमि-कीटवत् मलीन इन्द्रियों के भोगों में ही लगे रहते हैं—कल्याण-साधन नहीं करते—वे बड़े ही शोचनीय व्यक्ति हैं। अतएव अब संसार के तुच्छ नर-नारियों तथा भोगों की इच्छा-आशा त्याग कर तथा मन-इन्द्रियों का संयम करते हुए अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करूंगी और वैराग्यवान् सद्गुरु-सन्तों का सत्संग करते हुए अपने स्वरूप में ही रमण करूंगी। प्रारब्धानुसार मोटा-महीन, थोड़ा-बहुत जो कुछ मिल जायगा, उसी में सन्तोष पूर्वक निर्वाह कर लूंगी और जगत्-आशा त्यागकर, भजन में ही सन्तुष्ट रहूँगी।" इस प्रकार निश्चय कर वह भोगों से विरक्त हो गयी।

शिक्षा, श्लोकः—आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।

यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वापि पिङ्गला। (भागवत)

'वास्तव में आशा ही महान दुःख है और निराशा ही परम सुख है। देखो! पिंगला ने जब पुरुष की आशा सर्वथा त्याग दी, तब सुख-

पूर्वक सो सकी।' अतएव भोगों की, शरीर की एवं संसार की आशा त्यागना ही कर्तव्य है।

❀ पूर्बी-गीत ❀

भैया! दो दिन की जिनगानी ये तुम्हार बाय,
देखो कर विचार आय नाय ॥ टेक ॥

जगमें बड़े-बड़े अभिमानी। जैसे गले बताशा पानी ॥
रावण कंश बली दुर्योधन, बेसुमार बाय ॥देखो०१॥
तू मत भूले देख जवानी। इसकी दो दिन की मेहमानी ॥
फिर तो आय बुढ़ापा कर देवै, लाचार बाय ॥देखो०२॥
उत्तम मानव तन को पाया। तिसको बिषयन भोगि सिराया ॥
सुख को मूल भजन बिसराया, मन गंवार बाय ॥देखो०३॥
तज दे विषय विलास विकारी। करले भजन भक्ति सुखकारी ॥
श्वासा गये फेरि न आवे, क्या अखत्यार बाय ॥देखो०४॥
झूठी तन की आशा धरना। होगा क्षण पल में ही मरना ॥
तू अभिलाष करे भव तरना, गुरु अधार बाय ॥देखो०५॥

मन चाहत निशिदिन मनन, सुख हित किरिया भोग।
सत्ता जीव मिलाय करि, जीवहिं के शिर शोग ॥१५॥

मन निरन्तर विषयों का स्मरण करना चाहता है, जीव अपनी शक्ति उस मनन में लगाकर, विषय-सुखों के लिये भोग-क्रिया में तत्पर हो जाता है। इस प्रकार अपने आप ही, अपने ऊपर जीव-शोक-सन्ताप का बोझा, सदा धारण किये रहता है ॥१५॥

मन अनुकूलहिं पाय जब, जग आरण्य भुलाय।
मर्कट श्वान रु कीरगति, चंचल नितहिं दुखाय ॥ १६ ॥

मन के अनुकूल विषयभोग तथा प्राणी-पदार्थों को जब जीव पा जाता है, तब संसार-जंगल में मस्त होकर भूल जाता है। चने के लोभ से जैसे सकरी सुराही में अपना हाथ फँसा कर, बन्दर कलन्दर द्वारा पकड़ा जाता है; कांच-मन्दिर में अपना प्रतिबिम्ब अवलोकन

कर तथा उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी मानकर, जैसे कुत्ता भूकते ही मरता है और लालमिर्ची के लोभ से, जैसे शुक-पक्षी नलिकायन्त्र में फँस जाता है। इसी प्रकार विषयों के वश हुआ चंचल जीव, सदैव दुःख भोगता है ॥१६॥

विकत जहाँ तहँ जानिये, स्थिति कतहूँ नाहिं ।
दुर्गति तैसहि नरन की, करो परीक्षा ताहिं ॥ १७ ॥

उपर्युक्त (बन्दर, श्वान तथा शुकादि) प्रकार से मनुष्यों की दुर्गति हो रही है। विषयों के लोभ-वश, जहाँ-तहाँ जीव बिकता रहता है, कहीं भी शान्ति नहीं पाता, विचार पूर्वक इस बात की परीक्षा करो ॥ १७ ॥

निजहिं देह अरु अन्य घट, सुख मानन्दी चाह ।
परवशता का अंत नहिं, जड़ देशन के माह ॥ १८ ॥

अपने शरीर और दूसरे नर-नारियों के शरीरों में, जीव की सुख-मान्यता बनी हुई है, इसीलिये बारम्बार नर-नारियों के शरीरों के स्पर्श की चाहना होती हैं। शरीर-संसार, प्राणी-पदार्थ—जहाँ तक दृश्यमान जगत् है, इनमें आसक्त होने से, पराधीनता की समाप्ति नहीं हो सकती ॥ १८ ॥

वास्तव में शरीर हाड़, मांस, मल-मूत्रों का पिण्ड है। परन्तु अनादि अविद्या-वश, जीव उसमें सुख मानता है। कामान्ध को शरीर की गन्दगी नहीं दिखती।

सौंदर्य गमले में रखा है

एक साहूकार का लड़का, एक युवती को देखकर आसक्त हो गया, और अपनी दूती-द्वारा अपना सन्देश उसे दिया। युवती ने दूसरे दिन उस लड़के को अपने घर बुलाया। इधर इस युवती ने तीव्र जुलाब की गोली खा ली, और दूसरे दिन तक, उसके पचासों दस्त हुए। उसने सब मैले को एक बड़े गमले में भर कर रेशमी वस्त्र से ढक दिया।

दूसरे दिन जब वह युवक उसके पास पहुँचा, तो उसके शरीर को देखकर सूख गया, और कहा-"प्यारी ! तुम्हारी वह सुन्दरता कहाँ गयी? तुम्हारा शरीर-कमल सूखकर कांटा हो गया है।" युवती ने कहा— "यदि मुझसे प्रेम है तो मैं वही हूँ, और यदि मेरी सुन्दरतासे प्रेम है, तो जाओ, उस गमले में ढक कर रखी है, देख लो।" यह कामान्ध युवक, यह भी नहीं सोच सका कि व्यक्ति अपनी सुन्दरता, अपने से पृथक नहीं रख सकता, और दौड़ा-दौड़ा गया, उसकी सुन्दरता देखने की इच्छा से गमले से रेशमी-वस्त्र हटाया, तैसे मल की सारी दुर्गन्धी, उसकी नाक में भर गयी, और सुन्दरता के स्थान पर, मल देखकर बहुत लज्जित हुआ। उसका मोह तुरन्त नष्ट हो गया, और घर चला आया।

शिक्षा—विवेक-द्वारा शरीर की वास्तविकता को देखना चाहिये; और मलीन, दुखमय काम-वासना को त्याग कर, सर्व आसक्ति से मुक्त होना चाहिये ॥ १८ ॥

बिन त्यागे मुक्ती नहीं, ज्ञान बिना नहिं त्याग।
ताते करि गुरु भक्ति को, लहै बोध वैराग ॥ १९ ॥

अपने और दूसरे की शरीर-प्रियता—कामवासना तथा अन्य सर्व आसक्ति बिना त्याग किये, मुक्ति नहीं मिल सकती; और यथार्थ स्व-स्वरूप-ज्ञान हुए बिना, विषयों की सर्वथा त्याग हो सकता नहीं। अतएव वैराग्यवान् पारखो सद्गुरु की भक्ति करके, उनसे स्व-स्वरूप-बोध को प्राप्त कर, विषयों से वैराग्य धारण करे ॥ १९ ॥

प्रबल शक्ति वैराग्य का, बोध भक्ति अपनाय।
छूटै बन्धन जगत का, आपुहि आप रहाय ॥ २० ॥

भक्ति-सहित स्वरूपज्ञान प्राप्तकर, वैराग्य धारण करे; वैराग्य की शक्ति अति बलवान होती है। अतः वैराग्य से संसार का राग-बन्धन छूट जायगा, और जीव सर्वासक्ति-रहित, अपने आप ही में शान्त हो रहेगा ॥ २० ॥

यही परम पुरुषार्थ है, शक्ति आपनो फेरि।
अर्पण करि तेहि में सदा, मोक्ष पन्थ को हेरि ॥ २१ ॥

सत्संग में मोक्ष-मार्ग की खोज करे, और अपने तन, मन तथा बचन की शक्ति को संसार से घुमा कर, मोक्ष के प्रयत्न में ही सदा के लिये अर्पित कर दे; जीव का यही परम पुरुषार्थ है ॥ २१ ॥

प्रेम सुक्ख अरु मान सुख, दोनों बन्धन रूप।
जीव परा तेहि फन्द में, बिन पारख दुख कूप ॥ २२ ॥

सांसारिक प्रेमियों के प्रेम में सुख मानना तथा उनके द्वारा दिये हुए मान-प्रतिष्ठा में सुख मानना—ये दोनों बन्धन रूप हैं। बिना विवेक के, दुःखों के कूवाँ रूप, उपर्युक्त दोनों बन्धनों में जीव पड़े हैं; वेषधारी तो और अधिक ॥ २२ ॥

संस्कार मन दग्ध बिन, ह्वै न सकै जिव थीर।
ताते शीघ्र उपाय करि, स्थित हो तजि भीर ॥ २३ ॥

बोध-वैराग्य-द्वारा, मनोमय-संस्कार-वासनाओं को बिना भस्म किये, जीव शान्त नहीं हो सकता। अतएव उपाय पूर्वक वासना-समूह को त्याग कर, शीघ्र स्थित होना चाहिये ॥ २३ ॥

सफल होय तब समझ सब, हरक्षण दुख जब यादि।
कहन सुनन सोऊ सफल, तजि हन्तो सत बादि ॥ २४ ॥

शरीर धरकर जो संसार में निरन्तर दुःखभोगना पड़ता है—इसका जब हर समय स्मरण रहे; तब सब समझदारी की सफलता होती है। ज्ञान-कथन और श्रवण, वह भी तभी सफल होता है, जब जड़-शरीर संसार का अहंकार त्याग कर, सत्य स्व-स्वरूप में रत हो ॥ २४ ॥

जहाँ मानि के भाव करि, तहाँ अभावहि जान।
भाव अभाव से पृथक है, ज्ञाता जीव सुजान ॥ २५ ॥

जिस प्राणी-पदार्थ में, मैं-मेरा मान करके, प्रेम टिकाया जायगा; वहाँ जानो तुम्हें हरक्षण अभाव का अनुभव करना पड़ेगा। परन्तु

श्रेष्ट ज्ञाता चैतन्य जीव का मुख्य स्वरूप, भाव-अभाव दोनों से पृथक—निर्विकार है ॥ २५ ॥

नहिं कछु नाता जीव से, बिन मानन्दी खास।

मानव जहँ तक ठानिये, वस्तु योग मिलिभास ॥ २६ ॥

बिना मानन्दी (अहन्ता-ममता) के जीव के मुख्य स्वरूप से, किसी अन्य प्राणी-पदार्थों का, कोई किञ्चिन्मात्र सम्बन्ध नहीं है। स्व-स्वरूप के अतिरिक्त जहाँ तक प्राणी-पदार्थों में मैं मेरापन निश्चय है, उन वस्तु-प्राणियों का इन्द्रिय-मन के सामने संयोग पड़ते ही, सुख-दुःख प्रतीत होने लगते हैं ॥ २६ ॥

भासिक भास से भिन्न है, समावेश नहिं ताहि।

मात्र भूल सुख मनन से, चलत प्रवाह सदाहि ॥ २७ ॥

पंच विषय रूप भास से, भासिक जीव सर्वथा-सर्वदा पृथक् है; जीव में पंच विषय का किञ्चिन्मात्र प्रवेश नहीं है। केवल शुद्ध स्व-स्वरूप को भूल-वश पंच विषयों के सुख-मनन की प्रवाह-धारा, सदैव चलती रहती है ॥ २७ ॥

नामी जीव विचार करि, नाम रूप विस्तार।

साथी बनि तेहि को सदा, करत क्रिया व्यवहार ॥ २८ ॥

विचार करके देखिये, सबका नाम करण करने वाला नामी जीव ही, नाम-रूप (संज्ञा-शरीर) की कल्पना फैला रखा है। उन्हीं जड़-पदार्थों का जीव संगी बन कर, सदैव विषय-क्रिया का व्यवहार करता रहता है ॥ २८ ॥

तेहि में जब प्रतिकूल लखि, करि विवेक निरुवार।

क्षण में सबको त्यागि के, विरति भाव उर धार ॥ २९ ॥

जिन प्राणी पदार्थों में, अज्ञान-दशा में जीव की अधिक आसक्ति रहती है, उन्हीं में जब प्रतिकूलता तथा दुःख समझ लेता है, तब विवेक करके उनका मोह छोड़ देता है। पुनः क्षणमात्र में उन सबका सम्बन्ध त्याग कर, वैराग्य-भाव हृदय में धारण कर लेता है ॥ २९ ॥

राजाभर्तृहरि का वैराग्य

आज से दो हजार वर्ष पूर्व, राजा भर्तृहरि उज्जैन नगरी में राज्य करते थे। उस समय आप युवा अवस्था में थे। आप अपनी पिंगला रानी में अति आसक्त थे। राज्य की सारी बागडोर पिंगला के हाथ में थीं। राजा कागज पर केवल हस्ताक्षर करते थे। पिंगला में राजा जितना ही प्रेम करते थे, पिंगला उतनी ही छलकारिणी थी। वह दुष्टा, गुण-मन्दिर सुन्दर नवयुवक पति (राजा भर्तृहरि) को अपने हाव-भाव में भुलाकर, घोड़ा-दरोगा (एक नौकर) से फँसी थी। उसका मर्म राजा नहीं जानते थे।

भर्तृहरि के छोटे भाई विक्रमादित्य, इसके छल को जान गये, और इनसे यह देखा न जा सका। अतः अपने बड़े भाई से, पिंगला के चरित्र के विषय में सन्देह प्रकट किये। भर्तृहरि जी चौकन्ने होकर कहने लगे-"ऐसी बात नहीं हो सकती। तुम भूल में न हो ? पिंगला तो बड़ी पतिब्रता, हमारे में एकनिष्ठा है।'

रात में जब राजाभर्तृहरि पिंगला से मिले, तब यह सारी बात कह सुनाई। क्योंकि अत्यन्त विषयासक्त स्त्रैण पुरुष, स्त्री से न कहने योग्य भी, अपनी सारी बातें कह देता है। पिंगला ने अनेकों शपथ खाकर बड़ा प्रेम प्रकट किया और कहा—"प्यारे! तुम्हें छोड़कर अन्य पुरुष का मैं मुख नहीं देखना चाहती।" भर्तृहरि को पिंगला का दोष नहीं दिखा।

अब पिंगला विक्रमादित्य को राज्य से बाहर निकलवाने की चिन्ता में रहने लगी। क्योंकि इन्हें अपने सुख के काँटे समझती थी। राजमहल के पास एक सेठ का मकान था। पिंगला ने सेठ को बुलवा कर कहा कि "तुम राजा के कार्यालय में, एक निवेदनपत्र दो, उसमें यह निवेदन करो कि 'हमारी वधू को विक्रमादित्य चाहते हैं। अतः सरकार की ओर से इसके लिये सुनवाई हो। नहीं तो मैं कुटुम्ब-सहित आपका राज्य छोड़कर अलग चला जाना चाहता हूँ।'

यह बात सुनकर सेठ काँप गया और कहा—"सरकार! विक्रमादित्य तो बड़े सरल, न्याय-प्रिय तथा चरित्रवान् हैं। उनको यह मिथ्या दोष कैसे लगाया जाय?" पिंगला ने कहा—"यदि तुम मेरी कही बात न करोगे, तो मैं तुम्हारे कुटुम्ब-सहित तुम्हें नष्ट करवा दूँगी। सेठ डर गया और पिंगला के कथनानुसार राजा के पास निवेदन कर दिया।

भर्तृहरि जी बहुत आश्चर्य में पड़ गये। पिंगला ने कहा—"विक्रमादित्य दोषी है, तभी तो हमारे ऊपर मिथ्या दोष लगाया था।" दूसरे दिन सेठ, सेठ की पुत्र वधू और विक्रमादित्य—ये तीनों राजा के पास बुलाये गये। इसके विषय में विक्रमादित्य से पूछा गया। वे बेचारे क्या बतलाते, अधमरा-सा हो गये। इधर पिङ्गला के बताये अनुसार, सेठ और सेठकी पुत्र-वधू ने विक्रमादित्य पर जोरदार शब्दों में दोष लगाये। सेठ ने कहा—"विक्रमादित्य हमारी पुत्र-वधू को चाहते हैं। लोभ दिखाकर जब हार गये, तब बलपूर्वक उसे अपनाना चाहते हैं। सरकार की ओर से हमारी रक्षा हो। नहीं तो हम आपका राज्य छोड़ देंगे।"

बिलकुल झूठी बात, जोरदार शब्दों में सुनकर, विक्रमादित्य स्तम्भित रह गये; और सेठ से कहे—"भाई! लोभ या भयवश झूठी बात कह कर, किसी को दोष लगाना महापाप है। ऐसा आप क्यों करते हैं?" परन्तु विक्रमादित्य को निर्दोष समझते हुए भी, पिङ्गला के डर से सेठ जोरदार शब्दों में उन्हें दोष लगाता रहा।

यह सब सुनकर विक्रमादित्य पर भर्तृहरि को बहुत क्रोध जगा, और तुरन्त विक्रमादित्य को राज्य से निकल जाने का आदेश दे दिया। जाते समय भर्तृहरि को प्रणाम किये और कहे कि "भैया! कुछ दिन के पश्चात् वास्तविकता का पता चलने पर हमारे लिये आपको पश्चाताप करना पड़ेगा।" यह कहकर विक्रमादित्य राज्य छोड़ दिये।

इधर पिंगला को निष्कंटक सुख प्राप्त होने लगा। उस हरामजादी का घोड़ा-दरोगा से सम्बन्ध चालू ही था। कुछ दिन के पश्चात् एक तपस्वी ब्राह्मण ने, शक्ति-गुण-वर्द्धक एक फल लाकर राजा को दिया, और कहा—"इसको खाने से मनुष्य के शरीर की ओज-शक्ति बहुत दिन सुरक्षित रहती है।' राजा ने तपस्वी को बहुत-सा धन देकर विदा किया। तपस्वी के चले जाने पर राजा ने सोचा—"इस फल को खाकर मैं क्या कल्याण करूँगा ? इसको यदि पिंगला खायेगी, तो उसका शरीर अधिक दिन ओज-तेज पूर्ण रहेगा। वही हमारे सुख की बूटी है।" ऐसा विचार कर राजा ने उस फल को पिंगला को दिया। पिंगला राजा से लिपट गयी, और कहने लगी— धन्य हमारे प्राण-नाथ ! आपके बिना हमारा ऐसा आदर कौन करे ? अच्छा, यह उत्तम फल है। इसे स्नान करके खाऊँगी।"

जब राजा दरबार में चला गया। पिंगला ने सोचा कि "यह फल मैं खाकर क्या करूंगी ? यह यदि हमारा यार घोड़ा-दरोगा खायेगा, तो उसके बहुत दिन बलसाली रहने से, हमें सुख मिलेगा। अतः शीघ्र घोड़ा-दारोगा को बुलाकर, पिंगला ने उसे फल दिया, और उसका गुण बताया' दरोगा ने कहा—"अच्छा, इस पुनीत फल को मैं स्नान करके खाऊंगा।" फल लेकर जब घर आया, तब वह भी विचार में पड़ गया।

घोड़ा-दरोगा पिंगला से फंसा होने पर भी, नगर की वेश्या से भी फंसा था। उसकी अधिक आशक्ति वेश्या पर ही थी। अतः उसने सोचा कि "यह फल खाकर मैं क्या करूंगा ? यह यदि वेश्या खा ले, तो उसके बहुत दिन बलवती रहने से, हमें सुख मिलेगा।" अतएव वह फल ले जाकर वेश्या को दिया और उसका गुण बताया। वेश्या ने भी कहा कि "इस पुनीत फल को मैं स्नान करके खाऊंगी।'

घोड़ा-दरोगा के चले जाने पर, वेश्या सोचने लगी कि "यह फल खाकर मैं क्या करूँगी; इसे यदि राजा भर्तृहरि को खिलाया जाय, तो वे बहुत दिनों तक बल-तेज से सम्पन्न रहेंगे और प्रजा का

पालन करेंगे।" अतः ऐसा विचार करके उसने वह फल ले जाकर, राजा भर्तृहरि को दिया।

उस फल को देखते ही, राजा भर्तृहरि के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वे वेश्या से पूछे कि "यह फल तूने कहाँ से पाया " उसने कहा "घोड़ा-दरोगा से।" घोड़ा-दरोगा बुलाया गया और उससे भी पूछा गया कि "यह फल तुम कहाँ से पाये हो?" घोड़ा-दरोगा डरा तो बहुत, परन्तु अब बचने का कोई मार्ग न देखकर, साफ़-साफ कह दिया कि यह फल पिंगला रानी से हमें मिला है। राजा ने वेश्या और दरोगा को छुट्टी दे दिया। और फल लेकर रंग महल में गया। पिंगला से राजा ने पूछा—"वह फल, जो मैंने दिया था; तुमने खा लिया?" पिंगला प्रेम दिखलाती हुई आकर राजा की गोद में चिपक गयी और कहने लगी—"प्राणनाथ! कभी मैंने आपकी बात टाली है? वह तो आपके जाने के पश्चात् ही मैं स्नान करके खा ली थी।"

राजा ने अपनी जेब से फल निकाल कर दिखलाते हुए कहा कि "यह क्या है; कहाँ से आया है?" पिंगला ने अपना दोष खुला हुआ जानकर, अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

राजा तुरन्त रंग-महल से बाहर आये, और उस फल को खा लिये तथा अपने सच्चे भ्रात विक्रमादित्य के देश से निकलते समय की बात सोचकर बहुत दुखी हुए। राजा भर्तृहरि को पिंगला रानी ही से नहीं, पूरे राज्य और सब प्राणी-पदार्थों से अखण्ड वैराग्य हो गया। राजा ने मन्त्री को आदेश दिया कि "विक्रमादित्य को खोजकर, उन्हें राज्यगद्दी दिया जाय। जब तक वे न मिलें, तब तक मन्त्री-मण्डल राज्य सम्हाले।" ऐसा आदेश देकर अपने वैराग्य की धुन में भर्तृहरि ने वन का मार्ग पकड़ा।

उन्होंने अपने को, पिंगला को, दरोगा को तथा वेश्या को भी धिक्कारते हुए एक बड़ा उत्तम श्लोक कहा है—

"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।
साप्यन्यमिच्छति जने सजनोऽन्य सक्तः॥

अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या।
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

भावार्थः-जिसको मैं चाहता हूँ, वह (मेरी रानी पिंगला) मुझे नहीं चाहती, वह दूसरे पुरूष को चाहती है। वह पुरुष (दरोगा) रानी को नहीं चाहता, वह दूसरी ही स्त्री (वेश्या) पर मरता है। वह स्त्री, जिसे रानी का यार दरोगा चाहता है, वह मुझे चाहती है। इसलिये रानी को धिक्कार है। उस दरोगा को धिक्कार है। उस वेश्या को धिक्कार है। मुझको धिक्कार है और उस कामदेव को धिक्कार है, जो ये सब काण्ड कराता है।

महाराज भर्तृहरि अब निश्चय कर लिये—

श्लोक—"भोगे रोग भयं कुले च्युति भयं वित्ते नृपालाद्भयम्।
मानें दैन्य भयं बले रिपु भयं रूपे जाराया भयम्॥
शास्त्रे वादि भयं गुणे खल भयं काये कृतान्ताद्भयम्।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

भावार्थ—विषयों के भोगने में रोग का भय है, कुल में दोष होने का भय है, धन में राजा-चोर आदि का भय है। मान में दीनता का भय है, बल में शत्रुओं का भय है, सौन्दर्य में बुढ़ापा का भय है। शास्त्र में वाद-विवाद का भय है, गुणों में दुष्टों का भय है, शरीर में मौत का भय है। इस प्रकार संसार के सभी पदार्थों में मनुष्य को भय है, केवल वैराग्य ही निर्भयपद है।

ऐसहिं सतत विचार कर, थीर होत तब जीव।
सकल मानना छोड़िके, शुद्ध रूप सोइ शीव॥ ३०॥

'विषय-सुखों में दुःख है, तथा जगत् का प्रेम निस्सार है' ऐसा निरन्तर विचार करके ही, जीव वासना-रहित होकर शान्त हो सकता है। संसार-शरीर तथा संसार के प्राणी-पदार्थों को, अपना मानना जो छोड़ देता है, वही वासना-हीन, स्वच्छ, कल्याणस्वरूप—शिव है।

निज ही निज को भूलि के, विषयन में सुख मानि।
निश्चय करि सो ताहि में, बिन बिवेक चव खानि॥ ३१॥

यह जीव स्वतः ही अपने स्वरूप को भूल कर, विषयों में सुख मान रहा है। बिना विवेक के तुच्छ विषय ही में सुख निश्चय करके, वासना-वश जीव चारों खानियों में भ्रमता रहता है ॥ ३१ ॥

मन इन्द्रिय सब कुसँग जग, गो गोचर जो होय।

सुखमय वृत्ती चलित तहँ, दुरगति जानो सोय ॥ ३२ ॥

मन-इन्द्रिय और गो-गोचर, अर्थात् जहाँ तक पंच विषय संसार है, सब जीवों के लिये कुसंग रूप है। संसार के किसी भी व्यक्ति-वस्तु को सुख रूप मानकर, जो मन चंचल होता है; समझो, यही जीव की दुर्दशा है ॥ ३२ ॥

निश्चय मन सो पलटि के, दुखहिं धार लखि लेय।

अवगुण तजि गुण को गहै, यही सयाने ध्येय ॥ ३३ ॥

संसार-शरीर तथा विषयों में जो सुख-निश्चय है, उसको विवेक से पलटकर, उसे दुःख की धारा ही समझ ले। सर्वत्र दोषों का त्याग करते हुए, केवल गुणों को धारण करे, यही श्रेष्ठ पुरुषों का लक्षण है ॥३३॥

सन्त का यही लक्षण है कि वह दूसरे के दोषों को न देखते हुए, केवल गुण ग्रहण करे, और राग-द्वेष त्यागकर, शान्ति को प्राप्त करे।

सन्त–असन्त के लक्षण

एक ब्राह्मण बहुत दरिद्र और साथ ही दुराचारी भी था। एकबार वह राजा के यहाँ कुछ धन की याचना करने के लिये चला। मार्ग में एक सन्त मिले। सन्त ज्योतिष-शास्त्र के भी ज्ञाता थे। वे वहाँ पर एक गुफा में रहते थे। सन्त ने ब्राह्मण से पूछा—"तुम कहाँ, किस लिये जाते हो? ब्राह्मण ने अपना अभिप्राय बतलाया। सन्त का हृदय उसके दुःख पर द्रवित हो गया और उन्होंने कहा—'इस प्रकार राजा के यहाँ धन नहीं पाओगे। मैं युक्ति बतलाता हूँ। तुम जब राजा के यहाँ जाना, तब राजा के पूछने पर कहना कि मै ज्योतिषी हूँ, सन्–सम्वत् की दशा में, मैं एक प्रश्न का उत्तर देता हूँ।' फिर जब राजा पूछेगा कि, 'इस वर्ष की क्या दशा है।' तब तुम बता देना कि इस वर्ष में जलकी अतिवृष्टि से प्रजा पीड़ित रहेगी। इत्यादि।

ब्राह्मणं जब राजा के यहाँ पहुँचा; तब सन्त के बतलाये अनुसार "आरम्भ वर्ष में जल की अतिवृष्टि से प्रजा-पीड़ित होने की दशा बतलाया है।" राजा ने ब्राह्मण को चौमासा (वर्षा में) अपने यहाँ रोका। उस वर्ष सचमुच जल की अतिवृष्टि से प्रजा पीड़ित हुई। ब्राह्मण के वचन की सत्यता देखकर, राजा ने उसे अधिक धन दिया। और ब्राह्मण से राजा ने कहा -"आपको यदि और कुछ माँगना है, तो माँग लें।" ब्राह्मण ने कहा—"हमें दो दिन के लिये दश आदमी दीजिये।" राजा ने दश आदमी दे दिया।

ब्राह्मण उन आदमियों को लेकर अपने घर की ओर चल पड़ा। ब्राह्मण ने सोचा "सन्त को जान से मरवा दिया जाय तो अच्छा होगा। क्योंकि जो युक्ति हमें बताये हैं, यह कहीं दूसरे को बता देंगे, तो हमारा निर्वाह-धन्धा नष्ट हो जायगा।" ऐसा विचार कर जब सन्त की गुफा के पास ब्राह्मण आया, तो दशों आदमियों से कहा— "पास के तालाब से ले जाकर गुफा में इतना पानी डाल दो, कि गुफा भर जाय।"

उन आदमियों ने वही किया। पानी से गुफा भर गया। ब्राह्मण ने सोचा कि "अब तो महात्मा मर ही गये होंगे।" अतः दशों आदमियों को राजा के पास लौटा कर, ब्राह्मण अपने घर चला गया। महात्मा की गुफा इतने ढंग से बनी हुई थी कि जहाँ महात्मा बैठे थे, वहाँ पानी नहीं पहुँचा।

ब्राह्मण दूसरे वर्ष पुनः राजा के यहाँ चला। मार्ग में उसी तालाब पर उतरा। गुफा से महात्मा निकले। महात्मा को देखकर यह बहुत भयभीत हुआ। महात्मा ने कहा—"तुम भय मत खाओ। अच्छा, अबकी बार राजा से संवत् के विषय में क्या बताओगे?" ब्राह्मण ने कहा—"जो परसाल बताये थे।" सन्त ने कहा—"परसाल की योग्यता इस साल नहीं है, इस वर्ष राजा के पूछने पर कहना कि "अबकी सम्वत् में अग्नि-प्रकोप से जनता पीड़ित रहेगी।"

राजा से ब्राह्मण ने यही कहा। सचमुच उस वर्ष जनता अग्नि से

पीड़ित हुई। बात की सत्यता होने से, राजा ने पुनः ब्राह्मण को अधिक धन दिया। ब्राह्मण चलते समय राजा से दश बोझा लकड़ी माँग कर साथ ले चला; और सोचा कि "तबकी बार सन्त जी पानी से न मरे, तो अबकी बार गुफा पर अग्नि जला दिया जाय।" निदान दशों बोझा लकड़ी महात्मा की गुफा पर रख कर तथा आग लगाकर वह चल दिया। परन्तु युक्ति और प्रारब्ध से महात्मा पुनः बच गये।

तीसरी बार ब्राह्मण पुनः राजा के यहाँ चला। मार्ग में उसी तालाब पर पुनः उतरा। यह तो समझता था कि महात्मा का शरीर जल गया होगा। परन्तु वे अपनी युक्ति और प्रारब्ध से बचे थे। महात्मा गुफा से निकले। उन्हें देखकर अबकी बार ब्राह्मण बहुत घबराया। महात्मा ने सान्त्वना देते हुए कहा- "अबकी बार राजा के पूछने पर बतला दीजियेगा कि इस वर्ष धन-धान्य से प्रजा सुखी रहेगी।

ब्राह्मण राजा के यहाँ आया, और उनके पूछने पर उपर्युक्त बात बतला दिया। पूर्व नियमानुसार चौमासा-वर्षा राजा के यहाँ ब्राह्मण रहा। इस वर्ष वर्षा अच्छी हुई, और सचमुच धन-धान्य से प्रजा सुखी हुई। अतः ब्राह्मण की बात सत्य होने से राजा ने काफी धन पुरस्कार रूप में ब्राह्मण को दिया।

अपने ऊपर महात्मा की अपार क्षमा और उपकार तथा अपनी ओर से उनके प्रति दुष्टता का व्यवहार सोचकर ब्राह्मण के हृदय में अबकी बार बड़ी ग्लानि हुई। महात्मा की साधुता ने ब्राह्मण की दानवता पर विजय पायी, और अबकी बार ब्राह्मण सोचने लगा कि "महात्मा की सेवा में काफी धन अर्पित करूंगा।"

निदान घर लौटते समय उसने महात्मा के चरण में काफी धन अर्पित किया और अपनी पूर्व भूलों पर क्षमा माँगा। महात्मा ने कहा—"भाई! तुमने जो अपने मन को मलीन करके हमारे साथ दुर्व्यवहार किया, उसका बुरा फल तुमको तो अवश्य भोगना पड़ेगा। परन्तु मैं तो तुम्हारा बुरा नहीं चाहता। तुम्हारे द्वारा जल और अग्नि से मैं दो बार कष्ट पाया और अबकी बार आदर तथा धन पाया; यह मैं अपना ही कर्म-फल-भोग समझता हूँ।

क्योंकि पहले वर्ष सारी प्रजा को जल से कष्ट होना था; तो मैं भी राजा के राज्य में था। अतः मुझे भी जल से कष्ट हुआ। इसी प्रकार दूसरे वर्ष अग्नि से प्रजा को कष्ट होना था, तो मैं भी अग्नि से कष्ट पाया, वह हमारा ही कर्मभोग था। इसी प्रकार इस वर्ष जब सारी प्रजा को धन-धान्य से सुखी होना था, तब तुम मुझे भी धन-धान्यादि अर्पित किये हो।

अतएव तुम्हारे द्वारा दो बार कष्ट पाकर न तो तुम्हारे प्रति वैर भाव एवं ईर्ष्या करता हूँ; और अबकी धन-आदर पाकर न मैं तुम्हारे प्रति राग या आसक्ति ही करता हूँ। इसीलिये हमारे जीवन में न कोई हमारा शत्रु है और न कोई मित्र है।

शिक्षा—संसार के लोगों ! आँखें खोल करके देख लो! शत्रु के प्रति वैर न हो और मित्र के प्रति आसक्ति न हो—यह संत का लक्षण है।

दया शील समता जहाँ, साधु संग नित होय।
सोई सुसँग बखानिये, निश्चय करिये सोय॥ ३४॥

जीवों पर करुणा-दृष्टि रूपी दया, कठोरता त्यागकर विनम्रतारूपी शील, सबके साथ हित-प्रिय का बर्ताव रूपी समता और संतों का निर्णय-सत्संग जहाँ पर सदा होता है, उसी को सुसंग कहना चाहिये उसी से अपना कल्याण होगा—ऐसा निश्चय करना चाहिये॥३४॥

देखत-देखत गुजर गये, देह अनेकन पाय।
वर्तमान सोउ जात है, होश न अजहूं आय॥ ३५॥

जीवों को अनेकों बार मनुष्य शरीर मिले, परंतु देखते-सुनते संसार के विषयों में उलझे हुए, इसके सारे उत्तम समय व्यतीत हो गये। जो वर्तमान नर-देह का समय है, यह भी बीता जा रहा है, परंतु जीव कभी चेत में नहीं आता—सबको त्यागकर शान्ति नहीं लेता, संसार में उलझना ही पसंद करता है॥३५॥

यह भी न रहेगा

एक मनुष्य प्रथम धनवान् था, पीछे से धन-हीन हो गया। परन्तु वह मनुष्य विवेकी था। वह घर के चारों ओर दीवारों में लिख रखा था कि "यह भी न रहेगा।" उसका एक कोई मित्र उससे मिलने आया। मित्र ने उसकी दरिद्र-दशा देखकर कहा—"मित्र जी! आप इस समय बड़ी तंगी में हैं, कैसे निभाते हैं? उसने कहा—"मित्र जी! मैं अपने घर के चारों ओर पहरेदार बैठा दिया हूँ! हमारे घर में चिन्ता घुस नहीं सकती। मैं जिधर दृष्टि घुमाता हूँ, उधर लिखा मिलता है "यह भी न रहेगा।" जब पहले के सुख के दिन नहीं रहे, तब अब के दुःख के दिन भी कैसे रहेंगे? सूर्य के उदय-अस्त के साथ-साथ ये दुःखके दिन भी बीत जायँगे। अतएव "यह भी न रहेगा" इस उपदेशात्मक शब्द का स्मरण करते हुए वह मित्र भी मोह-शोक से रहित हुआ।

शिक्षा—जीवन के समय रूपी पट पर, सुख-दुख, संयोग-वियोग मान-अपमान रूपी चित्र, सिनेमा के फिल्म के समान गुजरते हुए चले जाते हैं। इसके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये। चिन्ता करनी चाहिये अपने उद्धार के लिये। अतएव आप भी अपने हृदय-पट पर लिख लीजिये "यह भी नहीं रहेगा।"

मोह नींद आलस अधिक, मन अनुकूल मिलाय।
सुत मित यौवन नारि धन, हिये न हर्ष समाय॥ ३६॥

प्राणी-पदार्थों के मोह-निद्रा में जीव मस्त होकर सोता है, कल्याण-कार्यों में इसे आलस्य अधिक लगता है; मन के अनुकूल प्राणी-पदार्थों मे यह अपने को जोड़ता रहता है। पुत्र, मित्र, जवानी, स्त्री तथा धन—इन सबों को पाकर, इसके हृदय में हर्ष नहीं समाता॥ ३६॥

छूटत मिलत अनादि से, कर्मन के अनुसार।
याते योग्य उपाय करि, चेति गुरू पद सार॥ ३७॥

इन सांसारिक प्राणी-पदार्थों का अनादिकाल से, कर्म-वासनाओं के अनुसार संयोग-वियोग होता रहता है। अतः इन क्षणभंगुर वस्तुओं में सन्तुष्ट न होकर, सावधान होकर उचित प्रयत्न करो, और वैराग्यप्रिय सद्गुरु के चरणों में लग कर, जीवन का लाभ प्राप्त करो ॥ ३७ ॥

टाल मटोल की चाल मन, आलस प्रगट कराय।
आज नहीं कल करूँगा, गाफिल समय बिताय ॥ ३८ ॥

कल्याण-साधन करने में या सबका अभाव करके स्व-स्वरूप में शान्त होने में, जो टालमटोल होता है तथा आलस्य प्रकट होता है—यह सब अविवेकी मन की चाल है। अभी सांसारिक भोगों तथा प्रपंचों में भी चार झपट्टा मार लूँ, पीछे साधन-भजन एवं स्वरूप स्थिति कर लूंगा—इस प्रकार असावधानी में जीव अपना अनमोल समय बिता देता है ॥ ३८ ॥

भजन के लिये टालमटोल

एक सेठ की स्त्री, सेठ को सत्संग-भजन करने के लिये कहा करे। परन्तु वह आगे की आशा देकर टालता ही जाय। एक दिन सेठ बीमार पड़ा। औषध मँगाया गया। स्त्री ने उसे ताक में रख दिया, पुरुष को दिया नहीं। एक दिन बीत गया। दूसरा दिन भी बीता जा रहा था। सेठ ने कहा—"जो औषध मँगाया गया है, उसे देती क्यों नहीं?" स्त्री ने कहा—"आज नहीं तो कल सही, किसी दिन देही दूंगी।" सेठ ने कहा—"बीमार मैं आज हूँ, औषध तू कल देगी? यदि बीच में मर गया तो।" सेठानी ने कहा—"मरना तो आप मानते ही नहीं। आप को यदि मरनेका डर होता; तो सत्संग-भजन कल के लिए नहीं टालते।" स्त्री का इतना वाक्य सुनकर सेठ जी चेत गये; और क्षणभंगुर जीवन की आशा-भरोसा त्याग कर, सत्संग-भजन में लग गये।

शिक्षा—धर्म-परमार्थ तथा जीव के कल्याणकृत कार्यों को कभी नहीं टालना चाहिये।

बीता सो मिलता नहीं, आगे आशा दूर।
वर्तमान सो हाथ में, कारज करिये पूर ॥ ३६ ॥

जो भूतपूर्व का समय बीत गया, वह तो कदापि मिल नहीं सकता; और भविष्य-समय में कल्याण-साधन की आशा करना व्यर्थ है; क्योंकि वह भी दूर—अनिश्चित है। वर्तमान का समय ही अपने हाथ में है, अतएव इसी में अपना कल्याण-कार्य पूर्ण रूप से करलो, सबका त्याग करके शान्ति ले लो ॥ ३६ ॥

समय असूल्य न खोइये, चेत करो मम भाय।
स्वप्न भाँति जग खेल है, जागि देखि कछु नाय ॥ ४० ॥

उत्तम मनुष्य शरीर का अमूल्य समय मत नष्ट करो, ऐ मेरे प्रिय बन्धु! ससार-मोह से सावधान हो जाओ। संसार के सारे व्यवहार सपना के समान हैं, विवेक में जाग करके देखो, तो कुछ सार नहीं है ॥ ४० ॥

मानव-शरीरका जो यह उत्तम अवसर है। इसमें स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, विद्या, धन तथा अधिकार आदि प्राप्त किये जा सकते हैं। परन्तु इन सबों से जीवन के अवसर का एक मिनट भी नहीं बढ़ाया जा सकता। अतएव कुटुम्ब, धन, विद्या, अधिकार आदि से मानवतन का अवसर ही उत्तम है। अतः इससे दुर्लभ मोक्ष-प्राप्ति का ही प्रयत्न करना चाहिये।

जीवन के सभी व्यवहार स्वप्न वत् सार-हीन हैं। अनादिकाल से अनन्तों जीवन और उनके व्यवहार स्वप्नवत् बीत गये। उनका आज स्मरण तक नहीं है। तैसे वर्तमान जीवन के भी समय तथा व्यवहार एवं भोग-विलास, मान-प्रतिष्ठा या दुःख आजकल में शरीर के साथ समाप्त होकर, सदा के लिये विस्मृत हो जायँगे। अतएव ऐसे सर्वथा सारहीन जीवन, व्यवहार तथा संसार में केवल वासनाहीन होकर दुःख की निवृत्ति करना ही लाभ है।

संसार का सम्बन्ध स्वप्नवत्

राजपूताना का एक लड़का, जिसके अन्य कोई न था, वह रोजी के लिये भटकता-भटकता विहार प्रदेश में जा पहुँचा। वहाँ एक दूकान में उसने नौकरी कर ली। वह फिजूलखर्ची और दुर्व्यसनी नहीं था। समय-समय से वह सत्संग भी करता था। नौकरी करते दो वर्ष बीते। उसके पास कुछ रुपये इकट्ठे हो गये। वह नौकरी छोड़कर एक मनुष्य के साझी में दूकान कर लिया। कुछ दिन के पश्चात् स्वतन्त्र दूकान किया और थोड़े ही दिनों में उसकी ईमानदारी की ख्याति बढ़ गयी। उसका विवाह भी हो गया। दो-चार बच्चे हुए। एक बड़ी कोठी बनवाकर, सकुटुम्ब सानन्द रहने लगा। वह चार-पांच लाख का आदमी हो गया। उसे लोग सेठजी-सेठजी कहने लगे।

व्यापार के ही सम्बन्ध में वह किसी अन्य शहर में गया था। शहर से लौटकर जब आया, तो क्या देखता है कि भूचाल आने से उसका घर पृथ्वी में धँस गया है। कुटुम्ब-सम्पत्ति सभी को पृथ्वी ने अपने पेट में कर लिया है। कुटुम्ब, सम्पत्ति और घर उसे सिनेमा और स्वप्न के चित्र के समान प्रतीत होने लगे।

वह सोचने लगा—"अहो! यह क्या लीला है? मैं राजपूताने से अकेला आया, यहाँ हमें स्त्री मिली, पुत्र-पुत्री मिले, घर मिला, लाखों के द्रव्य मिले। फिर क्षण ही में सब समाप्त! अहो! संसार बड़ा विचित्र है। इसीलिये तो सन्तों ने संसार का सम्बन्ध स्वप्नवत् कहा है।"

इस प्रकार विचार करते-करते, उसके मनमें इस दुःखालय, परिवर्तनशील संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसके पास केवल दो चद्दर और एक लोटा था। उसको लेकर विरक्ति-भाव पूर्वक सन्तों की खोज में चल पड़ा।

शिक्षा—मोह-नींद से जागकर अपना कल्याण-साधन करना ही सार है।

भजन चेतावनी

तू कहा मान मन, तेरा क्षण भंग तन, चेत प्यारे,
करले साधन भजन तू सकारे ॥ टेक ॥
पानी का बुलबुला देह तेरी । होगी इसके विनशते न देरी ॥
तू विषय कीट बन, हो गया मूढ़, न सुधारे,
रत्न जीवन को विषयों में हारे ॥ तू कहा० ॥ १ ॥
धन कुटुम घर वो अधिकार पाया । स्वप्न की सम्पती झूठी माया ॥
तू असत् जानकर, इनका मत शानकर, त्याग सारे,
जिनको भव-बन्धनों से उबारे ॥ तू कहा० ॥ २ ॥
पेट वो भोग हित तू है धाया । रातदिन न कहीं चैन पाया ॥
जाके सत्संग में, ज्ञान के गंग में, न पखारे,
मनको मैला किये पाप धारे ॥ तू कहा० ॥ ३ ॥
जो है अपना, तू उसको भुलाया । जो न अपना, उसी में लुभाया ॥
याते भव फन्द है, नित्य ही द्वन्द्व है, दुःख सारे,
हो अजन्मा मरे जन्म धारे ॥ तू कहा० ॥ ४ ॥
सत्य चिद् शान्त निर्द्वन्द्व तू है । देह से पार स्वच्छन्द तू है ॥
राग से मोक्ष हो, बोध अपरोक्ष हो, दृश्य न्यारे,
नित्य अभिलाष पारख विचारे ॥ तू कहा० ॥ ५ ॥

यहि हेतु सब साधु गुरु, सद्ग्रन्थन में गाय ।
जग असार बतलाय के, पारख ठौर लगाय ॥४१॥

इसीलिये सब विवेकी सन्त-गुरु सद्ग्रन्थों में निर्णय-कथन करते हैं । संसार को सार-हीन बतलाकर, पारख-स्थिति में लगाते हैं ॥४१॥

दुख देखै सब जगत में, जहँ तक प्राणि पदार्थ ।
मिलते छुटते देखिये, देहैं तक सब स्वार्थ ॥४२॥

जहाँ तक प्राणी-पदार्थों का पसारा है, सारे संसार में दुःख-ही-दुःख दिखलाई देता है । विचार करके देखिये सबका संयोग-वियोग होता रहता है । संसार के प्राणी-पदार्थों से तुम्हें क्या मिलेगा ?

केवल शरीर का तुच्छ स्वार्थ ही तो ! यह तो विवेकवान् का सहजिक होता रहता है। अतः सबसे उदास होकर कल्याण-साधन में लगो ॥ ४२ ॥

बिच्छू सर्पवत् भय सदा, तेहि सम जग को मानि ।
बचत रहै जग जाल से, विष सम विषया जानि ॥४३॥

बिच्छू-सर्प के समान ही, दुःखदायक संसारको समझ कर इससे सदैव डरता रहे। विष के तुल्य विषय-भोगों को समझकर, जगज्जाल से बचता रहे ॥ ४३ ॥

करि विवेक अलगाइये, अपना शुद्ध स्वरूप ।
अभय अखण्ड अचल अहै, द्रष्टा पारख रूप ॥४४॥

विवेक करके शरीर से अपने शुद्ध स्वरूप चैतन्य पारख को पृथक् कीजिये। शरीर सम्बन्ध में जो द्रष्टा है, वह अपना पारख स्वरूप निर्भय, अखण्ड तथा निश्चल है ॥ ४४ ॥

पारख का ठहराव करि, जस स्वारथ में लीन ।
रहै सदा ऊबै नहीं, नीर सुखी जस मीन ॥४५॥

जैसे संसारी देह के स्वार्थ व्यवहार में आसक्त रहते हैं, तैसे स्व-स्वरूप पारख चैतन्य की स्थिति-साधना में सदा तत्पर रहे। जैसे मछली को जल प्राणाधार है, तैसे मुमुक्षु को मोक्ष-साधन विवेक, वैराग्यादि प्राणाधार हैं। अतः साधन में कभी घबरावे नहीं ॥ ४५ ॥

लक्ष्य जहाँ जस जीव के, हृदय मनन तस होत ।
सबहिं काल में सोइ लखौ, बदलि देत तब खोत ॥४६॥

जीव का जहाँ, जिस प्रकार राग-द्वेष, उदासीन भाव का लक्ष्य रहता है; उसी प्रकार उनके सम्बन्ध में, हृदय में मनन-संकल्प उठते हैं। वैसे ही मनन जाग्रत-स्वप्न सब समय में रहता है। जब जीव अपने लक्ष्य को बदल देता है, तब पूर्व के भाव-मनन-संकल्प बदल जाते हैं ॥ ४६ ॥

तात्पर्य यह कि ध्येय के अनुसार सकल्प-मनन होते हैं। संकल्प-मनन के अनुसार कर्म तथा तद्नुसार ही फल मिलता है। अतः अपने ध्येय (लक्ष्य) को ठीक कर तथा राग-द्वेष से रहित होकर, कल्याण-साधन करना चाहिये।

रहि अखण्ड तहँ आप खुद, रबि सम नित निरधार।
बादलवत् सब जानिये, जग प्रपंच व्यवहार ॥४७॥

सूर्यवत् ज्ञानप्रकाश से ठोस, निरन्तर निराधार जैसे अपना अखण्ड स्वरूप है; तैसे सब कामना मिटाकर, उसमें निरन्तर स्थित रहो। संसार के व्यवहार-प्रपंच तो बादलवत् क्षणभंगुर, सार-हीन है, अतः इनमें मत आसक्त होओ ॥ ४७ ॥

जो जो सुख जग त्यागि के, शरण गहे गुरुदेव।
तो कस मोहै फिर उसे, है अभाग्य दुखमेव ॥४८॥

धन, स्त्री, मठ, मकान, जमीन तथा मान-बड़ाई आदि संसार के जिन-जिन सुखों को त्याग कर, सद्गुरु की शरण में आये, अर्थात् वैराग्य लिये। तो अब उसी संसार की माया में कैसे मोह रहे हो? अवश्य में यह आजका अपना बनाया दुःख रूप दुर्भाग्य है ॥४८॥

सुख पदार्थ जो कुछ रहे, शुभ कर्मन अनुसार।
सोऊ दुखमय जानि के, त्याग किये आसार ॥४९॥

शुभकर्मों के अनुसार माने हुए सुख के पदार्थ—स्त्री, पुत्र, धन, जमीन, मकान, अधिकार आदि—जो कुछ रहे। उनको भी दुःखमय असार जानकर मुमुक्षु त्याग कर देते हैं ॥४९॥

सन्त गुरु की शरण ह्वै, साधु भेष को धारि।
बने आलसी भक्ति बिन, सद्पुरुषार्थ बिसारि ॥५०॥

तदनन्तर सन्त-गुरु की आधीनता लेकर, साधु-वेष को धारण कर लेते हैं। किन्तु भक्ति-साधन-बिना आलसी बनकर, जिस लिये सब त्याग किये, वह सद्पुरुषार्थ भूल जाते हैं ॥५०॥

भेष धर्म गुरु ओट से, बिन प्रयास सुख प्राप्त ।
तहाँ न ठहरत मन्द मति, विषय बिवश दुख खात ॥५१॥

साधु-वेष, धर्म और गुरु के आधार में, बिना प्रयत्न के ही, साधु को सब अनुकूलता प्राप्त हो जाती है। तिस पर भी तुच्छ बुद्धि के जीव, वहाँ नहीं स्थिर रह पाते, विषयों के वश होकर दुःख ही भोगते हैं ॥ ५१ ॥

पहले जब मुमुक्षु गृहस्थी छोड़ता है, तो यह त्याग बड़े परिश्रम का फल रहता है। बड़े पुरूषार्थ, तत्परता, वीरता और कठिनाई से यह सफलता उसे मिलती है। परन्तु साधुवेष में आने के पश्चात्, कितने ही साधकों की वृत्ति प्राप्त हुए वस्तु, शिष्य, सेवक, धन, मठ, जमीन और मान-बड़ाई में आसक्त हो जाती है। कल्याण-साधन से दूर होकर, निष्प्रपंच जीवन से गिर कर, गृहस्थ के समान प्रपंचाकार हो जाते हैं। पूर्व गृहस्थी त्याग का जो परिश्रम था, उसे भूल जाते हैं। अतः साधक को अपने वैराग्य-दशा का महत्त्व सर्वोपरि समझ कर, जगत-प्रपंच से रहित होकर वैराग्य ही करना चाहिये। सद्गुरु सन्तों की श्रद्धा और उनका मार्ग नहीं छोड़ना चाहिये ।

क्षुधा विवश घर-घर फिरै, लालच वश जस श्वान ।
तृष्णा बेग प्रवाह में, बहे मनुष्य तस जान ॥५२॥

भूख और लालच के वश होकर, जैसे कुत्ता घर-घर दौड़ता है। इसी प्रकार तृष्णा के प्रवाह वेग में, मनुष्य को बहते हुए जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

केवट की तृष्णा

एक केवट (मल्लाह) अपने परिवार-सहित नदी के तट पर मकान बना कर रहता था। केवट बहुत गरीब था। कहते हैं जल के देवता वरुण हैं, एक दिन वरुण-देवता नदी पर प्रकट हुए और केवट की दरिद्रता देख कर द्रवित हो गये तथा उससे कहे कि "जो कुछ तुम्हें माँगना हो, माँग लो।"

केवट ने कहा—"यदि आप प्रसन्न हैं, तो हमारे घर को मजबूत बना दीजिये। हर वर्ष हमारा घर नदी में बह जाता है, अब कभी न बहे।" वरुण ने कहा—"जा, ऐसा ही हो जायगा।" उसका घर अच्छा मजबूत बन गया। केवट जब घर पर गया, तब उसकी स्त्री ने पूछा—"यह घर अच्छा मजबूत कैसे बन गया?"

केवट ने कहा—"वरुण ने वरदान दिया है।" स्त्री ने कहा—"तुझे माँगना भी नहीं आता, यदि माँगना ही था, तो ऐसा क्यों नहीं माँगा, कि घर 'किला' हो जाय!"

केवट जाकर वरुण से अपना घर 'किला' हो जाने का वर माँगा। वरुण ने 'ऐसा ही हो' कह दिया। फिर तो उसका घर किला हो गया। केवट से उसकी स्त्री ने कहा—"अरे निर्बुद्धि! किला राजा के होता है, जिसके पास राज्य होता है। तू ने किला तो माँगा। परन्तु राज्य नहीं माँगा। जा, राज्य माँग ला।" केवट जाकर वरुण देवता से राज्य की कामना की। वरूण ने केवट को राज्य भी दिया।

एक दिन स्त्री ने केवट से कहा—"तू राजा तो हुआ, परन्तु महाराजा या सम्राट तो नहीं हुआ। जब तक सारी पृथ्वी पर एकछत्र अपना राज्य नहीं होता, तब तक सुख कहाँ है? जा; वरुण से भूमण्डल का राज्य माँग ला!" केवट ने वरुण से जाकर यह भी इच्छा प्रकट की। वरुण ने उसको सारी पृथ्वी का राज्य दे दिया।

एक दिन स्त्री केवट से कहने लगी—"पृथ्वी का सारा राज्य तो मिला, परन्तु अन्तरिक्ष-स्थिति सूर्य, चन्द्र, तारागणों पर तथा वर्षा, शीत, गर्मी आदि पर अपना अधिकार नहीं हो सका। हाय! यह शक्ति हमें कब मिलेगी कि जब चाहूँ तब पानी बरसे, जब चाहूँ तब दिन हो, जब चाहूँ तब रात हो। मेरे संकल्प के अनुसार संसार को तथा पिण्ड-ब्रह्माण्ड की सारी क्रियायें हों! जा जा! इन चीजों को वरुण देवता से माँग ला!"

केवट वरुण के पास जाकर उपर्युक्त विषयों की याचना की! इसकी बढ़ती हुई तृष्णा को देख कर तथा असम्भवयुक्त इच्छाओं

को समझ कर वरुण को क्रोध आ गया और कहा—"तेरी तृष्णा बढ़ती ही जा रही है चल ! तू पुनः उसी पहले वाली टूटी झोपड़ी में रह ! ऐसा कहकर केवट को जो पहले दिया था, उसे सब छीनकर, उसके रहने के लिये पुरानी झोपड़ी कर दी ।

यह दृष्टान्त कल्पित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि संसार के प्राणी-पदार्थ तथा भोगों से मनुष्य का मन नहीं भरता। तृष्णा का परिणाम यह होता है कि मनुष्य जितना ही सुख चाहता है, उतना ही उसको दुःख मिलता हैं। अतएव तृष्णा का सर्वथा त्यागना ही सुख-प्रद है ।

जग असार परिश्रम बहु, तहाँ न ऊभत जीव ।
खोजि खोजि तेहि को गहै, जहाँ कलेश सदीव ॥ ५३ ॥

संसार असार है, सँसार के पदार्थों की प्राप्ति करने में बड़ा परिश्रम और विघ्न है; तिस पर भी वहाँ पर जीव नहीं घबराता। खोज-खोज करके जीव उसी पदार्थ को ग्रहण करता है, जिससे उसको सदा पीड़ा मिलती रहे ॥ ५३ ॥

याते कीजै यत्न यह, जेहि ते होय सुधार ।
एक चित्त जग मोह तजि, गुरु पद भजिये सार ॥ ५४ ॥

अतएव वही प्रयत्न करो, जिससे जीवन का सुधार हो। एक लक्ष्य होकर संसार का मोह छोड़ो, और सत्य गुरु-पद—स्व-स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करो ॥ ५४ ॥

देखि परिश्रम नहिं हटै, गहै भक्ति वैराग्य ।
सद्विवेक सद्ज्ञान लहि, सोइ श्रेष्ठ बड़ भाग्य ॥ ५५ ॥

मेहनत देख कर भागे नहीं, भक्ति, वैराग्य, सच्चा विवेक तथा सत्य स्व-स्वरूप-ज्ञान को धारण करे, ऐसा करने वाला ही, महान और बड़भागी है ॥ ५५ ॥

धर्म भक्ति से रहित जो, करि करि अत्याचार ।
देह रहे तक दुख सहै, आगे भोग अपार ॥ ५६ ॥

जो लोग धर्म-भक्ति से रहित हैं, वे चोरी, हिंसा, व्यभिचारादि दुष्ट कर्म करके शरीर रहे तक कष्ट सहते हैं, और भविष्य में नाना जन्म धारण करके अपरिमित दुःख सहते हैं ॥ ५६ ॥

पशु पक्षी धरि कीट तन, विवश भोग त्रय खानि ।
मनुष स्ववश गुरु ज्ञान में, पाप वासना हानि ॥५७॥

पाप कर्म-वश पशु-पक्षी, कृमि-कीटादि के शरीर धारण कर, विवशता पूर्वक तीनों खानियों के दुःख भोगों को जीव भोगता है। सद्गुरु का स्वरूप ज्ञान धारण करने में मनुष्य स्वाधीन है; वह पाप-पुण्यादिक वासनाओं को मिटा कर, मोक्ष प्राप्त कर सकता है ॥५७॥

सदा काल से मग यही, राग द्वेष रफ्तार ।
भूल भरम से कर्म सब, तन उत्पति व्यवहार ॥५८॥

अनादिकाल से जीव राग-द्वेष के क्रियाशील मार्ग में ही पड़ा है। स्व-स्वरूप-भूल तथा विषय सुख भ्रम से पाप-पुण्यादिक कर्म करके शरीर उत्पन्न करने का धन्धा उठाता रहता है ॥ ५८ ॥

गुरु पारख जब तक नहीं, साधु संग नहिं होय ।
तब तक नहिं कल्याण पद, जन्म मरण नहिं खोय ॥५९॥

सद्गुरु का जब तक पारख बोध नहीं मिलता, और पारखी सन्तों की संगत नहीं मिलती। तबतक मोक्ष-दशा नहीं मिलती, और न जन्म-मृत्यु के दुःख ही नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

याते करि कर्तव्य को, सत्संगत दिन रात ।
स्वच्छ अमर निज रूप है, त्यागि वासना शान्त ॥६०॥

इसलिये साधन और पारखी सन्तों का सतसंग रात-दिन करो। अपना चैतन्य पारख स्वरूप शुद्ध अविनाशी है, अतः बाह्य वासनाओं को त्याग कर शान्त हो जाओ ॥ ६० ॥

स्थिति कहि स्थिति रहै, स्थिति शान्ति विराज ।
स्थिति बिन जीवन अफल, शीघ्र करो तेहि काज ॥६१॥

मुमुक्षु को चाहिये कि वह जगत्-प्रपंच की वार्ता न करे, वह स्वरूप-स्थिति की ही चर्चा करे, स्वरूप-स्थिति के ही साधन में रहे और स्वरूप-स्थिति की शान्ति ही में विराजे। स्व-स्वरूप की स्थिति बिना मानव-जीवन व्यर्थ है, अतः शीघ्र उसी कार्य को करो ॥६१॥

चोरों को देख रहे हैं

एक घर में, रात में चोर घुसने लगे। स्त्री ने पुरुष से कहा—"घर में चोर घुस रहे हैं।" पुरुष ने कहा—"मैं देखता हूँ।" स्त्री ने पुनः कहा—"किवाड़ खोलकर चोर कोठरी में चले गये।" पुरुष ने कहा—"मैं देख रहा हूँ।" जब चोर रुपये तथा जेवर की पेटी को लेकर जाने लगे, तब स्त्री ने कहा—"चोर पेटी ले जा रहे हैं।" पुरुष ने कहा—"मैं देख रहा हूँ।" इतने में चोर घर से निकल गये। स्त्री ने कहा—"चोर तो घर से बाहर निकल गये।" पुरुष ने कहा—"मैं देख रहा हूँ।" स्त्री ने कहा—"तुम्हारे देखते रहने से क्या हुआ, जब चोर सारा धन उठा ले गये।"

चोर के चले जाने पर पुरुष तलवार-बन्दूक पटककर कहने लगा—"चल पाँच सौ रुपये की तलवार तथा एक हजार रुपये की बन्दूक" परन्तु चोर के धन लेकर चले जाने पर, अस्त्र-शस्त्र पटकने से क्या हुआ?

इसी प्रकार मन-इन्द्रिय रूपी चोर जीव के हृदय-घर से, सद्गुण तथा बोध-भाव रूपी धन, चुराने लगते हैं। तब सुबुद्धि रूपी स्त्री के समझाने-चेताने पर भी, सुखाध्यासी जीव सावधान नहीं होता। जब इन्द्रिय-मन जीव को ठग लेते हैं। तब पीछे से वाचिक साधन रूपी अस्त्र-शस्त्रों को लोगों के सामने पटकता है। सार यह कि ज्ञान-साधन का निर्णय प्रायः मनुष्य बड़ी शैली से करते हैं। परन्तु वैसे आचरण नहीं धारण करते।

शिक्षा—अतएव केवल वाचिक कथन त्याग कर आचरण धारण करने की महान आवश्यकता है।

लगातार अभ्यास जब, वीर भाव को पालि !

शत्रु सकल विनाश ह्वै, अटल स्वराज्य सम्हालि ॥६२॥

वीरता पूर्वक स्वरूप-स्थिति का जब निरन्तर अभ्यास होता है। तब सम्पूर्ण मनोमय शत्रु का नाश होकर, स्वरूप-स्थितिरूपी अविचल स्वराज्य प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥

सैन सकल सद्गुण सुभट, भक्ति विवेक विराग।

दया क्षमा सत शील जो, धीर तोष गहि त्याग ॥६३॥

भक्ति, विवेक, वैराग्य, दया, क्षमा, सत्य, शील, धैर्य, सन्तोष, और त्याग—ये सम्पूर्ण सद्गुण, स्वरूप-स्थिति-स्वराज्य के वीर सैनिक हैं। इन्हें धारण करना चाहिये ॥ ६३ ॥

शुद्ध बोध सुविचार सम, देह रहे तक साथ।

सावधान रहि सेय इन, ह्वै निष्काम सनाथ ॥६४॥

स्व-स्वरूप का यथार्थ बोध विवेक और मन की शान्ति—शरीर रहे तक—इनको साथ रखे। जागरूक होकर, इन सद्गुणों का सेवन करते हुए, जगत्-कामना त्याग कर, कृतार्थ रूप हो जाय ॥ ६४ ॥

काम भाव को राखि के, गुरु पद ले जो भूल।

कस न सहै भव दुःख वह, सुख मानन्दी शूल ॥६५॥

काम-वासना में आसक्ति रखकर, जो श्रेष्ठ वैराग्य-पद से भूलता है। वह विषयों में सुखमान्यता रूप शूल धारण कर, कैसे नहीं जन्मादिक दुःखों को सहेगा ? ॥६५॥

बन्ध अनादी घेर में, जब जब देह धरन्त।

बीज वासना वृक्ष तन, त्रिविध ताप फल खन्त ॥६६॥

अनादि कर्म-बन्धनों के घेरे में, जीव जब-जब देह धारण करता है। वासना रूपी बीज से शरीर रूपी वृक्ष को प्राप्त होकर, तीन ताप रूपी फलों को खाता रहता है ॥६६॥

कर्म शुभाशुभ रचित जस, संस्कार तस ताहि।

कम विशेष तस भोगि के, संचित शेष रहाहि ॥६७॥

पाप-पुण्य का कर्म जैसेजीव रचता है, उसी प्रकार उसका संस्का हृदय में दृढ़ हो जाता है। आगे शरीर धारण कर, योग्यतानुसा कम-अधिक कर्म-फलों को भोगता है। जो कर्म भोग में नहीं आते वे ही हृदय में संचित होकर, बाकी रह जाते हैं ॥६७॥

क्रिया अगामी रोकि के, दोष दृष्टि दृढ़ लाय।
संस्कार जो शेष रहि, सोऊ दवत देखाय ॥६८॥

विषयों में दृढ़ दुःख-दोष का लक्ष्य बनाकर, क्रिया-आगामी, अर्था सकाम पाप-पुण्य को रोक दे; निष्काम भाव से अन्तःकरण की शुद्धि अर्थ केवल शुभ कर्म करे। इस वैराग्य-भाव से अन्तःकरण के अभुक्त शेष-संचित या विषय-संस्कार भी नष्ट होते दीखेंगे ॥६८॥

वर्तमान प्रारब्ध जस, आपुहि भोगि सिराय।
केवल रहस्य सुधारि के, निज स्वरूप ठहराय ॥६९॥

रहा शरीर-निर्वाह, सो जैसे वर्तमान का प्रारब्ध भोग होगा, अपने आप भोग कर समाप्त हो जाएगा। कल्याण-इच्छुक को जगत-प्रपंच, विषय-कामना तो दूर ही से त्यागना चाहिये तथा शरीर-निर्वाह के लिए भी चिन्ता-त्याग कर, केवल अपने आचरणों को सुधारते हुए, मुक्ति की रहनी-सहित स्व-स्वरूप में स्थित होना चाहिये ॥६९॥

इच्छा सन्मुख जब नहीं, तभी मुक्त निरधार।
याहि हेतु साधन विविध, युक्ति गुरू पद सार ॥७०॥

जब जीव के सम्मुख इच्छा-वासना नहीं रहती, वह सब कामनाओं से हीन हो जाता है; तभी वह निःसंग मुक्त हो जाता है। इसके लिये अनेकों प्रकार के साधन-युक्ति हैं; अतः इन्हें धारण कर, सत्य गुरु पद-स्व-स्वरूप में स्थित होना चाहिये ॥७०॥

मानुष को कर्तव्य यहि, रहस्य चाहिये साँच।
काज करै निज जीव को, तजि माया जग काँच ॥७१॥

मनुष्य का यही परम् कर्तव्य है कि वह सच्चा आचरण धारण

करे। संसार के असत्य मायावी वस्तुओं का त्याग करके, अपने जीव का कल्याण करे ॥७१॥

सत्य सबसे बड़ा है, उसके पीने के लिये सत्य आचरण, सत्य-भाषण की परम आवश्यकता है। एक सत्य बोलने का नियम निभाया जा सके, तो सम्पूर्ण सद्‌गुण आ विराजें।

सत्य महाव्रत

एक राजा का लड़का, किसी यात्रा से थकित होकर तथा अति भूखा-प्यासा, एक महात्मा की कुटी पर आ निकला। महात्मा ने उसे जल-भोजन दिया। राजकुंवर अपने ऊपर महात्मा का बड़ा उपकार समझा। उसने महात्मा से कुछ उपदेश प्रदान करने के लिये प्रार्थना किया। महात्मा ने कहा—"बेटा। आज से कभी असत्य न बोलना।" राजकुँवर इस व्रत को स्वीकार कर घर को चला आया।

एक दिन राजकुंवर शराब पीने जा रहा था। इतने में पिता आ पड़ा, और उसने पूछा—'कहो, क्या करने जाते हो?" राजकुंवर झूठ बोल नहीं सकता था। और राजा के सामने यह बात नहीं कह सकता था कि "मैं शराब पीने जा रहा हूँ!" अतः वह चुप होकर घर में लौट गया।

एक दिन राजकुंवर वेश्या के यहाँ जाने के लिये तैयारी कर रहा था। पिता फिर आ पड़ा, और पूछा—"कहाँ जाते हो?" राजकुँवर चुप होकर पुनः घर में लौट गया। इस प्रकार असत्य बोलने का त्याग और सत्य बोलने का आजीवन व्रत लेने से राजकुँवर के सारे दोष-दुर्गुण दूर हो गये। इसी से श्री कबीर साहेब कहते हैं—

साखी—साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप॥

नहीं सतावे काहु को, अपने सुख के हेत।
बनै अहिंसक धर्म रत, साधु नीति गहि चेत ॥७२॥

अपने सुख के लिये, किसी को कष्ट न दे। पूर्ण अहिंसक और

धर्मरत होना चाहिये; उत्तम साधु-आचरण को धारण करके सदै सचेत रहे ॥७२॥

मान पुजापा डाह तजि, शील भाव उर राखि।
लाग लगान की बात नहिं, गहै तोष सुख चाखि॥७३॥

पुजापा-प्रतिष्ठा का अभिमान और ईर्ष्या का त्याग करके, हृदय में शील भाव रखना चाहिये। किसी के राग-द्वेष तथा झगड़ा-झंझट की बात न करे। सन्तोष को धारण करके उसी के सुख का अनुभव करे ॥७३॥

विवेकी उत्तम पुरुष किसी के प्रति ईर्ष्या-डाह तथा निन्दा-अपमान तो करते नहीं। यदि उनकी अपमान-निन्दा कोई करे, तो उसे उदारता पूर्वक सहकर गुण ग्रहण करते हैं।

बड़ों का बड़प्पन

जर्मनी का एक महापुरुष, अपने साथियों के साथ, एक जगह से दूसरी जगह जा रहा था। सामने देखा तो दीवार के पास मनुष्यों की भीड़ लगी थी। वहाँ पहुंचने पर पता चला कि दीवार पर एक पर्चा चिपकाया है, जिसमें कि उस महापुरुष की ही निन्दा लिखी गयी है। परन्तु वह पर्चा कुछ ऊंचे पर था, जिससे सब लोग ठीक से नहीं पढ़ पाते थे।

उन महामानव ने अपने साथियों को कहा—इस पर्चे को ऊपर से हटा कर, कुछ नीचे लगा दिया जाय, जिससे सब लोग आराम से पढ़ सकें। अतः आज्ञानुसार साथियों ने पर्चे को नीचे लगा दिया। अपनी निन्दा सुनकर दुखी न होना, यह है—बड़ों का बड़प्पन!

राग द्वेष किससे करै, अपने आपै जीव।
देह भाव मद छोड़िके, दलि आसक्ती शीव॥७४॥

मोह-वैर किससे किया जाय, क्योंकि अपना चैतन्य स्वरूप जीव अपने आप है, इसका किसीसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अतएव शरीर के प्रेम और अभिमान को त्याग कर तथा सम्पूर्ण आसक्ति को मिटा कर, जीव को कल्याण स्वरूप हो रहना चाहिये॥७४॥

मधुर बचन सबसे कहै, कटु कुठार को छोड़ि।
जहाँ योग्य नहिं कहन को, तहाँ रहै मन मोड़ि ॥७५॥

तीखा तथा कठोर वचन को त्याग कर, सबसे मीठा वचन बोले। जहाँ बोलने की अपनी योग्यता न हो, वहाँ अपने मन को दबाकर शान्त रहे ॥७५॥

लल्ला के बप्पा हरे-हरे

एक विवाहिता स्त्री कथा सुनने गयी। कथा समाप्त होने पर कथावाचक नें हरिकीर्तन करवाना आरम्भ किया। सब लोग "कृष्ण-कृष्ण हरे-हरे" कहने लगे। वह स्त्री बड़े संकोच में पड़ गयी। क्योंकि उसके पति का नाम 'कृष्ण' था। समाज में, अपने पति का नाम लेकर कैसे कीर्तन करे? इतने में उसे एक सूझ हुई, और उसके बेटे का नाम था 'लल्ला'। अतः वह कहने लगी—"लल्ला के बप्पा हरे-हरे" यह सुन कर सब लोग हँसने लगे।

यह दृष्टान्त है, इसका सिद्धान्त यह है कि योग्यता-रहित बिना विचारे बात बोलने से, समाज में अपनी ही मूर्खता सिद्ध होती है। अतः जहाँ अपनी योग्यता न हो, वहाँ मौन रहना ही श्रेष्ठ है।

उत्तर प्रश्न अधिकार में, हित उपदेश बखान।
जहाँ नहीं अधिकार कछु, तहाँ न करे बयान ॥७६॥

जो ठीक उत्तर दे सके, उसी से प्रश्न करना चाहिये तथा जो उत्तर पाकर निर्मानता पूर्वक समझ सके या लाभ उठा सके, अर्थात् जो जिज्ञासु या मुमुक्षु हो, उसी को उत्तर दे और कल्याण की शिक्षा दे। जहाँ अपनी योग्यता शिक्षा देनी की न हो तथा जहाँ कोई अधिकारी श्रोता न हो, तहाँ उपदेश का वर्णन न करे ॥७६॥

बिना सुने उत्तर का कुफल

एक मनुष्य बहरा था। उसका मित्र दूसरे ग्राम में रहता था। वह बीमार था। अतः मित्र को देखने के लिये चला। बहरे ने सोचा कि "जब मैं मित्र के पास पहुँचूगा, तब पछूँगा कि 'आप की

तबियत अच्छी है?' तब वे अवश्य कहेंगे कि 'अच्छी है।' तब कहूँगा 'ऐसा ही होना चाहिये।' फिर मैं पूछूँगा कि किस वैद्य दवा ले रहे हैं?' तब वे वैद्य का नाम बतलायेंगे। मैं कह दूं 'बड़ा अच्छा वैद्य है।' फिर से पूछूँगा कि 'दवा कौन-सी करते हैं तब वे दवा का नाम लेंगे। मैं कहूँगा 'बड़ी अच्छी दवा है!'

मित्र के यहाँ पहुँच कर, नमस्कार आशीर्वाद के पश्चात बह ने पूछा—'कैसी तबियत है?' बीमार मित्र ने कहा 'बड़ी खराब है। बहरे ने जिस प्रकार कहने का सोच रखा था, बिना बात सुने उत्त दिया 'ऐसा ही होना चाहिये।' फिर बहरे ने पूछा—'वैद्य कौन है रोगी चिढ़कर बोला 'मौत!' बहरे ने कहा—'बड़ा अच्छा वैद्य है। फिर बहरे ने कहा—'दवा कौन-सी करते हैं?' रोगी जल कर कहा- 'जहर नाम की दवा करता हूँ।' बहरे ने कहा—'बड़ी अच्छी दवा है।

रोगी के लड़के पास में बैठे सारी बातें सुन रहे थे। वे सब चि कर, बहरे का हाथ पकड़ कर, घर से बाहर कर दिये। यह जो प्रश्न उत्तर हुआ, बिना विचारे योग्यता-रहित हुआ।

शिक्षा—अतः अच्छी तरह सुनकर, विचार कर तथा योग्यता देख कर, वचन उच्चारण करे।

जो उपदेश सुनने का इच्छुक हो, उसको उपदेश सुनावे। बिना योग्यता के सबके सामने, शिक्षा की झड़ी न करता रहे। किसी मत के पक्षपाती, हठी-शठो से तो नम्रता पूर्वक मौन ही साधना उचित है।

एक निष्ठ गुरुदेव पद, मनसा उनको पालि।
तन मन से गुरुमग चले, कपट चतुरता टालि ॥७७॥

वैराग्य-प्रिय सद्गुरु के चरणों में, अनन्य प्रेम रखते हुए, उनकी आज्ञा का पालन करे। कपट-चतुरता त्याग कर, तन-मन से सद्गुरु के विवेक-वैराग्य-मार्ग में, जीवन पर्यन्त चले ॥७७॥

घेरा वह कल्याण का, जहाँ न तेरा मेर।
समदर्शी सोई रहस्य, जीव उबारन हेर ॥७८॥

जहाँ राग-द्वेष नहीं है; मैं श्रेष्ठ, तू तुच्छ, इत्यादि की भावना नहीं है; वही कल्याण करने की भूमिका है। जीवों को संसार-सागर से उबारने तथा अपने भी उद्धार के लिये, समदर्शी होना ही उत्तम आचरण है।

अपने शत्रु का हित चाहना, सबका यथायोग्य सत्कार करना तथा अपने विरोधी की योग्यता का भी आदर करना, महापुरुष तथा समदर्शी के लक्षण होते हैं।

महापुरुष तथा समदर्शी के लक्षण

एक राजा ने अपने प्रतिकूल आलोचक को ऊँचा पद दिया। लोगों ने कहा—"आप उसे ऊँचा पद क्यों दिये? वह तो आप के प्रति अच्छी धारणा नहीं रखता।" राजा ने कहा—"हमारे प्रति वह भले ही अच्छी धारणा न रखता हो। परन्तु वह आदमी ईमानदार, कर्तव्य-परायण तथा नेक है। हमें पृष्ठपोषक (चापलूस) नहीं चाहिये। हमें तो खरा एवं नेक आदमी का काम है।

महापुरुष का यही लक्षण होता है कि वह अपने विरोधी व्यक्ति की योग्यता का भी आदर करता है। व्यक्तिगत राग-द्वेष का मतभेद लेकर, किसी के साथ अन्याय नहीं करता।

अपने आप से पृथक जो, दृष्टि गोचर होय।
पंच विषय के रूप सोइ, कारण कारज सोय ॥७६॥

अपने चैतन्य स्वरूप से भिन्न, जो कुछ भी दृश्यमान है। सब पंच विषय रूप कारण-कार्य जड़-तत्त्व हैं ॥७९॥

सुन्दर रंग विरंग बहु, रूप नेत्र से पेखि।
पावक के गुण-विषय यही, जलत सलभ तहँ देखि ॥८०॥

हरे-पीले आदि नाना रंग-विरंगे मोहक रूप जो नेत्र से देखे जाते हैं। यही अग्नि के गुण या विषय हैं, इस रूप विषय को देख करके ही, मोह-वश पतिङ्गे दीपक-ज्योति में जल मरते हैं ॥८०॥

स्वाद शक्ति बहु भाँति के, जिह्वा द्वार से लीन।
जल के गुण रस विषय महँ, प्राणघात जस मीन ॥८१॥

अनेक प्रकार के स्वाद, ये वहुत बलशाली विषय है; जिह्वा-द्वार जीव इसमें आसक्त होता है। यह रस-विषय जलका गुण है, इसे फंसकर मछली की मृत्यु होती है। (बंसी में लगे हुए केंचुत्रा या आटे की गोली के स्वाद-वश मछली काँटे में फंसकर मरती है) ॥८१॥

गन्ध सुगन्ध अनेक विधि, नाक द्वार से सूँघि।
पृथ्वी के गुण विषय यह, भँवर मरत तहँ ऊँघि ॥८२॥

नाना प्रकार के गन्ध-सुगन्ध होते हैं, प्राणी इसे नाक-द्वार से सूँघता है। यह विषय पृथ्वी का गुण है, भंवरा कमल के पुष्प-गन्ध में ही मस्त नींद लेकर, प्राण खोता है ॥८२॥

गान तान के राग बहु, कान द्वार से खैंचि।
वायु वेग से शब्द जो, मुदित मृगा फँसि ऐंचि ॥८३॥

गाने-बजाने के अनेक राग हैं, इसे कान-द्वारा सुना जाता है। यह शब्द विषय शक्तिशाली वायु का गुण है। शब्द-राग में ही आकर्षित तथा प्रसन्न होकर मृगा फंस जाता है ॥८३॥

कोमल काम स्पर्श है, त्वचा द्वार दर्शात।
वायु विषय गुण घेर में, आपुहि गज फँसि जात ॥८४॥

स्पर्श-विषय का त्वचा-द्वारा अनुभव होता है, इसमें मुख्य बन्धन-दायी कोमल लगता हुआ काम (दम्पति सम्बन्ध) है। यह विषय भी वायु का गुण है; इस बन्धन में हाथी अपने आप फंस जाता है ॥८४॥

सलभ मीन गज भँवर जो, मृगा विषय आधीन।
यक यक विषयन नष्ट वह, नर पाँचों में दीन ॥८५॥

पतिङ्गे, मछली, हाथी, भंवरा तथा मृगा—ये पाँचों एक-एक विषय के वश होकर मारे-बाँधे जाते हैं; और मनुष्य तो पाँचों विषयों में आसक्त होकर लाचार बना है; (इसका स्पष्ट समझने के लिये, इसी खण्ड की बारहीं (१२) साखी की टीका देखिये।) ॥८५॥

संसार-समुद्र

एक व्यापारी जहाज में माल भरकर विदेश व्यापार के लिये चला। समुद्र में कुछ दूर जहाज चलने पर बड़े जोरों से तूफान आया। उसका जहाज कहीं-का-कहीं चला गया। जिस ओर जहाज गया, उस ओर चुम्बकपत्थर का एक पर्वत था। जहाज में लोहे की कीलें तथा पटरियाँ अधिक रूप में लगी थीं। अतः जहाज में लगे हुए लोहे की कीलें तथा पटरियों पर चुम्बक का आकर्षण पड़ने से, जहाज पर्वत की ओर खिचता गया। निकट पहुँचने पर वेग पूर्वक पर्वत से टकरा कर, जहाज चकनाचूर हो गया। जहाज के सब माल समुद्र में डूब गये तथा व्यापारी भी डूब गया।

उपर्युक्त दृष्टांत का सिद्धान्त यह है कि यह संसार समुद्र है। मानव-शरीर जहाज है। कीलें इन्द्रियाँ और पटरियाँ मन है। शुभ कर्म रूप माल भर कर, जीव रूप व्यापारी, मानव-शरीर रूप जहाज, संसार-समुद्र में चलाता है। परन्तु वासना रूपी तूफान से मानव-तन रूप जहाज अनिश्चित पथ (अकल्याण) की ओर बह चलता है; और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध इन पाँच विषय रूप चुम्बक पत्थर से आकर्षित होकर नर-तन-जहाज विषयों में टकरा जाता है तथा चकनाचूर हो जाता है। फिर शुभ कर्म रूप माल तथा व्यापारी जीव भी, संसार-समुद्र में डूब जाता है।

उपर्युक्त चक्कर में पड़ कर अनादिकाल से अविनाशी जीव जन्म-मरण के भ्रमण में पड़ा है। अतएव वासनाओं के तूफान तथा पंच विषय के आकर्षण से अपने मन-इन्द्रियों को पृथक रखना ही मानव का परम पुरुषार्थ है।

इन पाँचों से जगत सब, हरा भरा भरपूर।
मनोदृश्य सुख भास में, भ्रष्ट भये सब चूर ॥८६॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन पाँच विषयों से ही संसार हरा-भरा परिपूर्ण है। पूर्व काल के इन विषय-भोगों के संस्कार मन में टिके हैं, वे ही मनोमय संस्कार दृश्य होकर जड़-विषयों में सुख-

प्रतीत कराते रहते हैं; इसी में सब जीव पद-भ्रष्ट होकर दुखी होते हैं ॥८६॥

निशि दिन याही यतन में, करत रहत व्यापार ।
नाटक सम जग खेल यह, विषय प्रपंच अपार ॥८७॥

रात-दिन विषयों के व्यापार में ही जीव उद्योग करता रहता है। यह अपार विषय-प्रपंच का खेल, नाटक के समान सार-हीन-नकली है; इसमें सुख नही है ॥८७॥

तहाँ चहत सुख शान्ति सब, महा भरम अज्ञान ।
दिशा भरम मद पान सम, रहत सदा हैरान ॥८८॥

ऐसे सार-हीन दुःखमय विषय-प्रपंचों में, सब जीव सुख और शान्ति चाहते हैं; यही महान भ्रम तथा भूल है। दिशा-भ्रम होने तथा मद्य पी लेने पर, जैसे बुद्धि ठीक नहीं रहती और जहाँ-तहाँ ठोकर खाता है; इसी प्रकार दुःख-प्रद सार-हीन विषयों में सुख के खोजी जीव, सदैव कष्टित रहते हैं ।

सुख मानव भ्रम भूल है, बिना परीक्षा शोध ।
शोध बिना सत्संग के, होय न शान्त स्वबोध ॥८९॥

विषयों में सुख मानने का कारण, भ्रम या अपने स्वरूप का अज्ञान ही है; बिना परीक्षा तथा शोधन के ऐसा भ्रम होता है। सत्संग में बिना खोज किये, स्वरूप का बोध और शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ८९ ॥

याते करि सत्संग नित, गुरू पारखी हेरि ।
मिलै शान्ति निज बोध तब, सकल कल्पना फेरि ॥९०॥

इसलिये वैराग्यशील पारखी गुरु की खोज करके सदा सत्संग करो। तभी सम्पूर्ण कल्पना रूपी बन्धन मिटा कर, स्व-स्वरूप का बोध और शान्ति मिलेगी ॥९०॥

कण्टक बन भयभीत जस, तस संसार को जान ।
बिन कुठार वैराग्य के, होत नहीं मैदान ॥९१॥

काँटे का वन जसे भयदायक होता है, तैसे इस संसार को समझना चाहिये । वैराग्य रूपी कुल्हाड़ी के बिना, यह संसार-वन साफ नहीं होता ॥९१॥

महात्मा-बुद्ध

राजधानी कपिलवस्तु (उत्तर प्रदेश, जिला बस्ती तथा नेपाल की सीमा) के सूर्यवंशीय महाराजा शुद्धोदन की भार्या महारानी माया-देबी के गर्भ से ५०५ विक्रमी सम्वत् पूर्व के वैशाखी पूर्णिमा को सिद्धार्थ गौतम का जन्म हुआ । ज्योतिषी ने बतलाया "या तो बालक चक्रवर्ती सम्राट होगा या त्यागी सन्यासी ।" महाराजा शुद्धोदन इस चिन्ता में रहने लगे कि 'पुत्र सन्यासी न हो जाय ।'

चौथेपन में महाराजा के यही एक पुत्र हुआ था । अतः पुत्र का उन्हें बड़ा मोह था । पुत्र बढ़ता गया । महाराजा का इतना प्रबन्ध रहता था कि राजकुमार के सामने रोगी-वृद्ध, दरिद्र-दुखी जाने न पायें । यहाँ तक इनका नाम भी उनके सामने कोई न ले । राजकुमार को सर्वत्र घूमने का अवसर नहीं दिया जाता था । उनके लिये सारी व्यवस्था विशाल राजभवन में ही कर दिया गया था । उनका निवास स्थान, क्रीड़ास्थल, विहारकक्ष आदि शोभामय, मायामय, मोहक बनाया गया था । जिससे कुमार भोग में ही सदैव फंसे रहें । उनका मन संसार से न उचटे ।

आगे चलकर उनका विवाह करा दिया गया । रूप-यौवन तथा शीलगुण सम्पन्ना यशोधरा नाम्नी राजकुमारी पत्नी के रूप में उन्हें मिली । राजकुमार के सामने सुन्दर युवक या कुमार तथा सम्पन्न व्यक्ति ही जा सकते थे । उन्हें माया-मोह में इतना भुलाया गया कि वे संसार में दुःखों के दर्शन न कर सकें, न उनको वैराग्य हो ।

होनी हो करके रहती है । पत्ते के आड़ में सूर्य को नहीं छिपाया जा सकता । राजकुमार गौतम को एक दिन नगर देखने की इच्छा हुई । महाराज शुद्धोदन ने वाजार सजवाया । गलियों का छिड़काव-बनाव कराया । सशक्त आर्डर हुआ कि "आज राजकुमार सिद्धार्थ

गौतम के नगर घूमते समय मार्ग में कोई रोगी, बूढ़ा, कुरूप, दरिद्र, दुखी न निकले सर्वत्र सुन्दर, युवक, कुमार, सुखी व्यक्ति सेवा में खड़े हों।"

राजकुमार का रथ निकला। कुछ दूर! घूमते हुए मन्त्री सहित कुमार जा ही रहे थे कि जरजरता रूपी आगे से पके हुए शरीर वाला एक बुढ्ढा मिला। उसकी पीठ में कूब निकला था, आगे झुक के चलता था। राजकुमार ने चौकन्ना होकर पूछा—"मन्त्री! यह कौन है?" मन्त्री—"सरकार! यह बुड्ढा है।" राजकुमार—"यह ऐसा क्यों हो गया है?" मन्त्री—"सरकार! यदि साठ-सत्तर वर्ष मनुष्य जीता रहे, तो ऐसे सभी हो जाते हैं।" राजकुमार—"तो क्या एक दिन ऐसे मैं भी हो जाऊँगा?" मन्त्री—"निःसन्देह हुजूर।"

मन्त्री की इतनी बात सुन कर, राजकुमार गौतम को जीवन से उचाट-सा हो गया। वे रथ को घुमाकर राजभवन में चलने की आज्ञा दिये। दूसरे दिन पुनः मन्त्री-सहित राजकुमार रथ पर बैठकर नगर में निकले। मार्ग में सहसा एक रोग-पीड़ित बुड्ढा आ निकला। राजकुमार के देखते-देखते वह सड़क पर गिर पड़ा तथा उसके मुखसे थूक गिरने लगा। राजकुमार रथ से कूदकर उस रोगी को उठाये तथा उसका मुख पोछे और उसके घर उसे पहुंचवाये। राजकुमार उस दिन यह भी शिक्षा लिये कि मनुष्य केवल बुड्ढा होकर ही नहीं दुःख उठाता; बल्कि रोगी होकर और अधिक दुःख उठाता है। राजकुमार के हृदय में जीवन तथा जगत् के प्रति, दोष-दृष्टि घर करती गयी।

तीसरे दिन पुनः नगर में निकले। इतने में सामने से कुछ लोग एक मृत शरीर (मुर्दा) को श्मशान में दाह करने के लिये ले जा रहे थे। राजकुमार आश्चर्य-चकित होकर मन्त्री से पूछे—"सचिव! यह क्या है?" मन्त्री—"दीनबन्धु! यह मरे हुए मनुष्य का शरीर है।" राजकुमार—"क्या इसी प्रकार सब मनुष्य मर जायेंगे?" मन्त्री—"सरकार! मनुष्य ही नहीं, जितने देहधारी हैं, सबका शरीर एक दिन जीव-रहित-मृतक हो जायगा।" राजकुमार—"क्या सचिव!

मैं भी मर जाऊँगा ?" मन्त्री—"पृथ्वीनाथ। इसके लिये तो सभी विवश हैं।"

राजकुमार के हृदय में आज से गहरी वेदना होने लगी। उन्हें राज-पाट, भोग-विलास, स्त्री-पुत्र तथा मित्र-मण्डली सब सार-हीन, दुःख रूप, स्वप्नवत् प्रतीत होने लगे। वे सबसे अनमने तथा उदास रहने लगे। "जो स्त्री-पुत्र, राज-पाट, भोग-विलास हमें जरा, व्याधि तथा मृत्यु से नहीं बचा सकते; वे किस काम के हैं ?" इस प्रकार विचार-वैराग्य की मथानी हृदय में निरन्तर-अविराम चलने लगी।

राजकुमार भोग-विलास, राज-पाट तथा स्त्री-पुत्रादि से उदास हो गये। "हमें वह वस्तु चाहिये, जिसके पाने से जरा, व्याधि और मृत्यु के पंजे से हम सदा के लिये छूट जायँ।" इस लगन में वे मगन हो गये। निदान उन्तीसवीं (२९) वर्ष की भरी जवानी में रानी यशोधरा तथा छोटा पुत्र राहुल को आधीरात के समय छोड़कर वनका मार्ग पकड़े। आपका साधन-वैराग्य बड़ा ऊँचा था। आपही का नाम पीछे 'बुद्ध' पड़ा। फिर आपके वैराग्य तथा उपदेश के प्रभाव से कितने ही राजकुमार विरक्त हुए।

शिक्षा—बिना वैराग्य के दुःखों का सर्वथा अन्त नहीं होता। अतएव वैराग्य-भाव का उत्तेजित करना कल्याणार्थी का परम कर्तव्य है।

भक्ति धरम सत्संग जो, मारग तहाँ स्वधाम।
सज्जन सहित विचार के, चलत करत विश्राम ॥९२॥

अपने मोक्ष-धाम का मार्ग वही है; जहाँ सत्संग, भक्ति, धर्मादि हैं। विवेकी विचार पूर्वक, इसी मार्ग में विश्राम करते हुए, मोक्षधाम के लिये चलते रहते हैं ॥९२॥

स्वस्वरूप निश्चय जिसे, पारख शान्ति स्वधाम।
सद्गुण सब रक्षक जहाँ, वही मोक्ष निष्काम ॥९३॥

अपना पारख (ज्ञान) स्वरूप ही शान्ति का स्वतः धाम है; ऐसा

जिसे दृढ़ निश्चय है। और सब सद्गुण रक्षकों के साथ विराजता है, वही निष्काम-पद ही, मोक्ष-दशा है ॥९३॥

काम क्रोध मद लोभ सब, मन इन्द्री संसार।
राग रहित वैराग्य सो, पाय होत भव पार ॥९४॥

काम, क्रोध, अभिमान, लोभ, मन, इन्द्रिय, आदि ही संसार है। इन सबों से राग त्यागकर, जब शुद्ध वैराग्य की प्राप्ति होती है, तभी यह जीव जन्म-मृत्यु से तर जाता है ॥९४॥

तन मन वच को शुद्ध करि, आज्ञा गुरु की पालि।
सुखदायक भक्ती सोई, कबहुँ न आज्ञा टालि ॥९५॥

सत्कर्मों-द्वारा शरीर, अन्तःकरण और वाणी को पवित्र करे; और वैराग्यवान् सद्गुरु की आज्ञा का पालन करे। मुक्ति-सुख देने वाली भक्ती वही है कि कभी सद्गुरु की विवेक-जनित आज्ञा का उल्लंघन न करे ॥ ९५ ॥

दान पुण्य दीनन हितू, हितकर सब बर्ताव।
सह विवेक प्रिय वचन सत, धर्म यही अपनाव ॥९६॥

लाचारों को अन्न, जल, वस्त्र, द्रव्य, घर, औषधि, विद्या, ज्ञान इत्यादि का दान दे, सदा पुण्य-कार्य करे, और जीव मात्र के साथ भलाई का आचरण करे। विवेक के सहित सत्य और प्रिय वचन बोले, यही धर्म है, इसे ग्रहण करना चाहिये ॥९६॥

जीव के तीन मित्र

एक मनुष्य के तीन मित्र थे। दो मित्रों से तो वह अधिक प्रेम करता था; परन्तु तीसरे मित्र से बिलकुल लापरवाह रहता था। एक समय ऐसा आया कि वह किसी मुकदमें में फंस गया। वह मनुष्य एक विश्वासी मित्र के पास गया, और कहा कि "आप हमारी ओर से साक्षी दे दीजिये; जिससे मैं अपराध से बच जाऊँ।" उस मित्र ने स्पष्ट उत्तर दिया कि "मैं आप की सहायता करने के लिये, एक

पग भी नहीं चल सकता।" इससे वह निराश होकर दूसरे मित्र के पास गया और अपनी बात सुनायी।

उस दूसरे मित्र ने कहा "मैं चल तो सकता हूँ, परन्तु न्यायालय के बाहर ही तक; न्यायालय के भीतर जाकर साक्षी देने का कार्य नहीं कर सकता।" उसने कहा "भाई! जब आप न्यायालय के भीतर जाकर साक्षी देने का कार्य नहीं कर सकते, तब न्यायालय तक जाने का व्यर्थ परिश्रम क्यों उठायेंगे?"

वह मनुष्य बहुत दुखी हुआ, और सोचने लगा कि "जिन दो मित्रों से मैंने अधिक प्रेम किया, और जिन पर हमारा अधिक विश्वास था; जब वे ही साथी नहीं हुए, तब तीसरा क्या साथी होगा! परन्तु चलें देखें, उससे भी दो बातें कर लें।" इस प्रकार विचार कर, वह तीसरे मित्र के पास गया, जिससे उसने ठीक से प्रेम कभी नहीं किया था।

उस तीसरे मित्र के पास जाकर अपनी रामकहानी कह सुनाई। उसने कहा—"मित्र! जहाँ आप का पसीना गिरेगा, वहाँ मैं अपना रक्त देने को तत्पर हूँ। चलिये, मैं आप की ओर से साक्षी का कार्य करूंगा। इस प्रकार कह कर, वह गया और उसको मुकदमें से बचा लिया।

सिद्धान्त—इस जीव के तीन मित्र हैं—धन, कुटुम्ब और धर्म। धन-कुटुम्ब से तो इसने बड़ा प्रेम कर रखा है। परन्तु धर्म से सदैव लापरवाह रहता है। देहाभिमान तथा विषयासक्ति रूपी अपराध इसने कर डाला है। ईसलिये मृत्यु रूपी मुकदमा इस पर चालू है। मृत्यु के निकट आने पर जीव धन के पास जाकर कहता है 'तू हमारे साथ चल!' परन्तु जड़-धन तो जीव के साथ एक पैर भी चलने वाला नहीं। वह तो घर में गड़ा या तिजोरी में ही पड़ा रहता है। धन से निराश होकर जीव कुटुम्ब की आशा देखता है; परन्तु कुटुम्बी कहते हैं "हम तुम्हारे मृतक-शरीर के साथ श्मशान भूमि तक चल सकते हैं", आगे नहीं।

जब जीव धन-कुटुम्ब दोनों से सर्वथा निराश होकर धर्म की शरण में जाता है, तब धर्म उसका बेड़ा पार करता है। वास्तव में लोक परलोक हर स्थान पर जीव का साथी धर्म ही होता है।

धर्म कामदमणि है। धर्म के सिवा और जीव का कौन सहायक है। जीव अकेला जन्म धारण करता है और मरने के बाद अकेला ही परलोकगमन करता है। अकेला ही दुर्गम कठिनाइयों को झेलता हुआ अपने पाप के कारण दुर्गति भोगता है। मर जाने के पश्चात् माता-पिता, स्त्री-पुत्र-मित्र, धन साथ नहीं देते। साधु-गुरु भी, परलोक में जीव के सहायक नहीं हो सकते।

हर समय लोक में, परलाक (पुनर्जन्म) में, आवागमन-अवस्था में, गर्भ अवस्था में, घर में तथा वन में—धर्म ही जीव का साथी है। धर्म ही माता-पिता है। धर्म ही प्यारा, पुत्र-मित्र एव धन है। धर्म ही सर्वतोभाँति से जीव का रक्षक है। अतएव एक मात्र जीव के संगी धर्म को अपनाओ।

सद्ग्रन्थन निर्णय कथा, कहन सुनन नित चाव।
साधु गुरू के रहस्यगहि, संगति सोई कहाव ॥९७॥

सद्ग्रन्थ, निर्णय वचन, कथा आदि कहने-सुनने की सदैव चेष्टा रखे। साधु-गुरु के सद्आचरणों को धारण करे, यही उनकी संगति कहलाती है ॥९७॥

वकील से भी 'भ्याँ'

एक मनुष्य फौजदारी के मुकदमें में फंस गया। उसके वकील ने कहा—"मैं तुझे सहज ही में छुड़ा सकता हूँ। परन्तु नियम यह होगा कि तुम्हें पाँच सौ रुपये देने होंगे।" उसने कहा—"सरकार! हम अपराध से छूट जाँय, तो पाँच सौ रुपये देने में, हमें कोई हिचकिचाहट नहीं है।" वकील ने कहा—"जब तुम्हारे बयान का समय आयेगा, तब न्यायाधीश चाहे जो कुछ पूछेगा, उसके उत्तर में तू कहते जाना 'भ्याँ'। चाहे चपरासियों-द्वारा पिटवाने लगे, तब भी 'भ्याँ' के अतिरिक्त और कुछ न कहना।

बयान की तारीख आयी। न्यायाधीश के सामने ये उपस्थित हुए। न्यायाधीश ने पूछा—"तुमने इसे क्यों मारा ?" उसने कहा—'भ्याँ'। न्यायाधीश ने कहा—'भ्याँ' मैं नहीं पूछता, यह बतला कि तूने इसे क्यों मारा ?" उसने पुनः कहा—'भ्याँ'। न्यायाधीश ने कहा—बेवकूफ! भ्याँ क्या ? अरे ! यह बता, तू इसको क्यों मारा ?" उसने पुनः कहा—'भ्याँ'।

न्यायाधीश ने कहा—"हटाओ भाई ! इसको, यह तो पागल है। इस पर क्या मुकदमा चलाया जायगा।" चपरासी ने उसे धक्का देकर न्यायालय के बाहर कर दिया। जब वकीलखाने में गया, तब वकील ने कहा—"लाओ, पाँच सौ रुपये !" उसने कहा 'भ्याँ'। वकील ने कहा—"अरे दुष्ट ! मेरे लिये भी 'भ्याँ' !" उसने पुनः कहा—भ्याँ। इस प्रकार 'भ्याँ' कह कर वकील को भी उसने ठेंगा दिखा दिया। 'भ्याँ' जब फौजदारी के अपराध से बचा सकता है, तब पाँच सौ रुपये से क्यों नहीं बचा सकता ?

इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि पंडा-पुजारी, सोखा-ओझा, नाउत-वैगा तथा नाना प्रकार के भ्रमिक लोग मनुष्यों को धोखा देकर धन वंचन करते हैं। विवेकवान् सन्तों के ज्ञान को प्राप्तकर कितने ही लोग इन भ्रमिकों के मायाजाल से तथा राजसिक-तामसिक नाना कर्मकाण्डों के बन्धनों से बच जाते है। परन्तु उनमें से, जो ठीक अधिकारी नहीं होते; उधर अनुमान-कल्पनाकृत कर्मकाण्डों को छोड़कर, इधर यथार्थ विवेकवान् सद्गुरु-सन्तों की सेवा तथा सत्कर्म से भी हाथ धो बैठते हैं।

शिक्षा—मनुष्य को चाहिये कि वह धोखा के मार्ग को त्यागकर, यथार्थ विवेकवान् सन्तों के ज्ञान-मार्ग पर अवश्य चले। जब अनुमान-कल्पना में लोग हर्जा-खर्चा करते हैं, तब सन्मार्ग में तो अधिक-से-अधिक करना चाहिये।

पारख ज्ञान स्वरूप निज, सोई धाम में थीर।
महा विकट संसार यह, तहाँ न अरूझो वीर ॥९८॥

'पारख' अपना ही ज्ञान स्वरूप चैतन्य है, उसी की स्थिति-धा
में शान्त होना चाहिये। यह संसार महान भयंकर है, हे बलशाली
चैतन्य! इसमें मत फँसो ॥९८॥

वन्दना-साखी

विनय करों कर जोरि के, शान्त रूप गुरुदेव।
जड़ से अलग स्वरूप कहि, सकल ताप दुख छेव ॥९९॥

सम्पूर्ण क्लेशों से हीन, शान्त स्वरूप श्री सद्गुरुदेव के चर
कमलों में, दोनों हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ। हे सद्गुरु! स्व
स्वरूप चैतन्य को जड़-तत्त्वों से पृथक् बतलाकर, तीन ताप के सम्पू
दुःखों को, आप नष्ट कर दिये, आपका प्रताप धन्य है ॥९९॥

सद्विवेक प्रकाश गुरु, स्थिति परख कबीर।
निराधार नहिं जगत तहाँ, सोई लहुँ धरि धीर ॥१००॥

सद्गुरु श्री कबीर साहेब के सच्चे विवेक का प्रकाश 'पारख
स्थिति' है। वह दृश्य-संसार से सर्वथा रहित निःसङ्ग पद है, धै
धारण करके, उसी को प्राप्त करूँ—ऐसा बल दास को मिले ॥१००॥

बोधसार सटीक द्वितीयखण्ड समाप्त।

प्रकरण फल

अब पाया अविनाशी स्वधाम।

सब कलह कल्पना गयी बीत।
आशा तृष्णादिक से अतीत।।
शोकादि मोह का हुआ अन्त।
खुल गयी दिव्य दृष्टी अनन्त।।
बीती माया मिट गया काम।।अब पाया० ।।१।।

देहोपाधिक का महाजाल।
ये जन्म-मरण के कठिन साल।।
इनका है कारण बीज राग।
सम्यक् इनका अब हुआ त्याग।।
गुरुपद में नित स्थिति ललाम।।अब पाया०।।२।।

है जीवन का उद्देश्य खास।
करना दुख-द्वन्द्वों का विनाश।।
जन्मादिक से होना विमुक्त।
पाना अविचल पद शान्ति युक्त।।
गुरुकृपा हुआ अब पूर्ण काम।।अब पाया०।।३।।

तृतीय खण्ड

तू सदा सत्य का ले अधार

ये देह गेह अरु विषय भोग।
जहँ तक होते इन्द्री सँयोग॥
पो-मन का सूक्ष्म-स्थूल भास।
सबका सम्बन्ध है असत, नाश॥
सब में फँसकर क्यों हो लाचार॥ तू सदा०॥

जो आकरके फिर है जाये।
मिलके बिछुड़े नहिं थिर पाये॥
द्रष्टा से है सब दृश्य दूर।
अपना स्वरूप हाजिर हुजूर॥
सबतजिभज निजपद निराधार॥ तू सदा०॥

गत-भूत, भविष्यत्, वर्तमान।
सब समय रहे जो इक समान॥
वह सत्य सदा अपना स्वरूप।
त्रयकाल भिन्न जड़ से, अनूप॥
तज देह असत, सत जीव सार॥ तू सदा०॥

* सद्गुरवे नमः *

बोधसार-सटीक

तृतीय खण्ड

बन्दना—साखी

नमों नमों गुरु ज्ञान को, पारख पद विश्रान्ति।
जेहि के पाये दुख सकल, नाश होत सब भ्रान्ति ॥१॥

पारख पद में शान्ति को प्राप्त, ज्ञानस्वरूप सद्गुरुदेव को बारम्बार नमस्कार है। जिनका कृपा-प्रसाद प्राप्त हो जाने पर, सभी अज्ञान का नाश हो जाता है ॥१॥

ऐसो परख प्रकाश प्रभु, कायावीर कबीर।
खटपट सबहिं छोड़ाय के, दै पारख पद थीर ॥२॥

कायागढ़ के विजेता स्वामी कबीरदेव ऐसे पारखज्ञान का प्रकाश किये कि सम्पूर्ण खानी-वाणी के प्रपंच से दूर कर, घट ही में अविचल पारखपद परखा दिये ॥२॥

सोइ पद मर्मी सन्त जो, साधु रूप गुरु सोय।
बन्दौं तेहि तारण तरण, सूरत तव पद जोय ॥ ३ ॥

उक्त पारख पद के रहस्यवान् जो विवेकी सन्त हैं, वे साधु ही गुरु रूप हैं। दूसरे को तार कर स्वयं तर जाने वाले, ऐसे आप पारखी साधु-गुरु की दीन 'सूरतदास' वन्दना करता है ॥३॥

विषयारम्भ-साखी

हैं अनादि जड़ जीव दोउ, भिन्न भिन्न निरधार।
गुरू ज्ञान जब तक नहीं, दोनों एकै धार ॥४

पृथ्वी, जल, तेज, वायु—ये जड़, और इनसे सर्वथा पृथक अ
जीव, ये दोनों भिन्न-भिन्न अपने स्वरूप से स्वतः-स्वतः अनादि हैं, प
जब तक सद्गुरु का ज्ञान नहीं मिलता, तबतक दोनों की यथार्थ भिन्न
नहीं दर्शती, दोनों को एक रूप ही समझता है ॥४॥

दोनों एकै रूप जो, नाम विविध नहिं होत।
ईश ब्रह्म जग आतमा, ऐसो कौन कहोत ॥५

यदि जड़-चेतन मिश्रित एक अद्वैत होता, तो अनेक नाम (
पदार्थ) न होते। ईश्वर, ब्रह्म, आतमा तथा जगत—ऐसा क
कहता ? ॥ ५ ॥

कहने वाला भिन्न है, नामी जीव अनेक।
नाम रूप विस्तार करि, गहि गहि अपनी टेक ॥ ६

अतएव सब नामों के कथन करने वाले, नामी जीव सबसे पृथ
और अनेक हैं। भूल में सब जीव अपना-अपना पक्ष पकड़ करके, ना
रूप (वाणी-खानि) का विस्तार कर रहे हैं ॥६॥

कहा है – जीव बिना नहिं आतमा, जीव बिना नहिं ब्रह्म।
जीव बिना शीवो नहीं, जीव बिना सब भर्म ॥
(कबीर परिचय)

जड़ और चेतन भिन्न-भिन्न अनादि-अनन्त दोनों स्पष्ट एवं अ
सत्य हैं। फिर भी साम्प्रदायिकता के तिमिराच्छन्न की इतनी गहन
होती है कि हमारे कुछ दार्शनिक भाई जड़तत्त्व को चेतन से पृथ
मूलतः मानते ही नहीं। उनकी समझ से जड़ नाम की कोई वस्तु
नहीं है। सब चेतन-ही-चेतन है। जगत् अपने चेतन स्वरूप से पृथ
देखते-समझते हुए भी, अपने से पृथक् नहीं मानते। जगत-प्रपं
मेरा ही स्वरूप है, जैसे 'जल-तरंग' इस प्रकार निश्चय-कथ
करते हैं।

इस नग्न अज्ञान तथा भयंकर भूल का कारण, अपने ग्रन्थ तथा गुरु का पक्षपात ही है। पक्षपात ऐसा गहन आवरण होता है कि मनुष्य देखते हुए भी नहीं देखता। भला! पाँच ज्ञान इन्द्रियों से सतत दृश्यमान नित्य प्रत्यक्ष जगत् को कौन निष्पक्ष विवेकी कहेगा कि यह तीनों काल में है ही नहीं। साधारण मनुष्य भी, जड़ और जीव के पृथक् लक्षण समझ सकता है। द्रष्टा और दृश्य, भोग्य और भोक्ता दोनों एक ही मानना, कितनी बड़ी भूल है?

'चेतन के स्वरूप में जड़ तीनों काल में नहीं है तथा जड़ के स्वरूप में चेतन नहीं।' यह बात ठीक है। जड़ाध्यास त्याग कर देने के पश्चात्, मुझ चेतन से जड़ का कभी संयोग न होगा। परन्तु जड़ तत्त्व अपने क्षेत्र में नित्य रहेंगे। जड़ संयोग को त्याग कर, स्व स्वरूप में स्थित, मुक्त चेतन का अन्य चेतन या जड़तत्त्वों से कोई सम्बन्ध न होने से, उसे कैवल्य या अद्वैत कोई भले कह ले। परन्तु नाना चेतन पृथक्-पृथक् न मानकर एवं जड़ तत्त्वों को पृथक् नित्य वस्तु न समझ कर, समष्टि अद्वैत कहना—भयंकर भूल है। जब अद्वैत है, दूसरा है ही नहीं, तब वेद-वेदान्त तथा गुरुजनों की क्या आवश्यकता? एक अद्वैत से, कौन किसको, क्यों और क्या उपदेश करे? बन्ध-मोक्ष, भला-बुरा, विधि-निषेध, आस्तिक-नास्तिक क्या और कौन है?

यदि कहिये "यह सब व्यावहारिक सत्ता है, परमार्थ में कुछ नहीं।" तो व्यवहार-परमार्थ दो का झगड़ा अद्वैत में कहाँ से आया? यदि कहिये "बड़े-बड़े विद्वान दैवभाषा (संस्कृत) में अद्वैत प्रतिपादक बड़ी-बड़ी पोथियाँ रचे हैं। हम कैसे न मानें?" तो बड़े-बड़े विद्वान चार्वाक-नास्तिक मत के तथा निन्दनीय वाममार्ग प्रतिपादक संस्कृत में बड़े-बड़े ग्रन्थ रचे हैं तो क्या विद्वान के मुख से निकलने के नाते या संस्कृत में होने के नाते उसे माना जा सकता है? दो-दो पन्द्रह कितना बड़ा विद्वान कहे, माननीय नहीं है। दो-दो चार बच्चे का कहा भी माननीय है। कहा है—

श्लोकः—युक्ति युक्तं वचो ग्राह्यं बालादपि शुकादपि ।
युक्ति हीनं वचस्त्याज्यं वृद्धादपि शुकादपि ॥

अर्थः—'युक्ति पूर्वक वचन कहे हुए बालक और तोते के भी ग्रहण करने योग्य हैं। परन्तु युक्ति-हीन वचन कोई विद्वान या शुकदेव ही कहें तो भी सर्वथा त्यागने योग्य हैं॥

वास्तव में जब तक हम अपने स्वरूप से जड़ को तीनों काल पृथक् नहीं समझते। तब तक हमारा जड़ाध्यास नहीं छूट सकता। प्रपंच को अपना स्वरूप मानने से हम निष्प्रपंच नहीं हो सकते। जब तक "जगत हमारा तरंग या विकार है" जब तक हमारे सोने में खोटा मिला है यदि हम शुद्ध-मुक्त होना चाहें, तो जड़ तत्त्वों को तीनों काल अपने चेतन पारख स्वरूप से पृथक् समझकर, उसकी आसक्ति सर्वथा त्यागें।

जड़ चेतन मिश्रित अद्वैत मानने वाले, आदरणीय महज्जनों से सादर-सविनय निवेदन है कि वे स्वग्रन्थ, स्वपन्थ तथा स्वगुरुओं का पक्षपात त्यागकर निर्मान-निष्पक्ष विवेक करें।

करतब अपना शुद्ध नहिं, सुख चाहत अधिकाय।
ऐसो मन वश जीव सब, मानि मानि दुख खाय ॥७॥

अपना कर्म तो पवित्र करते नहीं, और सुख चाहते हैं अधिक-से-अधिक। इस प्रकार सब मनवशी जीव, जड़-पदार्थों में अहन्ता-ममता करके दुःख भोगते हैं ॥७॥

जो जानत सबको सदा, सबसे अपना पार।
जीव अमर सो सत्य है, झूठा और पसार ॥८॥

देह-सम्बन्ध से जो सदा सबको जानता है, और सबसे अपना पृथक् रहता है। वह जीव ही, अविनाशी तथा सत्य है; इसके अतिरिक्त सब विस्तार झूठा है ॥८॥

यहि विधि जगत प्रपंच सब, मानव मिथ्या प्रोक्ष।
ज्ञाता ध्याता सर्व का, जीव आप अपरोक्ष ॥९॥

इस प्रकार सब पंच विषय जड़-जगत प्रपंच तो इन्द्रियों के प्रत्यक्ष है, इसके अतिरिक्त नाना देवी देवता-कर्तादि मानना मात्र परोक्ष-अन्देख कल्पित मिथ्या है। और इन दोनों से भिन्न, इन सबका ज्ञाता-ध्याता, अपने आप जीव अपरोक्ष—स्वयं प्रत्यक्ष है ॥९॥

भूमि नीर पावक पवन, एक में एक खिंचाव।
अनमिल एक से एक सब, कारण कारज भाव ॥१०॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु—इनका एक-में-एक का आकर्षण एवं मिलाप है। तथापि भाव रूप ये चारों तत्त्व चाहे कारण रूप में हों, चाहे कार्य रूप में हों, चारों अपने-अपने स्वरूप से अनमिल, एक-से-एक स्वरूपतः पृथक् रहते हैं ॥१०॥

चेतन परे सो ताहि से, द्रष्टा परम अनूप।
है जड़ के जड़ ही सभी, कारण कारज रूप॥ ११ ॥

उपर्युक्त जड़तत्त्वों से, चैतन्य जीव पृथक् साक्षी-स्वरूप श्रेष्ठ तथा विलक्षण हैं। और तत्त्व तो चाहे कारण रूप में चाहे कार्य रूप में, जड़-के-जड़ ही हैं ॥११॥

डाकू सम मन वासना, जीवन को दुख देय।
मन इन्द्रिय के झपट में, नष्ट परम पद ध्येय ॥१२॥

डाकू के तुल्य ये मन-इन्द्रियाँ जीवों के सद्गुण-ज्ञान को हरण करके, उन्हें पीड़ा पहुंचाती रहती हैं। इन्द्रिय-वासनाओं के आक्रमण से, जीव की कल्याण-प्राप्ति का उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है ॥१२॥

संसार-वन में काम, क्रोध, लोभादि डाकू या विषैले जन्तुओं से जीव दुःख पा रहा है। इन सबों का कारण विषयों की वासनायें हैं। इसे त्याग देने पर ही, दुःखों का अन्त होता है।

संसार से पीड़ित जीव

एक ब्राह्मण कहीं विदेश जा रहा था। मार्ग में एक विराट जङ्गल मिला। उस जङ्गल में प्रवेश करते ही, बड़े-बड़े हिंसकी विषधर प्राणी देखने में आने लगे। यह सबसे अपने प्राणों को बचाकर भागने

लगा। इतने में भयंकर पिशाचिनी हाथ में पाश लिये हुए आ रही थी और इसको देखकर इस पर टूट पड़ो। सामने पाँच मुख वाला एक पर्वताकार सर्प दिखाई पड़ा। यह भागता हुआ जा ही रहा था कि इतने में एक अन्धकारमय कूआँ दिखाई पड़ा। उसमें एक बेलि लटक रही थी।

वह ब्राह्मण अपने प्राणों की रक्षा निमित्त बेलि को पकड़कर, उस कूएँ में लटक गया। इतने में ऊपर एक हाथी आ गया, जिसके छः मुख थे और शरीर का आधा रंग काला तथा आधा उजला था। वह उस बेलि को खाने लगा। फिर क्या देखता है कि दो चूहे उस बेलि को बड़े तेजी से काट रहे हैं। इतने में उसकी दृष्टि नीचे कूएँ में पड़ी, तो वहाँ एक महा विषधर कालासर्प मुख फाड़ कर बैठा, उस ब्राह्मण की ओर देख रहा है।

इस प्रकार चारों ओर से इसके प्राणों पर संकट आगये। परन्तु ऊपर पेड़ में मधु-मक्खियों का एक छत्ता लगा था, उसमें से एक-एक बूँद मधु का रस चू रहा था। उसी मधु को ब्राह्मण चाट-चाट कर, उन संकटों को भुला रहा था।

सिद्धान्त—ब्राह्मण यह जीव है, यह आवागमन के मार्ग में पड़ा हुआ है। संसार ही विराट जंगल है। विषयासक्त भ्रमिक सकामी नर-नारी तथा काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विषैले-भयंकर जन्तु हैं। कामिनी भयंकर पिशाचिनी है। जो काम-भोग रूपी पाश को लेकर घूम रही है। (इसी प्रकार मुमुक्षा नारियों के लिये, कामी पुरुष ही पिशाच है।) पंच विषय रूप पाँच मुख वाला काम ही पर्वताकार भयंकर सर्प है। यह गृहस्थाश्रम ही; अन्धकारमय कूँआ है। आयु बेलि है, जिसको पकड़ कर, गृहस्थाश्रम रूपी कूएँ में विषयी जीव लटक रहा है।

छः ऋतु रूपी छः मुख और शुक्ल-कृष्ण दो पक्ष रूपी उजला-काला दो रंग वाला वर्ष ही हाथी है। रात-दिन रूपी दोनों चूहे, मनुष्य की आयु रूपी बेलि को तीव्रता से काट रहे हैं। नीचे काल रूपी काला

सर्प, मुख फाड़ कर जीव को ओर देख रहा है। कामिनी का शरीर ही मधु का छत्ता है* । जिससे विषयरस रूपी क्षणिक मधु-बूँद का स्वाद लेकर ऊपर्युक्त अपार दुःखों को तथा भावी निकट मृत्यु को जीव नहीं देखता।

अतएव सर्व दुःखों का कारण, पंच विषयासक्ति सहित इस काम भोग को, सर्वथा त्याग कर, कल्याणार्थी को स्व-स्वरूप चैतन्य पारख में स्थित होना चाहिये।

महा मूढ़ मन दुष्ट यह, निशि-दिन रहता संग।
विषय पंक में डारि के, करे शांति पद भंग ॥१३॥

यह अत्यन्त मूर्ख या नीच मन, रात-दिन जीव के साथ रहता है। यह जीवको विषयों के कीचड़ में डाल कर शान्ति-दशा को भंग करता रहता है ॥१३॥

कहीं मगन ह्वै काम में, रचता चित्र विराट।
अहै सिनेमा जगत यह, जीव फँसे तेहि चाट ॥१४॥

कहीं तो यह मन, काम-संकल्पों में लीन होकर, दम्पति जनित मैथुन या स्पर्श विषय का वासनामय विशाल रूप खड़ा करता है। संसार के सभी विषय-भोग तथा प्राणी-पदार्थों का सम्बन्ध, सिनेमा चित्रवत् देखने में सब कुछ परन्तु वास्तव में कुछ नहीं—बिलकुल निस्सार हैं; परन्तु जीव उन्हीं सार-हीन भोगों तथा सम्बन्धों के व्यसन में फँसे पड़े फटफटाते हैं ॥१४॥

जैसे सिनेमा में समुद्र, नदी, पर्वत, वन, हाथी, घोड़ा, फौज, शहर, युद्ध आदि सब ही सत्य के सदृश दिखते हैं परन्तु वास्तव में रंग का चित्र है। उसमें सार कुछ नहीं है। परन्तु उसी सार-हीन सिनेमा के पीछे, कितने लोग अवारा बने रहते हैं। जो उलट करके जीव को पतन की ओर ले जाता है। इसी प्रकार नर-नारियों के शरीर क्या हैं? केवल हाड़, मांस, रक्त, मल, मूत्र आदि ही तो!

* यही घटना मुमुक्षा स्त्री पुरुषों में घटा लें।

परन्तु उन्हीं सार-हीन शरीरों के चमक-दमक-आसक्ति में पड़कर, अविद्यावशी जीव विषयाग्नि में जलते रहते हैं।

कामान्धता

मन्दिर का एक वृद्ध पुजारी, एक युवती को देखकर कामातुर हो गया; और वह, उस युवती के द्वार पर गया तथा युवती से अपनी इच्छा प्रकट की। युवती ने तिरस्कार किया। वृद्ध पुजारी ने धन आदि का लोभ दिखाया। युवती अपने घर में घुस कर किवाड़ बन्द करना चाही। पुजारी द्वार से घुसना चाहा। स्त्री ने जोर से किवाड़ बन्द करना चाहा। इतने में वृद्ध का सिर दोनों किवाड़ों के बीच में पड़ कर कट गया, और वह मर गया।

इस प्रकार काम-मदिरा बड़ा प्रबल, बड़ा दुःखदायी, बड़ा क्लेश-कर है। नर-नारियों के शरीरों को मल-मूत्रों का पात्र जानकर, और विषय-भोगों से तृष्णा-उद्विग्नता रोग-शोक-दुःख की ही वृद्धि जानकर, तथा अपना चेतन स्वरूप निष्काम, तृप्त समझ कर काम-शत्रु को जड़ से नष्ट करना चाहिये।

कहीं क्रोध के रुप धरि, दुःख देत बहुतेक।
यह संसार असार में, हा-हाकार अनेक ॥ १५ ॥

कहीं तो क्रोध का रूप धारण कर, यह मन जीव को पीड़ा-पर-पीड़ा देता रहता है। इस अपार संसार-सागर में, अनेक प्रकार से दुःख की हलचल मची है ॥ १५ ॥

क्रोध से दुःखों की प्राप्ति

दो भाई का आपस में कुछ दिनों से मनमुटाव था। एक दिन दोनों में तू-तू मैं-मैं होने लगा। इतने में दोनों ओर से गालियाँ आरम्भ हो गयीं। बड़े भाई से न सहा गया, और वह एक लाठी छोटे भाई पर दे मारा। उस समय छोटा भाई, उसी बड़े भाई के इकलौते छोटे पुत्र को गोद में लिये खेला रहा था। बड़े भाई की लाठी छोटे भाई को न लग कर, उसकी गोद में बैठे अपने पुत्र के ही शिर में लग

गयी। अतः उसका शिर तुरन्त फट गया और वह मर गया। फिर पीछे क्या हो? रोने-पछताने से क्या होता है?

तनिक नम्रता, क्षमा, शान्ति न धारण करके, क्रोधवश मनुष्य विपरीत आचरण करता है। फिर नशा उतरने पर पीछे पेट भर पछताता है, तो भी चूका अवसर हाथ नहीं आता। अतः प्रतिकूलता आने पर, प्रथम ही क्षमा, समता, नम्रता और शान्ति का बर्ताव बरतना चाहिये।

क्रोध में बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है

एक बाबू जी अपनी बहन को साथ में लेकर टहलने जाते थे। पीछे से इक्केवाला आगया। वह कहने लगा—"बाबू जी! बीबी को उधर कर लीजिये।" बाबू जी क्रोधित होकर बोले—"बीबी होगी तो तुम्हारी, हमारी तो बहन है!"

अधिक क्रोधाग्नि भभकने से बाबू जी को यह ध्यान न रहा कि मैं अपने ही मुख से, अपने को गाली देता हूँ। अतः क्रोध झुँझलाहट त्याग कर, शान्ति पूर्वक बात व्यवहार करना चाहिये।

कहीं लोभ धन आदि में, होते पाप अपार।
सुत नारी के मोह कहिं, नैन बहै जल धार॥ १६॥

कहीं तो धन आदिक के लोभ में पड़ कर झूठ, कपट, छल, जबर्दस्ती, हिंसा, चोरी, डाका, विश्वासघात आदि करते हैं। कहीं तो स्त्री-पुत्रादि के मरण मोह में, नेत्रों से अश्रु-धारा बहाते हैं॥१६॥

पाप का बाप कौन?

एक पण्डित जी काशी से पढ़कर जब घर गये, तब स्त्री ने पूछा—"पाप का बाप कौन है?" उन्होंने कहा—"यह तो मैं नहीं पढ़ा।" पण्डितानी ने कहा—"पढ़ आओ।" पण्डित जी पुनः काशी गये और मुरझाये चेहरे से चौराहे पर बैठ गये। सामने एक वेश्या का घर था। उसने उन पण्डित जी को अपने नौकरानी-द्वारा बुलाकर पूछा—"आप क्यों दुखी दिखते हैं?" पण्डित ने अपना समाचार बता दिया। वेश्या ने कहा—"आप मेरे यहाँ ठहरिये 'पाप के बाप को' मैं आपको बता

दूँगी।" पण्डित जी ठहर गये। वेश्या पण्डित जी के पीनेके लिये जल लायी, और साथ में पाँच असर्फियाँ भी लायीं। पण्डित जी पाँचों असर्फियों को लेकर पानी पी गये।

दो घण्टे के पश्चात् वेश्या ने भोजन का थाल लाया, और उसके साथ पन्द्रह असर्फियाँ भी पण्डित जी को अर्पित की। पण्डित जी भोजन करने के लिए जैसे ग्रास उठाना चाहे, तैसे वेश्या ने हाथ पकड़ लिया; और कहा—"पण्डित जी! पाप का बाप यही 'लोभ' है।" पण्डित जी लज्जित हो गये; और घर जाकर पण्डितानी को बताये। पण्डितानी ने कहा—"तो अब आजीवन लोभ से सावधान रहियेगा।"

शिक्षा—नीचकर्मी वेश्या के यहाँ, पण्डित जी कभी जल-भोजन नहीं ग्रहण कर सकते थे। परन्तु पाँच असर्फियों के लोभ-वश जल पीये तथा पन्द्रह असर्फियों के लोभ वश भोजन का ग्रास उठाये थे। वेश्या ने पण्डित जी को केवल मौखिक (जबानी) शिक्षा नहीं दिया। बल्कि प्रयोगात्मक अनुभव करा दिया कि "पाप का बाप लोभ हैं।"

लोभ से सर्वनाश

एक राजा के एक कन्या उत्पन्न हुई। उसके गुण लक्षण देखने के लिये ज्योतिषी बुलाये गये। ज्योतिषी ने कन्या के लक्षणों से यह जाना कि यह कन्या जिसको व्याही जायगी, वह चक्रवर्ती राजा होगा। ज्योतिषी के मन में चक्रवर्ती राजा होने की इच्छा उत्पन्न हुई और बात बनाकर राजा से कहा कि यह कन्या बड़ी कुलक्षणो है। यह यदि आपके राज्य में रहेगी, तो आपका सर्वनाश हो जायगा। अतः इसे काष्ट की पेटी में बन्द कराके, नदी में तैरा दिया जाय।" राजा ने ऐसा ही किया।

उधर ज्योतिषी जी नदी के दो मील आगे, उस पेटी को निकालने के लिये जा बैठे। बीच में एक दूसरा राजा जङ्गल में शिकार खेलने आया था। वह नदी में सन्दूक बहते देखकर, नौकरों-द्वारा निकलवाया, तो उसमें एक कन्या को देखा। कन्या को राजा ने निकलवाकर उस सन्दूक में जङ्गल से एक चीता पकड़वाकर बन्द करवा दिया और नदी में तैरा दिया।

जब बहते-बहते सन्दूक ज्योतिषी के पास गया तब ज्योतिषी देख कर बहुत प्रसन्न हुए, और मन-ही-मन चकवर्ती राजा बन गये। उस सन्दूक को घर ले जाकर खोला, तो वह चीता निकलकर ज्योतिषी जी को और उनके लड़के को भी चीर फाड़कर खा लिया।

'सच है, लोभ से मनुष्य का सर्वनाश होता है।'

मोह-नाश के उपाय

एक स्त्री का इकलौता होनहार किशोर-अवस्थासम्पन्न पुत्र अचानक मर गया। इससे स्त्री को बड़ा शोक हुआ। पुत्र के मृतक हो जाने पर भी मोहवश वह समझती थी कि सम्भवतः किसी जानकार के उपचार (औषध) करने से अभी पुत्र जीवित हो जाय। अतः इस आशा से पुत्र के शव की अन्त्येष्टि नहीं की। यह रोती बिलखती ही थी। इतने में मार्ग से जाते हुए एक महात्मा को देखा। स्त्री जाकर महात्मा के चरणों में पड़ गयी, और अपनी दुःखद कहानी कह सुनायी।

महात्मा ने सोचा कि यदि इसे उपदेश दिया जाय, तो उसका प्रभाव इस पर नहीं पड़ेगा। अतः ऐसे मोह-नींद से जाग्रत करने के लिये कोई ठोस उपाय निकालना है। कुछ क्षण विचार करके महात्मा ने कहा—"इस लड़के का उपचार मैं कर सकता हूँ। परन्तु तुम इतना करो कि जिसके घर के कुटुम्ब में से कभी कोई न मरा हो, उसके घर से एक तोला राई के दाने ले आओ।"

मोह में पागल भोली-भाली नारी, महात्मा के शब्द का भाव न समझ सकी तथा राई के दाने खोजने चली। कई गाँव नगरों में वह भटकती रही। जिसके घर में जाती और कहती कि "आप के घर में कभी कोई प्राणी न मरा हो, तो एक तोला राई के दाने दे दो।" इतना सुनकर घर वाले कुटुम्बी अपने स्वजनों के मृत्यु सन्बन्धी दुःखों का स्मरण कर रोने लगते। कोई कहता "हमारा लड़का मर गया। कोई कहता पिता, भाई या स्त्री मर गयी है, इत्यादि।" इस प्रकार मृत्यु की कथा जब उसने सब घरों में सुना, तब उसके चित्त में काफी सन्तोष आया। और महात्मा से आकर निवेदन किया कि "प्रभो!

आप की युक्ति से हमारी मोह-निद्रा भङ्ग हो गयी। जब सभी प्राणी पर मृत्यु मड़ला रही है, तो हमारा पुत्र ही किस खेत की मूली था।"

इस प्रकार कहकर और महात्मा से उपदेश पाकर उसे वैराग्य हो गया और तब से अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करके भजन-भक्ति में जीवन बिताने लगी।

कोइ विद्या को अहं ले, मदपी सम बेहोश।
निज सम गनत न काहुको, बोलत वचन सरोष ॥१७॥

कोई तो अक्षरी विद्या का अहंकार लेकर, मद्यपी के समान अचेत हैं। अपने समान किसी को नहीं समझते, जो कुछ बोलते हैं, अभिमान-पूर्ण या उद्वेगयुक्त ॥१७॥

उपमेय से उपमान बड़ा

एक शास्त्री जी घी खरीदने गये। दूकानदार से कहे—"बढ़िया घी दीजिये!" दूकानदार ने कहा—"साहब! हमारा घी साधारण नहीं है, बरफ जैसा है।" शास्त्री ने सोचा "उपमेय से उपमान बड़ा होता है। अतः बरफ ही क्यों न खरीदें।" अतएव घी न लेकर बरफ वाले के पास गये और बढ़िया बरफ माँगे। दूकानदार ने कहा—"महाराज! हमारा बरफ खाँड़ जैसा उत्तम है।" अब तो पण्डित जी बरफ छोड़ कर खाँड़ की दूकान पर गये। दूकानदार ने कहा—"लीजिये पण्डित जी! हमारा खाड़ पूरा अमृत है।" इन्होंने सोचा "अमृत तो सबसे स्वादिष्ट होगा। इसका मैंने केवल नाम सुना है। आज अमृत ही खरीदें।" अतः दूकान-दूकान पर अमृत पूछने लगे। एक मुराऊ बड़ा मस्खरा था। उसने सोचा कि "शास्त्री जी पूरे गधा हैं। क्योंकि अमृत कोई ऐसी वस्तु नहीं कि जो बाजार में बिके।" अतः पण्डित जी जब उस मुराऊ की दूकान पर पहुँचे; तब उसने 'जिमीकन्द' का एक टुकड़ा दे दिया। और कहा कि 'यही अमृत है।' शास्त्री जी लाकर जब उसे खाने लगे, तब

उसने मुख से पेट तक काट कर घाव कर दिया। शास्त्री जी रोकर कहने लगे—"या भगवन्! यही अमृत है।"

उपर्युक्त दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि अक्षरी विद्या पढ़कर तथा विश्वविद्यालय की डिगरियाँ एवं उपाधि प्राप्त कर अभियान करना बड़ी भूल है। क्योंकि आन्तरिक सद्‌गुणों के विकास के लिये ही विद्या-शिक्षा ग्रहण करायी जाती है। यदि यह न हुआ तो, बिना क्रियाशीलता एवं अनुभव के, केवल पढ़ाई की योग्यता या उपाधि का अभिमान बन्धन ही करता है।

कतहुँ शान्ति नहिं याहि में, शीघ्र करो सब त्याग।
शान्ति आपने आप में, लहि बिवेक वैराग्य ॥१८॥

उपर्युक्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, विद्याभिमान आदि में कहीं शान्ति नहीं है; अतः सब मन के दोषों को शीघ्र त्याग करो। विवेक-वैराग्य पूर्वक; अपने में ही, शान्ति को प्राप्त करो ॥१८॥

शान्त रूप जिव आप है, और शान्ति कहुँ नाय।
ख्वाहिश तजि मन शुद्ध ह्वै, अटल शान्ति तब पाय ॥१९॥

शान्त स्वरूप तो जीव स्वयं है, अन्य कहीं शान्ति का स्थल नहीं है। जगत्-इच्छा त्यागने पर ही, मन निर्मल होता है, तब जीव अपने आप में अविचल शान्ति को प्राप्त होता है ॥१९॥

सर्वत्र गन्दगी

एक मनुष्य अपने घर में देखा, तो बच्चों ने कहीं मल कर दिया है, कहीं मूत्र। उसे घर में गन्दगी प्रतीत हुई। वह शहर में चला गया। शहर में जाते ही, जिस मोहल्ले में गया, वहाँ तमाम कचड़े पड़े थे। उस शहर में भी बड़ी गन्दगी प्रतीत हुई। और वह वहाँ से चलकर एक बाग में आया और एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। बैठे पाँच मिनट न बीते होंगे कि पेड़ पर से एक पक्षी ने उसके ऊपर बीट कर दिया। वह वहाँ से भी बहुत घिनाया और जंगल में चला गया।

जंगल में वह बैठा ही था कि उसकी दृष्टि पृथ्वी की ओर जम के

पड़ी, और हड्डी के छोटे-छोटे चूर्ण दिखलाई पड़े और उसे जंगल
भी बड़ी घृणा हुई तथा वह नदी में प्रवेश करने का विचार कि
जैसे वह नदी में पैर रखा, तैसे एक मुर्दा के मुख पर उसका पैर
पड़ा। उसे नदी से भी घृणा उत्पन्न हुई, और वह सोचा कि "ल
इकट्ठी करके और उसे जला कर, मैं उसमें प्रवेश कर जाऊँगा। क
संसार में रहने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है।"

वह मनुष्य, अपने शरीर को जलाने के लिये लकड़ी इकट्ठी
लगा। उस जंगल के वासिन्दों ने उससे पूछा—"तुम, यह लकड़ी
इकट्ठी करते हो? उसने कहा—"अपने शरीर को जलाने के लि
जंगल-वासियों ने कहा—"भले आदमी! तुम्हें यहीं, हमलोगों
के पास ही जलना है! तुम जलोगे, तब कितनी गन्दगी होगी?"
कहा—"अहो भगवन्! न जीने में गन्दगी से छुटकारा है, न मरने

उपर्युक्त दृष्टान्तानुसार, अज्ञानी मनुष्य कहीं भी जाय, उसे श
नहीं है। क्योंकि मनुष्य चाहे जहाँ जाय, उसी मिट्टी, पानी, हवा
संसार सर्वत्र है। वे ही सूर्य, चाँद, नक्षत्र, वे ही मनवशी स्वार्थी ज
जीव। वही हाड़-मांस रोग-शोक का अपना शरीर। वही भोग-इ
वाला काम-क्रोध लोभ युक्त अपना मन सर्वत्र रहेगा। अतः कहाँ शा
मिलेगी? हाँ! सत्संग-बोध और वैराग्य-अभ्यास द्वारा जब अपनी
इन्द्रियाँ जीत ली जायंगी। सब अहंकार, चाहना, मानन्दी को
दी जायगी। तब अपने ही में अविचल तथा निरन्तर शक्ति की प्र
हो जायगी। अतएव बाहर जगत् से मुड़ कर, सर्व कामना दमन
अपने ही में शान्ति को खोजो।

पूर परीक्षा के बिना, करत जौन कर्तव्य।
हानि होत जब ताहि में, दिल में बहु चिन्तव्य ॥२

पूरी परख किये बिना, मनुष्य जो कर्तव्य करता है। फलतः
जब हानि होती है, तब मनमें बहुत चिन्ता करना पड़ता है ॥२०॥

काह कहौं निज भूल को, काम किये नहिं ठीक।
करने को कुछ और था, कर बैठे बैठीक ॥२

वह सोचता है—मैं अपने अज्ञान को क्या कहूँ ? मेंने उचित काम नहीं किया। करना तो मुझे कुछ और ही था, परन्तु कर बैठा और ही, अर्थात् अनुचित ॥२१॥

बहुत काल ऐसो मनन, लाभ जानि जब होश।
फेरि करै कर्तव्य नहिं, होकर कभी बेहोश ॥२२॥

बहुत समय तक इस प्रकार विचार करते हुए, जब यथार्थ लाभ वाले कार्य की परख हो जाती है; तब वह सावधान हो जाता है। फिर कभी अचेत हो करके, हानि वाला कार्य वह नहीं करता ॥२२॥

भर्तृहरि जी ने बिना पूरी परीक्षा किये ही विक्रमादित्यको देश से निकाला। इसीलिये उन्हें पीछे पश्चाताप करना पड़ा। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं। दो मनुष्यों को आपस में बात करते हुए देखकर, तीसरा भ्रम-वश समझ लेता है कि ये हमारी बात करते होंगे। यह भी बे-समझी है। बिना पूरी परीक्षा किये किसी के प्रति गलत धारणा नहीं करनी चाहिये।

बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछिताय

एक होशियार कुत्ता को एक मनुष्य खरीद कर अपने घर लाया। जिस दिन घर लाया गया, उसी रात में घर में चोरी हो गयी। प्रातः-काल होने पर माल का पता लगाने के लिये, उस कुत्ते को छोड़ा गया। वह मार्ग सूंघते-सूँघते पास के नदी में गया और डुबकी लगाकर रुपये की एक थैली निकाल लाया। सबेरा हो जाने से चारों ने उसी नदी में धन छिपा दिया था। अतः मनुष्यों को हलाकर वहाँ से सारा धन निकलवाया गया। गया माल सब मिल गया।

स्वामी कुत्ते के ऊपर प्रसन्न होकर, जिसके यहां से वह कुत्ता खरीदकर लाया था। उसको लिखा कि "आपका कुत्ता जितने पैसे में मैं खरीद कर लाया। उसका कई गुणा अधिक वह हमें आज दे दिया। अतः यह हमसे उऋण है। इसको मैं पुनः आपके यहाँ भेजता हूँ।"

यह कागज कुत्ते के गले में बाँधकर उसने छोड़ दिया। अपने पूर्व स्वामी के यहाँ चल दिया। जब घर के निकट स्वामी ने देखा और समझा कि यह अकृतज्ञ (नमकहराम) अपने स्वामी से चुरा कर लौटा आ रहा है। अतः क्रोध में बन्दूक से कुत्ते को मार दिया। कुत्ता मर गया। जब निकट स्वामी से कुत्ते के गले में कागज देखा और उसको खोलकर पढ़ इतना पश्चाताप किया, जिसको लेखनी से लिखकर नहीं जा सकता।

शिक्षा—ठीक से परीक्षा किये बिना कोई कार्य न करो।

खाँड़ के पाँच साधु

एक सेठ पाँच साधु को नित्य भोजन कराके, तब स्वयं भोजन थे; यह उनका नियम था। एक दिन संयोग-वश कोई साधु न मि अतः वे अपना नियम पूरा करने के लिये हलवाई की दूकान से (मिठाई) की बनी पाँच साधु की मूर्तियाँ ले आये; और पांच पर उसे बैठाकर स्वयं स्नान करने के लिये जाने लगे। संयोग पाँच असली साधु द्वार पर आ गये। सेठ ने उन सन्तों से भ करने का आग्रह किया। सन्तों ने स्वीकार कर लिया। अतः सन्त बैठका में बैठाकर, सेठ स्नान करने चले गये।

इधर भोजन में देरी होने के कारण, घर का छोटा बच्चा भूख विकल हो रहा था। उसने रोते-रोते खाँड़ के साधुओं की ओर करके कहा—"माँ! बड़ी भूख लगी है। मुझे इन पाँच साधुओं एक ही साधू को खाने के लिये दे दो।" सेठानी ने बालक को बह के लिये कहा—"बेटा! अभी तुम्हारे पिता जी आयेंगे तब एक वे खायेंगे, एक तुम खाओगे; एक मैं खाऊँगी, एक तुम्हारे बड़े खायेंगे और एक तुम्हारी बड़ी बहन खायेंगी।

माता औरबेटे की बात, पासके बैठे दालान में, उन पाँचों स के कान में पड़ी, तो वे लोग कहने लगे "अब तो जान खतरे में है से भागो।" वहाँ से वे सब अपनी-अपनी जान लेकर भागने

इतने में सेठ जी स्नान करके आ गये और इन्होंने साधुओं के पीछे दौड़ कर भागने का कारण पूछा। परन्तु वे बिना पीछे देखे ही जोर से भागे जाते थे।

सेठ भी पीछे से जोर से दौड़े। अब तो उन लोगों का भ्रम और ढ़ हो गया। साधुओं ने अपने-अपने दण्ड-कमण्डलु फेंक-फेंक कर बड़ी तीव्रता से भगे। तो सेठ ने भी कपड़ा-साफा फेक कर, केवल धोती कमरमें बाँध कर, उन लोगों का पीछा किया।

साधुजन भागते-भागते थक कर चूर-चूर हो गये और एक पेड़ के नीचे सब जहाँ-तहाँ पड़ गये, तथा सेठ से कहे—"लो सेठ जी खा लो, यहाँ एक ही को तो खा सकोगे। अन्य चार तो बच जायँगे।

सेठ ने कहा—"ऐ भगवन्! यह क्या कहते हैं? क्या मैं नर-भक्षा हूँ? आप सब बिना भोजन किये क्यों चल पड़े? क्या हमारी श्रद्धा में कोई त्रुटि है। बिना आप लोगों के भोजन किये, मैं कैसे भोजन करूँगा॥

साधुओं ने अपने भागने का कारण बताया। यह बात सुनकर सेठ खिलखिला कर हँस पड़े, और कहे—"लड़के के बहलाने की बात का आप सब इतना गम्भीर अर्थ लगा लिये!"

इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि किसी बात या बर्ताव की बिना ठीक परीक्षा किये, उसमें भ्रम हो जाता है। अतः प्रत्येक बातों की परीक्षा करके, बर्ताव करना चाहिये। बिना विचारे किसी के विषय में, उल्टी धारणा न बनानी चाहिये।

करता अपने आप नर, करतब दोय प्रकार।
पाप पुण्य परत्यक्ष जग, भय अरु अभय विचार॥२३॥

मनुष्य जीव स्वयं कर्मों का कर्ता है; कर्म दो भाँति के होते हैं—शुभ-अशुभ—ये जगतुजाहिर हैं। एक के करने से भय, एक के करने से निर्भयता होती है, ऐसा विचार से ज्ञात होता है॥२३॥

पाप सोई भय रूप है, ताहि मूल से त्यागि।
निर्भय पुण्य स्वरूप निज, करि विचारि तेहि लागि॥२४॥

चोरी, हिंसा, व्यभिचार, असत्य-भाषण—ये सब ही पाप है क्योंकि इनके करने से भय, लज्जा और चंचलता उत्पन्न होती है इसको जड़ मूल से त्यागना चाहिये। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्ते असंग्रह, क्षमा, दया, दान, परोपकार, समता-नम्रतादि ही पुण्य क हैं। क्योंकि इनके करने से निर्भयता, स्वच्छन्दता और शान्ति मिल है। ये निज स्वरूप की स्थिति में सहायक हैं। अतः विचार पूर्व निष्कामभाव से, इस पुण्यकर्म के करने में ही लगना चाहिये ॥४॥

अपने दोष ही अपने को भय देते हैं

'शुभान' नाम के एक मियाँ जी, एक बेर-पेड़ के नीचे बैठकर ट कर रहे थे; साथ-साथ पृथ्वी में पड़े हुए बेर को खाते जाते थे। इतने सामने मार्ग से एक वेश्या ग्राम में जा रही थी। शुभान ने वेश्या देखा, और उन्हें सन्देह हो गया कि "वेश्या ने मेरी करतूत को, सम्भ वतः देखा होगा।" यद्यपि उसने देखा नहीं था। रात में ग्राम में वेश्य का नाच हो रहा था। शुभान भी नाच देखने गये।

वेश्या गाना आरम्भ किया "शुभान तेरी बतिया जान गयी राम! शुभान ने सोचा—"टट्टी करते समय, मेरे बेर खाने को, वेश्या अवश्य देख लिया है। अतएव यह समाज में कह न दे।" ऐसा सो कर शुभान ने, सौ रुपये की अपनी अंगूठी वेश्या को दे दी। वेश्या पु गाने लगी "शुभान तेरी बतिया कह दूँगी राम!" शुभान ने सोचा— "यह हरामजादी मानो सचमु कह देगी क्या?" अतः डर-वश उन्होंने अपने गले की जंजीर भी वेश्या को दे दी। पुनः वेश्या ने अपना अला छोड़ा "शुभान तेरी बतिया कह रही हूँ राम!' इतना सुनकर तो शुभान मियाँ जल मरे, और झुझुलाकर कहने लगे—"कह देगी कह देगी! तू क्या कह देगी? 'यही तो शुभान मियाँ टट्टी करते समय बेर खा रहे थे' और क्या कहेगी?" यह बात सुनकर सारा समाज-आश्चर्यित हो रहा तथा रहस्य खुलने पर सब हँसने लगे।

यद्यपि वेश्या ने मियाँ की करतूत नहीं देखी थी; और न वह उनकी बात ही समाज में कह रही थी। वह तो गाना गा रही थी। परन्

मनुष्य के मन का पाप, उसे स्वयं भयभीत करता है। जिसमें दोष रहता है, वह सब पर सन्देह करता है। निर्दोषी व्यक्ति शत्रु पर भी विश्वास करता है।

सन्तत यहि अभ्यास करि, हानि लाभ को छोड़ि।
अपना शुद्ध स्वरूप नित; तहैं ठहरि मन तोड़ि ॥२५॥

पुण्य कर्मों-द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करके तथा हानि-लाभ की कल्पना का त्याग करके; निरन्तर स्व-स्वरूप चिन्तन का अभ्यास करो। अपना चैतन्य स्वरूप सर्वदा शुद्ध असंग है; अतः मन की वासना मिटा कर, उक्त स्व-स्वरूप में ही स्थित होओ ॥२५॥

नारि पुरुष संसार में, संस्कार जेहि जैस।
वर्तमान तेहि कर्म तस, मिलन बिछोहन तैस ॥२६॥

जगत् के नर-नारियों के जैसे पूर्व जन्मों की वासनायें थीं। वैसे आज वर्तमान भोग के लिये प्रारब्ध बना हुआ है, और कर्मानुसार संयोग-वियोग लगे रहते हैं ॥२६॥

कर्म भूमि नर तन अहै, रचि रचि जैसे कर्म।
देह धरावत खानि तस, देह भोग परिश्रम ॥२७॥

यह मानव-शरीर कर्म करने का क्षेत्र है, यहाँ जैसे-जैसे पाप-पुण्य के कर्म रचे जाते हैं। वैसे कर्म-वासनायें चारों खानियों में देहें धराती हैं और जीव को प्रारब्ध-शरीर के निर्वाह के लिये परिश्रम करना पड़ता है ॥२७॥

योग्य योग्य मिलि मेल तस, करम समय अनुसार।
है बिछोह तेहि अन्त में, हानि लाभ तस धार ॥२८॥

जैसी-जैसी योग्यता होती है, कर्मों का मेल हो-हो करके कर्मकाल अनुकूल उत्तम-मध्यम शरीर धारण कर, कर्मानुसार ही जीव हानि-लाभ को प्राप्त होता रहता है। अन्त में कर्म फल-भोगों को भोग कर, उसकी समाप्ति हो जाती है, और शरीर छूट जाता है ॥२८॥

गरज गरज वश नात है, और न नाता काहि।
गरज पूर नहिं काहु का, कोई न साथी ताहि ॥२९॥

अपने-अपने स्वार्थ के वश होकर सब-सबसे सम्बन्ध-प्रेम करते हैं, और किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है। जहाँ स्वार्थ पूरा हुआ या स्वार्थ सधते न दिखा, फिर तो किसी का कोई नहीं, कोई दूसरे का साथ देने वाला नहीं। जगत् में अधिकतर ऐसे ही देखा जाता है ॥२९॥

सावधान याते रहो, तजि ममता अरु मोह।
आप आप जिव आप सम, कासो करिये कोह ॥३०॥

अतएव संसार के प्राणियों की ममता और राग त्यागकर, सबसे सजग रहो। जितने जीव हैं, सब अपने समान हैं, सबको अपने समान ही सुख-दुःख होते हैं; फिर किससे क्रोध या बैर किया जाय ? अतः बैर भी छोड़ो ॥३०॥

देह नात मानव सकल, धरम नात करि गौर।
निज निज श्रेणी में सजग, परखि परखि निज ठौर ॥३१॥

शरीर के सम्बन्ध में ही माता-पिता, स्त्री-पुत्र, मित्र-बन्धु आदि की सम्पूर्ण मानन्दियाँ हैं, यहाँ कल्याण-इच्छुक को धर्म का सम्बन्ध रखकर, विचार करना चाहिये। अपने-अपने दर्जे में सब सावधान रहकर, परीक्षा पूर्वक अपनी-अपनी स्थिति-कल्याण करें। राग-द्वेष की आवश्यकता नहीं है ॥३१॥

हित बर्ताव सब जीव से, धर्म सहित तिन नाथ।
करै जहाँ तक शक्ति भर, रहे भार तजि माथ ॥३२॥

सब जीवों के साथ हितका बर्ताव करे, और जिनका संग पड़ जाय, उनसे धर्म का ही सम्बन्ध रखे। शक्ति चले तक सबका हित करे और हित चाहे, राग-द्वेष का बोझा तो शिर से फेंक ही दे ॥३२॥

गुरू शिष्य में भाव यहि, योग्य योग्य बर्ताव।
गृह विरक्त जेहि रूप जस, बाधक जानि हटाव ॥३३॥

गुरु और शिष्य का भी यही आचरण होना चाहिये, दोनों को उचित बर्ताव करना चाहिये। अर्थात् गुरु निष्काम भाव तथा कृपा पूर्वक शिष्य को उपदेश देकर, उसका अज्ञान दूर कर दे, उससे कुछ चाहे नहीं; और शिष्य तन, मन, वचन से यथाशक्ति वैराग्यप्रिय सद्गुरु की सेवा तथा आज्ञा पालन करे, बदले में गुरु के ऊपर एहशान का भार न दे। गृहस्थ-विरक्त जो जिस रूप में हों, बाधक अंगों का त्याग करके, साधक अङ्गों को लें ॥३३॥

धर्महि सम्मत मेल तेहि, नहिं तो तेहि को त्याग।
गुरु पद निजपद में सदा, रहै सहित अनुराग ॥३४॥

केवल परखने-परखाने तथा कल्याण के लिये ही, गुरु-शिष्य का सम्बन्ध है। यह न होकर जहाँ गुरु या शिष्य में राग-द्वेष, जगत-प्रपंच, बन्धन, काम, मोह की वृद्धि देखें, वहाँ गुरु हो वा शिष्य, उसे तुरन्त त्यागना ही कर्तव्य है। निजपद ही गुरुपद है, अर्थात् अपना चैतन्य स्वरूप ही, गुरुपद-श्रेष्ठपद है। अतः वैराग्यप्रिय पारखी सन्तों की सत्संग-भक्ति करते हुए, विरह भावना पूर्वक स्व-स्वरूप में ही स्थित करे ॥३४॥

केवल नाम अरु भेस से, होय नहीं निज काम।
करै साँच करतब्य को, जग से होय अकाम ॥३५॥

केवल साधु का वेष अचला-लंगोटी पहन लेने से तथा गुरु या साधु कहलाने से ही अपना कल्याण नहीं होगा। कल्याण के लिये तो संसार की समस्त कामनाओं का त्याग करके सत्य आचरण, अन्त में जीवन्मुक्ति की रहनी—निराश वर्तमान में चलना चाहिये।

साधु और गुरु को एकान्त में बैठकर, अपने आचरण पर सदा विचार करना चाहिये कि "हमें तो लोग साधु, सन्त, सद्गुरु, वैराग्यवान्, यहाँ तक जीवन्मुक्त भी कह देते हैं। परन्तु वास्तव में, मैं हूँ क्या ? बाहर के वाहवाही—सेवक-शिष्य, द्रव्य, पुजापा, प्रचार प्रसार, मठ-मन्दिर, विद्या, पद, अधिकार, वाक्यचपलता इत्यादि,

तो मोक्ष में सहायक होंगे नहीं। उसके लिये तो विवेक-वैराग्य पूर्वक जगत् वासना-कामना का त्याग तथा स्व-स्वरूप की स्थिति ही है।

पहले जब साधक, त्याग-तपस्या करता है तब उसके फल में उसे अन्तःकरण की शुद्धि और साथ-साथ कीर्ति तथा ऐश्वर्य मिलता है। जो साधक कीर्ति ऐश्वर्य को पाकर, प्रमाद तथा मद करता है। उसमें शासन, क्रोध, लोभ, मत्सर—सब आ जाते हैं। अतः आगे चलकर उसी का पतन होता है। अतः सावधान।

जागत सोवत में सदा, अपन ध्यान अरु प्रेम।
लगन सहित नित मगन ह्वै, मिलै अटल पद क्षेम ।।३६।।

सोते-जागते सर्वदा अपने चेतन स्वरूप के चिन्तन तथा प्रेम में ही लीन रहे। बिरह-भावना पूर्वक निरन्तर प्रसन्न चित्त हो, जो इसप्रकार स्व-स्वरूप का प्रेमी होगा, उसे कुशल रूप अविचल मोक्ष पद मिलेगा।।३६

ज्यों किसान निज खेत रत, माली अपने बाग।
जुटे रहत तत्पर सदा, निशिदिन तेहि में लाग ।।३७।।

जैसे किसान अपने खेत के कार्य में लीन रहता है, और माली बाग में तत्परता पूर्वक सर्वदा जुटा रहता, अर्थात् रात-दिन अपने काम में लगा रहता है।।३७।।

कष्ट पड़ै ऊबै नहीं, पुनि पुनि तेहि की ओर।
अथक परिश्रम करत नित, सहन शील अति जोर ।।३८।।

किसान तथा बागवान् अपने कार्य में कष्ट पड़ने पर भी घबराते नहीं, फिर-फिर अपने काम में लगे रहते हैं। खेती-बागवानी आदि में अथक परिश्रम सदा करते रहते हैं; वे अपने काम में अत्यन्त सहन-शील होते हैं ।।३८।।

जस कहार पीनस लिये, तन मन मग की ओर।
चले जात नहिं डिगत हैं, सैन शब्द सुनि ठौर ।।३९।।

जैसे कहार पालकी लेकर, तन, मनसे अपने मार्ग की ओर चले

जाते हैं। विचलित नहीं होते; शब्दों का संकेत-करते सुनते हुए निश्चित मुकाम पर पहुँच जाते हैं ॥३९॥

तैसे जो कल्याणपद, चहत मुमुक्षू आप।
पटतर स्वारथ की सबै, दै मन दृढ़ता जाप ॥४०॥

जो मुक्ति-इच्छुक अपना मोक्षपद चाहता है, उसको उक्त दृष्टान्तानुसार स्वार्थ में सहनशीलता का उदाहरण अपने मन के सामने देकर, कल्याण साधन में दृढ़ होना चाहिये, और स्व-स्वरूप के चिन्तन में रत होना चाहिये ॥४०॥

है स्मरण प्रवाह अति, बहत धार विकरार।
गुरुपद पोत अधार दृढ़, गहे होत भव पार ॥४१॥

स्मरण वासनाओं की प्रवाह धारा अत्यन्त विस्तार रूप से बहती है। सद्गुरू के पारखपद रूप जहाज का अवलम्ब दृढ़ रूप से लेकर ही इस भवधार से, जीव पार पा सकता है ॥४१॥

दृश्य वासना अमित है, द्रष्टा भिन्न अनूप।
ऊबै नहीं विवेक बल, जानि तजै दुख कूप ॥४२॥

वासनाओं का दृश्य अपार है, परन्तु यह जानकर घबराये नहीं। क्योंकि अपना द्रष्टा स्वरूप चैतन्य उसके पृथक् और विलणक्ष है; अतः विवेक की शक्ति से वासनाओं को, दुःखों का गर्त समझकर, उसे सर्वथा त्याग करे ॥४२॥

विघ्न कठिन से कठिन जो; सहि कर ठहरै धीर।
डिगै नहीं संग्राम में, तोड़ि मनोमय भीर ॥४३॥

भयंकर से भयंकर विघ्नों को भी सहन कर, धैर्य पूर्वक साधनमार्ग में ठहरे। मानसिक युद्ध में विचलित न हो, मनोवासनाओं की भीड़ को नष्ट करता रहे ॥४३॥

दीर्घ काल अभ्यास अस, लगा रहे तेहि माँहि।
जानि अकेला आप को, है विजाति सब काहि ॥४४॥

जीवन पर्यन्त स्व-स्वरूप स्थिति के अभ्यास में लगा रहे। अपने आप को असंग समझकर, सब विजाति वासनाओं को दूर डाल दे ॥४४

पूर होय तब ध्येय निज, जेहि हित साधन कीन।
सफल सबै पुरुषार्थ तब, निज पद प्राप्त प्रवीन ॥४५॥

जिसके लिये साधन किया जा रहा है, उस लक्ष्य की तब प्राप्ति हो जाती है। सभी परिश्रम की सफलता भी तभी होती है, जब बुद्धिमान मुमुक्षु अपने स्वरूप में ही दृढ़ स्थित हो जाता है ॥४५॥

सन्त सज्जन के लक्षण

झूठ तजै सत को भजै, अहंकार करि नाश।
गुरु के बचन प्रतीत मन, छोड़ि सकल दुर्भास ॥४६॥

अभिमान को मिटाकर तथा असत्य को त्यागकर, सत्य स्व-स्वरूप का चिन्तन करे। सम्पूर्ण कुवासनाओं से रहित होकर, विवेकी सद्गुरु के वाक्य पर, हृदय से विश्वास करे ॥४६॥

निन्दा करि उपहास नहिं, नहिं गाली वक्तव्य।
सज्जन सुवर्ण रूप बनि, भक्ति धरम मन्तव्य ॥४७॥

किसी की हँसी-निन्दा न करे, और न किसी को गाली दे। सोनावत् खरा सज्जन स्वरूप बनकर, भक्ति-धर्म की समझ धारण करे ॥४७॥

दूसरे की निन्दा-उपहास तो तुम करो ही नहीं। यदि कोई तुम्हारी करे, तो उसे क्षमा कर जाओ।

अपनी निन्दा पर क्षमा

एक महा पुरुष से एक ने कहा—"अमुक मनुष्य आपकी अनुपस्थिति में, आपकी निन्दा कर रहा था" उन्होंने कहा—"मेरी अनुपस्थिति में, वह मुझे पीट भी सकता है।"

शिक्षा—पीठ पीछे होनेवाली अपनी निन्दा पर, कान नहीं देना चाहिये।

चोरी हिंसा बामरत, तन धन क्षणिक विनाश।
बदला तेहि भोगन पर, जानि तजै तेहि आश ॥४८॥

नाशवान् क्षणभंगुर तन धन के भ्रम-सुख के लिये चोरी, हिंसा तथा व्यभिचार करना—महा पाप है। इन पाप कर्मों का बदला या फल भोगना पड़ेगा—यह जानकर, इनकर्मों का करना ही कौन कहे करने की इच्छा भी त्याग दे ॥४८॥

अपने बुरे कर्म-फल-भोग

एक गंजा शिर वाला मनुष्य, उघारे शिर कहीं जा रहा था। कड़ी धूप लगने से वह बहुत कष्टित हुआ और एक ताड़वृक्ष के नीचे ठंढाने बैठ गया। इतने में ताड़ का एक फल उसके ऊपर गिरा और शिर फट गया।

उपर्युक्त दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के जब बुरे कर्मों के फल भोग उदय होते हैं। तब विपत्ति पर विपत्ति उसके ऊपर आती हैं, बुरे कर्मों का फल बुरा अवश्य मिलता है।

ईर्ष्या क्रोध न काहु से, जानि स्वजाती जीव।

छल करि दुख देवे नहीं, मान न काहू कीव ॥४९॥

जीव मात्र को अपनी ही जाति का जानकर, किसी पर ईर्ष्या या क्रोध न करे। किसी के साथ विश्वासघात न करे, किसी को किसी प्रकार दुःख न दे; और किसी प्रकार का अभिमान न धारण करे ॥४९॥

ईर्ष्या महा पाप है। ईर्ष्यालु मनुष्य अपना लाभ नहीं सोचता, बल्कि पड़ोसी की हानि सोचता है। अर्थात् अपना लाभ हो चाहे न हो, परन्तु पड़ोसी की हानि होनी चाहिये।

ईर्ष्या-पाप

एक देवालय में दो मनुष्य तपस्या करते थे। उनकी उग्र तपस्या से देव प्रसन्न होकर कहा—"तुम लोगों में कोई एक मनुष्य जो वर माँगना चाहे, माँग ले। इसमें नियम यह है कि जिस वस्तु का जो वर माँगेगा, उसको उतनी ही वस्तु मिलेगी, और साथ वाले को उसकी दूनी मिलेगी।"

यह सुनकर एक दूसरे को कहे कि तुम माँगो, और दूसरा पहले

वाले से कहे कि तुम माँगो। अन्त में एक ने कहा कि "हम नहीं माँग सकते, चाहे कुछ भी हो।" दूसरे ने सोचा "अच्छा! यह बड़ा चतुर बनता है, तो मैं ही माँगूँगा।" उसने सोचा "यदि मैं एक लाख रुपये माँगूँ, तो साथ वाले को दो लाख रुपये मिल जायँगे। और यदि मैं एक राज्य माँगूँ तो साथ वाले को दो राज्य मिल जायँगे। यह बड़ी आपत्ति है। अतः ऐसा क्यों न करूँ कि साथ वाले की अधिक हानि हो जाय।" ऐसा विचार कर उसने दैव से यही वर माँगा "हे देव! हमारी एक आँख फूट जाय।" बस क्या था, उसकी एक आँख फूट गयी, और साथ वाले की दोनों आँखें फूट गयी।

यह दृष्टान्त कल्पित है। क्योंकि मनुष्य के अतिरिक्त देवी-देवता और बर-शाप सब कल्पित हैं। अतः इस दृष्टान्त से, यह सारांश लेना है कि मनुष्य को अपनी हानि नहीं अखरती, परन्तु दूसरे का लाभ देखकर, उसे अखरता है। यह बड़ा भारी अज्ञान है। जब तक इस ईर्ष्या रूप पाप का सर्वथा त्याग नहीं होता, तब तक जीव का कल्याण नहीं हो सकता।

दुख सुख अपने सम लखै, सब जीवन में ताहि।
रहित द्रोह समता सहित, करै शत्रुता नाहि ॥५०॥

सब देहधारी जीवों को सुख-दुःख हमारे ही तुल्य होते हैं—ऐसा विचारे। अतएव जीवमात्र से बैर त्याग करके समता रखे; किसी से शत्रुता का बर्ताव न करे ॥५०॥

हित चिन्तन सबका करै, मित्र भाव को लाय।
सज्जन ते संसार में, सबको प्रिय मन भाय ॥ ५१॥

जीवमात्र में मैत्रीभाव धारण कर, सबका कल्याण चाहे। संसार में ऐसे सज्जन पुरुष, प्रायः सबके मनको प्रिय लगते हैं ॥५१॥

बोलत वचन रसाल अति, अभय रहत सब ठौर।
भक्ति भाव गुरु साधु की, करै फिक्र तजि गौर ॥५२॥

सबसे अत्यन्त मीठे वचन बोले, दुराचरणों को सर्वथा त्याग कर, सब स्थल पर निर्भय रहे। विवेकी-वैराग्ययुक्त सद्गुरु-सन्तों में भक्ति

प्रेम रखे; और संसार की चिन्ता त्याग कर अपने कल्याण के लिये विचार करे ।।५२।।

सत्य, अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करना), अपैशुन्यता (निन्दा-चुगुली न करना), ब्रह्मचर्य, निर्हंकार, वैराग्य, सज्जनता, भक्ति, धर्म, समता, क्षमा, दया, निर्वैरत्व, सबसे मैत्री-भाव, प्रिय-भाषण, जगत-प्रपंच से निश्चिन्तता (लापरवाही)—आदि, उपर्युक्त सद्गुण-सदाचरणों को जो धारण करता है, वह सर्वत्र निर्भय, स्वच्छन्द और सुखी रहता है।

पारख बोध प्रत्यक्ष जेहि, शान्ति बुद्धि मिलि ताहिं ।

प्राप्त अक्षय सुख ताहि को, जो निज पद ठहराहिं ।।५३।।

जिनको स्व-स्वरूप पारख का यथार्थ बोध हो जाता है, उनको प्रपंच रहित शान्ति-प्राप्ति की बुद्धि मिलती है। उसी को अविचल सुख की प्राप्ति होती है, जो अपने चैतन्य स्वरूप में स्थित हो जाता है ।।५३।।

सत्य शील अमृत लहैं, सज्जन भगत प्रवीन ।

जगत जाल से पार ह्वै, मुक्ति परम पद लीन ।।५४।।

बुद्धिमान साधु-भक्त अमृत रूप सत्य और शील (साधुता) को धारण करते हैं। और संसार-बन्धन से पार होकर, परमपद मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं ।।५४।।

दुष्ट के लक्षण

कटुक वचन बिन सहन के, दिल उद्वेग हमेश ।

हानि लाभ की सूझ बिन, बोलत वचन दुखेस ।।५५।।

जो कठोर वचन बोलता है, जो सहनशक्ति से रहित है, जिसके हृदय में सर्वदा राग-द्वेष की उलझन बनी रहती है। हानि लाभ का विचार त्यागकर, जो सबसे ऐसा ही वचन बोलता है, जिससे सबको दुःख हो ।।५५।।

बात बात में तर्क करि, समता विना विचार ।

समयासमय का ध्यान नहिं, निर्दय निपट गँवार ।।५६।।

जो बात-बात में सबसे कुतर्क करता है, जो समता-हीन और विवेक-हीन है। किस समय में कैसे बोलना या बर्ताव करना चाहिये। इसका जिसे ध्यान नहीं है, जो दया-हीन और बिलकुल अज्ञानी है ॥५६॥

निन्दा चुगुली द्वेष बहु, स्वारथ हेतु बखान।
सुखाध्यास वश देह के, उन्मत मान भुलान ॥५७॥

अपने स्वार्थ के लिये, जो दूसरे का अत्यन्त द्वेष करता है तथा निन्दा-चुगुली करता है। जो अपने शरीर-सुखाध्यास के वश होकर, अभिमान में उन्मत्त होकर, असावधान रहता है ॥५७॥

ओछी मति गति विषय रत, साधु संग से दूर।
सार शब्द निर्णय कथा, सुनत नहीं मन कूर ॥५८॥

जिसकी बुद्धि अत्यन्त छिछिली तथा आचरण विषयासक्ति का है, जो विवेकी सन्तों से दूर रहता है। जिसका हृदय इतना टेढ़ा तथा कठोर है कि सारशब्द-निर्णयवाणी, कथा-सत्संग की ओर जाता ही नहीं—वही दुष्ट है ॥५८॥

झूठ साँच जेहि ज्ञान नहिं, शठ कहलावत सोय।
समुझि बूझि जो रहस्य तजि, मूरख कहिये सोय ॥५९॥

जिसको सत्य-असत्य का ज्ञान नहीं है वही शठ कहलाता है। और सत्य-असत्य को पृथक्-पृथक् जानकर भी जो सदाचरण-सद्गुण त्याग देता है, उसी को मूर्ख कहना चाहिये ॥५९॥

यथा—जानि बूझ जो कपट करतु है, तेहि अस मन्द न कोई।
कहहिं कबीर तेहि मूढ़ को, भला कौन विधि होई॥
(बीजक)

राग और सांसारिक जीवन पर बिचार

तन सम्बन्ध मानब सकल, सृष्टि मनोमय सोय।
माया भरमिक नारि नर, मोहित सबै बिगोय ॥६०॥

शरीर के सम्बन्ध में, प्राणी—पदार्थों में अहन्ता ममता और राग-द्वेष बनते हैं; ये ही सब मनोमय-सृष्टि है। इसी माया में जगत के सब अज्ञानी नर-नारी मोहित होकर, बन्धमान होते हैं ॥६०॥

एक एक में प्रेम करि, मोह फाँस दिन रैन।
सैन बैन अरु नैन से, घायल ह्वै बेचैन ॥६१॥

स्त्री पुरुष एक-से-एक प्रेम करके दिन-रात राग-बन्धन में बँधते-बाँधते रहते है। स्त्री के अंग-संकेत, मोहक-बचन तथा तिरछे नेत्र से, पुरुष विषयासक्ति में आसक्त होकर व्याकुल हो जाता है। इसी प्रकार पुरुष के शरीर में स्त्री आसक्त हो जाती है॥ ६१ ॥

सो दुख मेटन के लिये, हिंसा मैथुन पाप।
कर्म शुभाशुभ करत नर, अनल घृत बढ़ि ताप ॥६२॥

उपर्युक्त विषय-इच्छा जनित चंचलता को मिटाने के लिये, मनुष्य मैथुन कर्म करता है, इसमें किसी को विरोधी जानकर उसके प्राण-घात का पाप भी कर डालता है। विषय-इच्छा की सिद्धि के लिये, पाप-पुण्य कर्म मनुष्य करता है; परन्तु आग में घी डालने के समान, विषय भोग करने से, इच्छा का ताप बढ़ता जाता है ॥६२॥

सुख दुख भोगत इस तरह, जागृत में बिस्तार।
संस्कार सोइ स्वप्न में, साक्षी जीव विचार ॥६३॥

विषय-इच्छा में पड़कर इस प्रकार मनुष्य क्षणिक सुख और अपार दुःख जागृत अवस्था में विस्तार पूर्वक भोगता है। विचार करके देखिये ! द्रष्टा जीव उसी संस्कार-वश, स्वप्न में भी कष्टित रहता है ॥

स्थूल सूक्ष्म अभाव जब, सोई सुषोपति जान।
जागृत से फिर स्वप्न ह्वै, कौहट जगत भुलान ॥६४॥

स्थूल-शरीर की जागृत तथा सूक्ष्म शरीर की स्वप्नअवस्था का जब सर्वथा अभाव हो जाता है, वही सुषुप्ति-अवस्था जाननी चाहिये। जागृत से जब स्वप्न-अवस्था आती है, तब जागृत-अवस्था की संसार कौहट तो भूल जाती है। परन्तु स्वप्न-कौहट दुःख देने लगती है ॥६४॥

भूप कोई जस स्वप्न में, रंक होय दुख खाय।
रंक दरिद्री भूप ह्वै, सुक्ख बहुत दर्शाय ॥६५॥

जैसे कोई राजा, स्वप्न-अवस्था में दरिद्र होकर दुःख उठाता रहे, और कोई दरिद्र स्वप्न में राजा बन जाय, और उसे राज्य-सुख का बड़ा अनुभव हो ॥६५॥

पुनि जागे नहिं हानि तेहि, लाभ होय नहिं वाहि ।
अपने-अपने कर्म-वश, हानि लाभ सब काहि ॥६६॥

फिर जग जाने पर राजा को हानि नहीं सताती, और दरिद्र को लाभ का अनुभव नहीं होता । अपने अपने शुभाशुभ कर्म-वश ही, सबको हानि-लाभ की प्राप्ति होती है ॥६६॥

"स्वप्ने होय भिखारि नृप, रंक नाक पति होय ।
जागे हानि न लाभ कछु, तिमिप्रपंच जिय जोय ॥रामा०॥"

मोहनींद से जागि के, अपने को अलगाय ।
लाभ हानि नहिं आप में, जीव अखण्ड रहाय ॥६७॥

आसक्ति-निद्रा से जाग्रत होकर, जब मुमुक्षु अपने को संसार-शरीर दृश्यमात्र से विवेक पूर्वक पृथक कर लेता है । तब उसको यह अनुभव हो जाता है कि अपने स्वरूप में कुछ हानि-लाभ नहीं है, अपना स्वरूप नित्य अखण्ड है ॥६७॥

स्वप्ने का सुख भोग जस, जागे हाथ न आय ।
कौतुक तैसे जगत यह, अन्त सभी छुटि जाय ॥६८॥

स्वप्न-अवस्था में मिला हुआ भोग-सुख, जागृत होने पर जैसे मनुष्य के हाथ में नहीं आता । इसी प्रकार नाना प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति, शरीर, अवस्था-सहित यह तमाशा संसार अन्त में सब छूट जाता है, और हाथ में कुछ भी नहीं आता ॥६८॥

सांसारिक जीवन की असारता

एक धनाढ्य सेठ की पटाचारा नामक एक बुद्धिमती पुत्री थी। योग्यता आने पर, एक तरुण से उसका सम्बन्ध हुआ । वह अपने पति के घर जाकर रहने लगी । कुछ दिन में उसके एक पुत्र हुआ । पुत्र जब चार वर्ष का हुआ, तब पटाचारा पुनः गर्भवती हुई । गर्भ-प्रसूत

का दिन जब निकट आया, तब उसे अपने मयके जाकर, माता-पिता तथा भाई-भौजाई से मिलने की इच्छा हुई। पति ने समझाया कि इस समय नैहर जाना ठीक नहीं है। परन्तु उसके मनमें सन्तोष न हुआ और पति के अनुपस्थिति में, अपने चारवर्षीय पुत्र को लेकर नैहर चल पड़ी।

पति जब घर पर आया, तो समझा कि पत्नी नैहर के मार्ग में ही मिलेगी। अतः उसकी खोज में वह भी चल दिया। कुछ दूर जाने पर पुत्र-सहित स्त्री मिली। उसका अधिक आग्रह देखकर, पति ने उसे उसके नैहर सकुशल पहुँचा देने का विचार किया और उसे लेकर चला।

मार्ग चलते-चलते उसे एक जङ्गल मिला। वहाँ पर उन लोगों को भोजन की इच्छा हुई। स्त्री-पुत्र को एक वृक्ष के नीचे छोड़कर भोजन बनाने के लिये, पुरुष सूखी लकड़ी तोड़ने गया। यद्यपि वह समय वर्षा का न था। परन्तु उसी समय हवा चली और पानी की काफी वारिस हुई। पानी की वारिस होते समय ही, स्त्री के गर्भ-प्रसव की पीड़ा होने लगी, और तत्काल एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

उधर अधिक समय बीत गया, लकड़ी लेकर पति नहीं आया। अतएव दोनों पुत्रों को किसी प्रकार सम्हालते हुए, पटाचारा पति को खोजने निकली। कुछ दूर जाने पर, उसके पति का शव (लाश) एक वृक्ष के नीचे पड़ा हुआ मिला। वह पुरुष लकड़ी तोडने के लिये एक वृक्ष पर चढ़ा था। उसी काल में, एक विषधर सर्प के काट लेने से, घटनास्थल पर ही, वह तुरन्त मर गया था।

अब तो स्त्री के दुःख की सीमा न रही। रहा! धैर्य बाँध कर, किसी प्रकार पति के शव का दाह-संस्कार करके और दोनों पुत्रों को लेकर, वह नैहर के मार्ग को पकड़ी।

आगे एक नाला पड़ता था। तुरन्त पानी बरसने के कारण, उसमें बाढ़ आ गयी थी। दोनों पुत्रों को एक साथ लेकर, नाला पार करना उसकी शक्ति के बाहर था। अतः बड़े लड़के को, इसी पार छोड़कर और छोटे लड़के को गोद में लेकर वह पार गयी और घास का एक

नरम बिछौना बनाकर, छोटे शिशु को उस पर सुला दिया, और बड़े पुत्र को पार उतारने के लिये, उसने पुनः नाले में प्रवेश किया। जब आधे नाले में आई, इतने में एक भेड़िया आ गया; और वह शिशु को उठाने के लिये चेष्टा करने लगा। नाले के बीच से ही हाथ हिला कर भेड़िया को हटाने के लिये पटाचारा ने असफल प्रयत्न किया। इधर बड़ा लड़का समझा कि "हाथ हिला कर माता हमें अपने पास बुला रही है।"

अतएव वह माता की ओर नाले में चल दिया। पानी की धारा बड़ी जोर थी। अतः कुछ दूर जाने पर, बच्चे का पैर पृथ्वी पर न ठहर सका और पानी में वह बहने लगा। उधर भेड़िया छोटे शिशु को उठा ले गया। इस प्रकार दोनों पुत्रों के सम्हालने में वह दोनों से हाथ धो बैठी। अर्थात् एक पुत्र नाले में बह गया और दूसरे को भेड़िया उठा ले गया। इस प्रकार केवल दो ही चार घण्टे में, उसकी गृहस्थी उजड़ गयी।

शोक से व्यथित पटाचारा नैहर की ओर बढ़ी; "नैहर में जाकर माता-पिता, भाई-भौजाई से मिलकर कुछ सन्तोष मिलेगा"—इस कामना में उसके पैर शीघ्र-शीघ्र बढ़ रहे थे। नैहर पहुंची तो वहां की दशा और भयंकर देखने में आयी। सम्पदाशाली पिता के विशाल भवन के स्थान पर, राख की ढेर दिखाई पड़ी। इसमें कारण यह हुआ कि किसी शत्रु ने द्वार पर बाहर से ताला लगा कर, घर में आग लगा दी। अतएव घर के परिवार भी घर के बाहर न निकल सके और परिवार, धन तथा घर—सब-के-सब भस्म हो गये। यह भयानक दृश्य देखकर पटाचारा का लक्ष्य स्थिर न रहा और मोह में पागल होकर वह ग्राम-नगरों में अपने वस्त्रों को फाड़ती तथा डरावनी आँखें दिखाती हुई घूमने लगी।

कुछ दिनों के पश्चात् उसे श्रावस्ती में महात्मा बुद्ध के दर्शन हुए। दर्शन से ही उसे कुछ शान्ति आई और जब उनके उपदेशों को सुनी, तब उसका मोह दूर हो गया, और संसार से वैराग्य हो गया और

महात्मा-बुद्ध से दीक्षित होकर, वह शेष जीवन को ब्रह्मचर्य-वैराग्यमय व्यतीत किया।

शिक्षा—वास्तव में सांसारिक जीवन में कुछ भी सार नहीं है। इस उत्तम नर-तन को पाकर जो लोक-परलोक हर स्थलों पर जीव का साथी होता है। उस धर्म का ही संचय करना चाहिये; और विवेक-वैराग्य-द्वारा मनोवासनाओं को मिटा कर, अविचल शान्ति की प्राप्ति करनी चाहिये।

बन्ध्या सुत अरु शृंग शश; कमठ रोम नहिं होय।
तैसहिं सुख मिथ्या समुझि, चेत करो नर लोय ॥६९॥

वन्ध्या के पुत्र, खरगोश के सींग और कच्छप की पीठ पर जैसे केश नहीं होते। तैसे विषयों में सुख नहीं होता; ऐसा समझ कर, ऐ मनुष्यो! आसक्ति-नींद से चेत करो ॥६९॥

जाहि हेतु सब बिकल ह्वै, मृग सम रहे भुलाय।
शान्ति सुगन्ध सो आप में, गुरु बिन जानि न पाय ॥७०॥

जिस शान्ति-सुख के लिये, सब जीव कष्टित होकर, कस्तूरी-मृग के तुल्य विषय-वन में खोजते-फिरते तथा भटकते हैं। वह शान्ति-सुख रूपी कस्तूरी तो अपने आप ही में है, परन्तु बिना सद्गुरु के, जीव जान नहीं पाते ॥७०॥

कल्पित तन मन जानि के, याते होओ थीर।
करि करि नित संग्राम रिपु, विजय लहौ रणधीर ॥७१॥

इस शरीर में मन-वासनायें सब कल्पित हैं, अतः ऐसा जानकर तथा कल्पित वासनाओं को त्याग कर शान्त होओ। कल्पित मनशत्रु से निरन्तर युद्ध करते हुए, हे युद्ध-कुशल साधक! तू इन पर विजय प्राप्तकर ॥७१॥

पाँच की डींगे

एक स्थान पर पाँच मनुष्य बैठे, इधर-उधर की बातें कर रहे थे।

एक था बहरा, दूसरा था अन्धा, तीसरा था लङ्गड़ा, चौथा था लूला, और पाँचवाँ था कंगला—पूरा दरिद्र समाज।

अचानक बहरा कहने लगा—"मुझे सुनाई पड़ रहा है कि चोर आ रहे हैं।" अन्धा कहने लगा—"यार! मुझे भी कुछ ऐसा ही दिखाई पड़ता है।" लंगड़ा बोला—"चलो भाई भाग चलें।" इतने में जोश में आकर लूला कहने लगा—"बदमाशों को मैं पकड़ लूंगा! "कंगला क्रोध में आकर कहने लगा—"यार! हमें लुटा दोगे!"

काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय,—येही पाँच बहरे, अन्धे, लंगड़े, लूले तथा कंगले हैं। तात्पर्य यह है कि ये कामादि पाँचों कल्पित तथा शक्ति हीन हैं यदि हम अपनी सत्ता न दें, तो इनमें कोई शक्ति नहीं है कि हमको ये नीचे गिरा सकें। इन पाँचों की डींगें मात्र हैं। विवेक वैराग्य की अखण्ड धारणा आने पर ये समूल नष्ट हो जाते हैं। अतः इन्हें नाश करना साधक का परम कर्तव्य है।

छः पशु कर्मों का सुधार

छाजन भोजन कर्म जो, मैथुन मोह सुधार।
उचित नींद रहित ह्वै, मानव जीवन धार ॥७२॥

छाजन, भोजन, मैथुन तथा मोह के जो कर्म हैं, इनका सुधार करो उचित मात्रा में नींद लो तथा भय से रहित हो जाओ; मानव जीवन तो पाये हो, परन्तु मानवता भी धारण करो ॥७२॥

शीत उष्ण निरुवार अरु, तन ढकाँन के हेत।
फैसन कोमल भाव तजि, वस्त्र सात्वकी लेत ॥७३॥

फ़ैशन और कोमलता की आसक्ति एवं भड़कीले तथा अत्यन्त मूल्यवान् वस्त्रों का त्याग करके, केवल ठण्ढी-गरमी-निवारण के लिये तथा शरीर के छिद्रों को ढकने के लिये, सात्विक-उदासीन वस्त्रों को पहनना चाहिये ॥७३॥

विवेक से देखिये तो यह शरीर हाड़-मांस, मल-मूत्रों का पिण्ड फोड़ा तुल्य है। जैसे फोड़े की मलहम-पट्टी की जाती है। तैसे शरीर

रूप फोड़े का, भोजन-जल ही 'मलहम' तथा वस्त्र ही 'पट्टी' है। यह शरीर अनेक छिद्रों से युक्त भयंकर है। ठण्ढी-गरमी-वर्षा से इसकी छति होती है, तथा कीड़े-मकोड़े इसे नोच खाते हैं। अतएव केवल इसके रक्षार्थ सात्विक वस्त्रों का उपयोग करना चाहिये। 'सादा जीवन उच्च विचार' में ही मानवता चरितार्थ होती है। फैशन-विलास से तो बिलकुल मानसिक पतन होता है। मानसिक पतन के पश्चात् ही शारीरिक, बौद्धिक चारित्रिक, सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक—सबका पतन होता है। अतः फैशन-विलास का त्याग कर, सात्विक जीवन बनाना चाहिये।

उत्तम पोशाक क्या है ?

एक नवयुवक, बहुत चमकीला-भड़कीला एवं बहुमूल्य वस्त्र पहना करे। दिन में ४-६ बार कपड़ा बदले। एकदिन खूब सज-धज कर, किसी काम के लिये पिता के पास गया। पिता ने कहा—"बेटा ! भले आदमी को वह वस्त्र पहनना चाहिये, जो अन्य लोग न पहनते हों।" पुत्र ने कहा—"पिताजी ! वह कैसा वस्त्र होता है ?" पिता ने कहा—"ताना उसका उत्तम स्वभाव का है और बाना उत्तम आचरण का।" क्या पाठक भी ऐसा वस्त्र पसन्द करेंगे ?

बाहरी बाल-वस्त्रों में जो बहुत ऐंच-खैंच करता हैं। उसका अन्तर (मन) भी ऐंच-खैंच (वक्रता) युक्त होता है। बहुत फैशन को, सभी लोग नकलीपन समझते हैं। बहुत फैशन करके, सत्पुरुषों के पास जाने में, फैशनेबल लोग स्वतः संकोच करते हैं। वास्तव में फैशन नकलीपन का रूप है। आन्तरिक नकलीपन का, फैशन विज्ञापन है।

अपनी वास्तविक सुन्दरता पर विश्वास न होने से ही, मनुष्य अपनी सुन्दरता की रचना के लिये, फैशन बनाता है। जो अपने को सौन्दर्य-रहित समझता है, वही मुख में पाउडर, ओष्ठ तथा गाल में रंग दांत में मिस्सी तथा हाथ-पैर में मेंहदी लगता है।

बहुत महीन और भड़कीला वस्त्र पहनने वाले का मन भी महीन

तथा भड़कीला होता है। विचारशील पुरुष सादा तथा मोटा या मध्यवर्तीय वस्त्र पहनते हैं।

वास्तव में सर्व सुन्दरता का केन्द्र अपना चेतन स्वरूप है। उसी के सौन्दर्य-समुद्र की एक छींट से यह शरीर सुन्दर है। उसी चेतन के न रहने से, यह कंचन-काया मुर्दा कहलाती तथा सड़-गल कर गन्धाने लगती है। वह अनन्त सौंदर्य-समुद्र मैं ही हूँ—ऐसा विवेक करके अपने ज्ञानमय सौंदर्य का स्वाभिमान करना चाहिये। इस नश्वर काया के कृत्रिम, मलीन तथा क्षणभंगुर सौंदर्य की लालसा सर्वथा त्याग देनी चाहिये।

मांस नशा को त्याग करि, सात्विक शुद्ध अहार।
न्यायोचित निर्वाह करि, चोरी मिथ्या टार ॥७४॥

माँस-मादक वस्तुओं का त्याग करके सात्विक एवं पवित्र भोजन ग्रहण करे। न्याय तथा उचित व्यवहार से निर्वाह करे। चोरी, मिथ्या बर्ताव एवं मिथ्या भाषण करके नहीं ॥७४॥

मांस-मछली तथा अण्डा का सर्वथा त्याग करे। क्योंकि ये अशुद्ध पदार्थ हैं। और महापाप (हिंसा) करने से मिलते हैं। जब हम किसी मृतक को जिला नहीं सकते, तो जिन्दे को मृतक करना, मानवता-विरुद्ध दानवता तथा इन्शानियत के बदले शैतानियत है।

मांसाहार त्यागो

मुसलमान अधिक मांसाहारी होते ही हैं। एक मुसलमान कुटुम्ब था। उस घर में एकही (इकलौता) होनहार लड़का था। वह बहुत सज्जन था। उसकी अवस्था अठारह (१८) वर्ष की थी। वह बी० ए० में पढ़ रहा था। समय-समय से घर में मांस पकता था, सभी लोग खाते थे। संयोगाधीन एक दिन घर वाले, लड़के को मांस खरीदने के लिये भेजे।

लड़का कसाई की दूकान पर गया। कसाई बकरा मारने वाला ही था। लड़के से कहा—"आप बैठ जाइये। अभी मैं बकरा काटकर मांस

दूँगा।" लड़का बैठ गया। कसाई ने बकरे को लाकर बिस्मिल्ला का नाम लेकर छुरी चलाई। ऐसी भयानक निर्दयता का दृश्य लड़का आज तक नहीं देखा था। बकरे पर कसाई की बेरहमी देखकर, लड़के का हृदय काँपने लगा। उसने कहा—"लाहौल बिला क़ूवत! रहीम का नाम लेकर भी इतनी बेरहमी का काम।" लड़का उसी क्षण प्रतिज्ञा कर लिया कि "जो मांस, दूसरे को इतना दुःख देकर मिलता है। उसको अब जीवन पर्यन्त नहीं खाऊँगा।" घर जाकर घर वालों से कहा—"यदि आप घर के सब लोग मांस खाना नहीं छोड़ेंगे, तो मैं घर में नहीं रहूँगा।" इकलौते लड़के के घर-त्याग देने के डर से, घरवाले सब लोग मांस-मछली-अण्डे आदि खाना सर्वथा छोड़ दिये।

शिक्षा—किसी जीव को पीड़ा देकर मिलनेवाला रोग युक्त-घृणित मांस का त्याग करना मानव मात्र का पुनीत कर्तव्य है।

पैगम्बर साहब की दया

एक पैगम्बर साहेब एक जगह बैठे थे। एक श्रद्धालु आदमी उन्हें तीन अण्डे लाकर, भेट चढ़ाया।

पैगम्बर साहब ने पूछा—इसे कहाँ से लाया है?

आदमी ने कहा—एक पक्षी के घोसले से।

पैगम्बर साहब—घोसले में इसकी माँ नहीं थी?

आदमी—थी साहब! नर-मादा दोनों थे।

पैगम्बर सा०—जब तुमने अण्डे लिये, तब वे नर-मादा क्या करने लगे?

आदमी—चें-चें करने लगे, बिलखने लगे।

पैगम्बर सा०—तुम्हारे कितने बच्चे हैं?

आदमी—साहब! तीन बच्चे।

पैगम्बर सा०—उन्हें कोई मारने के लिये ले जाने लगे, तो?

आदमी—हमें बड़ा दुःख होगा साहब!

पैगम्बर सा०—तुम्हारे बच्चे को फिर लाकर दे-दे, तो?

आदमी—हमें बेशुमार खुशी होगी।

पैगम्बर सा०—अगर इन अण्डों को, इनके नर-मादे के पास पहुँचा दो, तो?

आदमी—इनके नर-मादे को बड़ी खुशी होगी।

पैगम्बर साहब ने कहा—अच्छा तो इसी वक्त, इनको जहाँ से लाये हो वहाँ पहुँचा दो। उस आदमी ने अण्डों को यथास्थान रख आया।

शिक्षा—चलते-फिरते समस्त प्राणियों को शक्ति भर दुःख न दो।

हिंसा-मांसाहार-निषेध-पूर्वी

त्यागो मद्य मांस औ हिंसा कुविचार बाय,
धरो गुरु विचार बाय नाय ॥ टेक ॥

मदिरा गाँजा भाँग वो बीड़ी। ताड़ी तेज तमाकू सीड़ी॥
पीके धर्म, बुद्धि, धन, बल से भये लाचार बाय ॥ धरो० ॥१॥
तन धन नाश नशा से होवे। आदत में पड़ि दिन-दिन रोवे॥
त्यागो सर्व नशीली आदत बड़ी बेकार बाय ॥ धरो० ॥२॥
मांस है घृणा योग्य सुनु भाई। ताको खाते लोग पकाई॥
शूकर श्वान चील्ह वो गीधों का आहार बाय ॥ धरो० ॥३॥
पशु को मारि काटि के खाते। मानव मुर्दखोर हो जाते॥
लज्जा घृणा न मन में आती अहो! तुम्हार बाय ॥ धरो० ॥४॥
अपनी जान सभी को प्यारी। क्यों तू देवै पीर अनारी॥
मानव दानव वो इन्शान बना शैतान बाय ॥ धरो० ॥५॥
जितना जीव बधोगे भाई। बदला देवेक पड़ी अघाई॥
हिंसा सब पापों का पाप मूल सरदार बाय ॥ धरो० ॥६॥
तज दो हिंसा मन से भाई। चोरी वो व्यभिचार दुराई॥
परतिय मात समान वो परधन जानो छार बाय ॥ धरो० ॥७॥
कीजै साधुन की सेवकाई। धर्म विचार में प्रेम लगाई॥
कह अभिलाष यही मानव जीवन का सार बाय ॥ धरो० ॥८॥

मदिरा, ताड़ी, गाँजा, भाँग बिलकुल न छूओ। बीड़ी-सिगरेट दोहरा, तमाकू, काफी, कोको का सर्वथा त्याग करो। ये सब बुद्धि, शरीर और धनधर्म—सबके नाशक हैं। चाय की चाह भी ठीक नहीं

है। पान खाने का व्यसनी होना तो मुख, दांत और पुरुषत्व को नष्ट करना है। अतएव दुर्व्यसनों का सर्वथा त्याग करो।

अन्न, जल, फल, मूल, दूध, घृत, मेवा, मिष्ठान्नादि सात्विक वस्तुओं को छान विचार तथा धोकर, स्नानादि शुद्धता पूर्वक पवित्र भण्डारी-द्वारा, पवित्र चौका के भीतर शुद्ध पात्रों में बनाया हुआ शुद्धता पूर्वक, शरीर-स्वास्थ्य के अनुकूल, स्वाद की आसक्ति से रहित होकर उचित मात्रा में—भोजन ग्रहण करना चाहिये।

खेती, दुकानदारी तथा नौकरी—कोई भी निर्वाहिक-धन्धा हो। न्याय पूर्वक, उचित व्यवहार करके ही धन प्राप्त करना चाहिये। चोरी या मिथ्या-कर्म से नहीं। सेंध लगाकर दूसरे के घर में से धन ले आना, सभी चोरी समझते हैं। परन्तु घूस लेना, व्यापार में सच्चे माल में घटिहा माल मिलाकर बेंचना, तौल-माप में कम देना, अधिक लेना, डाढ़ी-पसंगा मारना, दर्जी-सोनार होकर ग्राहक का कपड़ा सोना-चाँदी आदि काट लेना, किसी के पड़े हुए माल को ले लेना या बिना स्वामी के सहर्ष दिये; उसकी कोई भी वस्तु लेना—सब चोरी है। मिथ्या-कर्म, असत्य भाषण, दम्भ-पाखण्ड-छल आदि करके किसी का धन वंचन करना—इन सभी पापों का त्याग करके न्याय पूर्वक धनोपार्जन तथा निर्वाह करे।

एक सज्जन की निर्लोभता

बम्बई शहर में एक सज्जन रहते थे। प्रातःकाल सड़क से होकर टट्टी जा रहे थे। आगे बढ़ने पर उन्हें एक कागज का बंडल मिला। वे उसको उठा कर घर ले गये। खोलने पर पचीस हजार रुपये के नोट मिले। पहले तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ, कि जीवन भर की दरिद्रता गयी। परन्तु कुछ समय के पश्चात् उनका विवेक बल उन्हें कोचने लगा—"अरे मूर्ख! जिस द्रव्य से तू अपना कुशल मानता है, क्या तेरे पसीने की गारी है? जिसका इतना रुपया खोगया होगा, उसकी अन्तरात्मा कैसी होगी? क्या धन स्थाई है। अभी तुम्हारी मृत्यु आ

जाय, तो ये धन किस काम का ? लोक-परलोक नाशक दूसरे का धन विष से भी विष होता है ।।'

निदान वह सज्जन अपने निश्चित विचार पर आ गया और सौभाग्य से उस रुपये के बण्डल पर रुपये वाले का नाम-पता लिखा था। अतः सज्जन ने जाकर रुपये वाले को रुपये दे दिया। रुपये वाले ने उस सज्जन को पारितोषिक (कुछ रुपये इनाम) देना चाहा। परन्तु उसने नहीं लिया। और यह कहकर चल दिया कि "मैं अपने कर्तव्य एवं मानव-धर्म को बेचने नहीं आया हूँ।" धन्य उसकी निर्लोभता !

शिक्षा—इस प्रकार पड़ा हुआ धन पाकर, पहले उसके स्वामी की खोज कर उसी को देना चाहिये। यदि स्वामी का पता न लगे, तो सरकार के कोष में दे देना चाहिये या कोई सार्वजनिक सेवा, धर्म-कार्य में लगा देना चाहिये।

पर नारी पर पुरुष रत, दुर्विचार यह त्याग।
एकव्रती नर नारि ह्वै, यहि विधि तजि पर राग ।।७५।।

परायी स्त्री या पराये पुरुष में प्रेम करना—इस बुरे विचार का सर्वथा त्याग करे। गृहस्थ नर-नारी को चाहिये कि वे एकव्रती हों। अर्थात् स्त्री केवल अपने पति से ही उचित सम्बन्ध रखे और पुरुष केवल अपनी ही स्त्री से उचित सम्बन्ध रखे। इस प्रकार पराये स्त्री-पुरुष का मोह रूप व्यभिचार का सर्वथा त्याग रखे ।।७५।।

मातृवत् परदारेषु

शिवाजी के ऊपर एक मुसलमान-युवती मोहित हो गयी; और हाव-भाव पूर्वक उनसे जाकर कहने लगी—"आपके समान मैं पुत्र चाहती हूँ।" शिवाजी ने बड़े नम्र शब्दों में कहा—"माँ ! तू मुझे ही अपना पुत्र मान ले।" यह शब्द सुनकर, उसके मन का पाप दूर हो गया और लज्जित होकर चली गयी। शिवाजी के सच्चरित्रता ने उनकी ही नहीं, उस मुसलमान-युवती के भी धर्म की रक्षा की।

शिक्षा—आपत्ति काल में या प्रलोभन-काल में भी मनुष्य को अपने सत्-चरित्र की रक्षा करनी चाहिये। जीवन में यही सार है।

सुत हित इक दो नेम करि, ऋतु समयिक सम्बन्ध।
ह्वै सन्तान अभाव जो, तजि ममता निर्बन्ध ॥७६॥

इतना ही नियम लेकर गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करे कि एक-दो सन्तान हो जाने के पश्चात् अखण्ड ब्रह्मचारी बन जाऊँगा; गृहस्थ-जीवन में स्त्री के ऋतुकाल में ही सम्बन्ध करे, आसक्ति-वश निरन्तर नहीं। यदि सन्तान न होते हों, तो उनकी आशा-वश जीवत पर्यन्त अपने को मलीन विषयी न बनाये रहे; बल्कि नर-नारी परस्पर ममता-त्याग कर, अर्थात् काम की वासना-क्रिया छोड़कर, और अखण्ड बह्मचारी बनकर, बन्धन-रहित हो जायँ ॥७६॥

कितने लोग पुत्र की न प्राप्ति होने से, अपने को भाग्य-हीन मानते है। यह महा अज्ञान है। यदि सन्तान होना ही भाग्यमानता है, तो कुतिया-शूकरी जो ४-६ या १०-१२ बच्चे एक ही बार में देती हैं तथा सर्पिन डेढ़-दो सौ अण्डे एक ही बार में देती है। वह तो फिर सबसे बड़ी भाग्यशालिनी है। बल्कि सबसे अधिक तो 'दीमकरानी' भाग्य-वती है। क्योंकि कहते हैं, वह एक ही दिन में हजारों अण्डे दे देती है।

मनुष्य-जीवन की सफलता तो चिन्तामणि रूप धर्म कमाने तथा मन-इन्द्रियों को जीतकर, स्व-स्वरूप की शान्ति-प्राप्त करने में है सन्तान आदि होने में तो मनुष्य और ममता-माया के अधिक बन्धनों में बंध जाता है। अतः यदि सन्तान नहीं है, तो समझना चाहिये कि हम अधिक भाग्यशाली हैं। हम तन, मन, वचन और धन से अधिक धर्म-भक्ति करके, परमार्थ कमा सकते हैं। धर्म ही जीव का सर्वस्व है। जो हर स्थलों पर साथी है।

ऊपर गृहस्थ के लिये काम का क्रमशः सुधार बताया गया है। विरक्त को तन, मन, वचन से सदैव स्त्री का त्याग रखकर, अखण्ड ब्रह्मचारी होना चाहिये। इसी प्रकार मुमुक्षा नारी पुरुष-प्रसंग से सर्वथा दूर रहे।

हन्ता ममता तेहि नहीं करि निर्मोह विचार।
पन्थी सम निज जानि के, करिये शीघ्र सुधार ॥७७॥

स्त्री-पुत्र-मित्र-गोष्ठी तथा सगा-सम्बन्धी सबका अहंकार तथा ममता त्याग कर मोह के नाश-हित सदा विचार करे। अपने को पन्थी तथा घर को धर्मशाला समझ कर, अपने को शीघ्र सुधारे ॥७७॥

शिक्षा—निर्मोही राजा का दृष्टान्त स्मरण करके मोह का त्याग करे।

अन्न पचन हित नींद ले, आलस निद्रा हान।
देह थकावट दूर जेहिं, माफिक शयन सुजान ॥७८॥

अन्न पचने के लिये, आलस्य-उंघासी मिटाने के लिये तथा शरीर की थकान दूर करने के लिये निद्रा लेना चाहिये। निद्रा को उचित मात्रा में रखने के लिये, बुद्धिमान लोग अनुकूल तथा युक्त भोजन ग्रहण करते हैं ॥७८॥

तन मन सब भय रूप हैं, चेतन अभय स्वरूप।
यहि ते भय निर्मूल करि, शान्त होय निज रूप ॥७९॥

शरीर-मन आदि दृश्य पदार्थ, सब भयपूर्ण है, अपना चैतन्य स्वरूप ही निर्भय रूप है। अतएव सब भय को दूर करके, उक्त स्वरूप में शान्त होना चाहिये ॥७९॥

राग-द्वेष तथा ईर्ष्या-त्याग कर, साधक को साधन करना चाहिये।

बोध हेतु गुरु की शरण, तजि माया जग राग।
करै सदा पुरुषार्थ सत, धन्य सोई बड़ भाग ॥८०॥

संसार की मायिक वस्तुओं का मोह छोड़ कर स्व-स्वरूप बोध की प्राप्ति-अर्थ सद्गुरु की शरण में जिज्ञासु जाता है। बोध प्राप्तकर स्थिति के लिये सद्पुरुषार्थ करता है, वही बड़भागी प्रशंसनीय है ॥८०॥

भक्ति विरति से अन्य नहिं, साधन कोई बरेष्ठ।
ताहि छोड़ि कस लोभ वश, भरमत हो नर श्रेष्ठ ॥८१॥

स्व-स्वरूप के बोधवान् को, शान्ति की प्राप्ति करने के लिये गुरु निष्ठापूर्वक 'वैराग्य' से बड़ा दूसरा कोई साधन नहीं है। हे श्रेष्ठ नर! ऐसे वैराग्य-भक्ति को छोड़कर, विषयों के लोभ-वश, कैसे संसार-प्रपंच में भ्रमते हो? ॥८१॥

ईर्षा मानहिं काहिं से, द्वेष करन क्या हेतु।
पृथक् पृथक् प्रारब्ध जब, लखि परिणाम सचेतु ॥८२॥

जब सबके प्रारब्ध कर्म-फल-भोग भिन्न-भिन्न हैं; तब किसी की ईर्ष्या करने तथा किसी से अपने को बड़ा मानने—मनवाने एवं किसी से बैर करने का क्या प्रयोजन है? अतः ईर्ष्या-अभिमान और बैर करने का फल अपने लिये बुरा समझ कर सावधान हो जाओ ॥८२॥

वैर या क्रोध के चार प्रकार

उत्तम का क्रोध पानी की लीक के समान है, जो तुरन्त समाप्त हो जाता है। अधम का क्रोध बालू की लीक के तुल्य है, जो दो-चार पहर में समाप्त होता है। अधम का क्रोध या बैर लोह पर की लीक के समान है, जो बहुत रगड़ करने पर, जीवन में कभी समाप्त होता है। परन्तु नीच का क्रोध तथा वैर समुद्र की खाई के तुल्य है। जैसे समुद्र की खाई कभी नहीं पटती। तैसे नीच का क्रोध या वैर मरण पर्यन्त नहीं शान्त होता।

वैर-भाव या क्रोध का कभी चित्त में संचार न हो तो यह सबसे उत्तम है। रहा, थोड़ी असावधानीवश विवेकी के चित्त में यदि क्रोध विकार आता भी है, तो पानी की लीक के समान विचार से तुरन्त नष्ट हो जाता है। जिनका साधन कमजोर रहता है, उनका बालू की लीक-तुल्य क्रोध होता है। परन्तु यहाँ तक कुशल है कि वह दो चार पहर में अपनी स्थिति में आ जाता है। परन्तु लोह की लीक वाले तथा समुद्र की खाई के समान क्रोध वाले तो महापतित जीव हैं। मनुष्य को ऐसा कभी न होना चाहिये।

मान्य पूज्यता शिष्य गण, धन दौलत अधिकार।
सब परिवर्तन रूप हैं, हृदया देखु विचार ॥८३॥

बहुत मान्य, कीर्ति, पूज्यता, शिष्यों का समूह, सम्पत्ति-ऐश्वर्य तथा स्वामित्व—मनमें विवेक करके देखो—सभी बदलने-विनशने वाले, क्षण-भंगुर हैं ॥८३॥

साधु गुरू निष्काम पद, तजि व्यवहार सकाम।
तर तारण उपकार यह, स्थिति पारख धाम ॥८४॥

सन्त-गुरु का दर्जा, जगत्-कामना से रहित का है, यदि वे कोई धर्म का व्यवहार भी करते हैं, तो भी कामना त्याग कर, प्रपंच-रहित। ऐसे स्वरूप-शान्ति-शदन के निवासी पुरुष ही, जगत् के उपकार-कर्त्ता, तरण तारण रूप होते हैं ॥८४॥

जीव स्वजाति स्वरूप से, द्वेष न करिये काहि।
राग द्वेष व्यवहार में, समझ बिना हो ताहि ॥८५॥

स्वरूप से जीव मात्र अपनी जाति के (चैतन्य) ही हैं, अतः किसी से वैर न कीजिये। विवेक न होने से व्यवहार में राग-द्वेष होता है; इसलिये व्यवहार में विवेक-विचार रखिये। क्षण-भंगुर व्यवहार के लिये राग द्वेष न कीजिये ॥८५॥

सत्यासत्य विचार जहँ, मति यथार्थ निरवार।
शुद्ध प्रेम परतीत जहँ, तहँ पारख टकसार ॥८६॥

सत्य-असत्य का जहाँ विवेक है, जिनकी बुद्धि यथार्थ की निर्णयवती है। जहाँ परस्पर ममता-द्वेष-रहित शुद्ध प्रेम और विश्वास है, वही परखने-परखाने का सत्संग समझना चाहिये ॥८६॥

वहाँ न ईर्षा द्वेष कछु, नहि पटैती कोय।
जहाँ न स्वारथ पक्ष जेहि, मान टेक नहिं जोय ॥८७॥

विवेकवान् के हृदय में दूसरे की उन्नति देखकर जलन रूप ईर्ष्या तथा दूसरे को हानि पहुंचाने की भावना रूप द्वेष, किंचिन्मात्र भी नहीं रहता, न तो किसी की बराबरी-पट्टीदारी करते हैं। उनको अपने स्वार्थ की आसक्ति नहीं रहती और न तो अपने को बड़ा मानने या

दूसरे-द्वारा मनवाने का अभिमान ही रहता तथा न ही उनमें हठता रहती है ॥८७॥

सब एश्वर्य रु मान तजि, सब अधिकार मुकाम ।
यह सब माया रूप हैं, बन्धन मूल सकाम ॥८८॥

अनेक प्रकार के वैभव, स्वामित्व-ओहदा तथा रहने के स्थान मठ-मन्दिर—इन सब तुच्छ वस्तुओं के अभिमान को विवेकवान् सर्वथा त्याग देते हैं। क्योंकि ये सब बनावटी रूप क्षण-भंगुर हैं, बन्धन की जड़ हैं तथा कामना-बर्द्धक हैं ॥८८॥

तेहि से विलग विराग है, सद्गुरु भक्ति विवेक ।
हर्ष सहित अपनाइये, बीजक पारख टेक ॥८९॥

उपर्युक्त मायाबी वस्तुओं से पृथक् वैराग्य-दशा, सद्गुरु की भक्ति तथा विवेक की दृष्टि है। अतएव हर्ष और दृढ़ता पूर्वक बीजक-वर्णित पारख-पदको ही ग्रहण कीजिये ॥८९॥

सद्गुरु का आदेश है—

जो तू चाहे मुझको, छाड़ सकल की आश।
मुझ हो ऐसा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ॥ (बीजक)

सोई सन्त महन्त हैं, जहाँ न माया पक्ष ।
काल फाँस ते रहित जो, निज स्वरूप जेहि लक्ष ॥९०॥

वे ही सन्त तथा महन्त हैं, जिन्हें मान्य-पूज्यता, अधिकार, शिष्य-समाज, धन, जमीन, मठ-मन्दिर रूप माया की आसक्ति तथा पक्षपात नहीं है, जो मन-काल के बन्धन से रहित हैं एवं जिनकी स्वस्वरूप में ही निरन्तर रति है ॥९०॥

अति विरोध जग भेष में, जहाँ न लक्षण साधु ।
मात्र भेष अभिमान लै, रहित विवेक सो बाधु ॥९१॥

संसार में राग-द्वेष का झगड़ा तो लगा ही है, परन्तु जहाँ साधुता के लक्षण नहीं हैं; वहाँ साधु-वेषधारी में राग-द्वेष का कम झगड़ा नहीं

है। बल्कि अधिक ही है। जो विवेक-रहित है, केवल साधु-वेष का अभिमान ही धारण करता है, वह तो अपने और दूसरे के भी कल्याण-मार्ग का बाधक है ॥९१॥

तातें तेहि को त्याग कर, शब्द विवेक न जाहि।
केवल भेष से काज नहिं, बिन पारख दिल माँहि ॥९२॥

अतः शब्दों का विवेक करके जो निर्णय-शब्द नहीं ग्रहण करता, आचरण दूषित रखता है; उसकी संगत त्यागना ही अनिवार्य है। क्योंकि हृदय में बिना स्वरूप का विवेक हुए, केवल साधु का वेष धर लेने से न वह अपना कल्याण कर सकता है न दूसरे का ही कर सकता है ॥९२॥

निर्णय परख विवेक जेहि, सोई पारखी देव।
बार-बार तेहि बन्दगी, जन्म मरण दुख छेव ॥९३॥

जिनके हृदय में स्व-स्वरूप ज्ञान का निर्णय तथा विवेक है, वे पारखी सन्त ही श्रेष्ठ देव हैं। जन्म-मरण-बन्धन को नाश करने वाले ऐसे सन्त की बारम्बार त्रयबार साहेब बन्दगी है ॥९३॥

गुरुवर न्याय सुनीति यह, बन्दीछोर कबीर।
तेहि अनुयायी सन्त सब, गहि कर लागहुँ तीर, ॥९४॥

इस पारख सिद्धान्त तथा सदाचरण के प्रदाता बन्धन छुड़ाने वाले श्रेष्ठ सद्गुरु श्री कबीर साहेब ! तथा आप के अनुयायी (अनुगामी) सब सन्तों की शरण-ग्रहण कर, संसार बन्धन से पार पा जाऊंगा ॥९४॥

परख विलासी सन्त सब, पारख पद विश्रान्ति।
साहिब सोइ सिरमौर सभ, शोभित ह्वै निर्भ्रान्ति ॥९५॥

पारख में रमण करने वाले तथा स्व-स्वरूप में शान्त सभी सन्त श्री कबीर साहेब के समान शिरमुकुट, भ्रान्ति-रहित शोभायमान हैं ॥ ९५ ॥

सर्वोपरि गुरुदेव के, दर्श पर्श अरु ध्यान।
तीन बार नित बन्दगी, जब तक घट में प्रान ॥९६॥

जब तक शरीर में प्राण है, तब तक सर्वश्रेष्ठ विवेकी-पारखी सद्‍गुरु के दर्शन, चरण-स्पर्श तथा उनके रहस्यों का ध्यान और तीनताप-नाशक त्रयबार बन्दगी करना चाहिये ॥९६॥

गुरु मंगल मंगल करन, सहज बोध दातार।
जिज्ञासू जन ग्रहण करि, मुक्त होत निरधार ॥९७॥

कल्याणरूप सद्‍गुरु जीवों के कल्याण करने वाले, तथा निःस्वार्थ स्वरूप-बोध देने वाले हैं। उक्त बोध को जिज्ञासुजन ग्रहण करके, असंद मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥९७॥

जिज्ञासुन निष्ठा सही, दुख छूटन जेहि भाव।
बोध भक्ति जीवन सफल, जेहि ते शुद्ध स्वभाव ॥९८॥

सद्‍गुरु-सन्तों तथा स्वरूप-बोध-सदाचरणों में उन्हीं जिज्ञासुओं को, वास्तविक प्रेम होता है, जिन्हें जरामरण के दुःखों से छूटने की इच्छा है। जिससे अपने अन्तःकरण की शुद्धि तथा जीवन की सार्थकता होती है, वह स्वरूप का बोध तथा सद्‍गुरु-सन्तों की भक्ति है ॥ ९८ ॥

उचिताउचित विचार के, चलै न्याय अनुसार।
पश्चाताप न होवही, निर्भय सुख संचार ॥९९॥

उचित-अनुचित का विवेक करके, सत्यन्याय के अनुसार चले। ऐसे पुरुष को, कार्य के पीछे पश्चाताप नहीं करना पड़ता, उनके हृदय में निर्भय सुख का अनुभव होता है ॥९९॥

जहाँगीर का न्याय

दिल्ली के मुगलबादशाह जहाँगीर की बेगम नूरजहाँ एक दिन खुले छत पर सखियों के साथ टहल रही थीं। इतने में यमुना की ओर पक्षी उड़ते देखा। तुरन्त बन्दूक उठाकर नूरजहाँ बेगम ने निशाना लगाया। पक्षी तो एक भी न मरा। परन्तु एक धोबी कपड़ा समेट रहा था उसको गोली लग गयी, और वह मर गया।

धोबिन रोती-कल्पती जहाँगीर के दरबार में आयी, और न्याय की जंजीर खींची। बादशाह ने उसे दूसरे दिन आने को कहा। दूसरे

दिन निश्चित समय पर धोबिन आयी। न्याय देखने के लिये जनता की भी भीड़ इकट्ठी हो गयी। बादशाह गद्दी पर बैठा, नूरजहाँ भी चिक के आड़ में बैठीं।

धोबिन से जहाँगीर ने पूछा—"क्या बात है?" धोबिन ने कहा—"जहाँपनाह! कल मेरा पति यमुना नदी पर कपड़े समेट रहा था। आपकी बेगम ने बन्दूक से उसे मार दिया। इसका मैं न्याय चाहती हूँ।" चिक की ओर मुख करके बादशाह ने पूछा—"क्या यह बात सही है?" बेगम ने कहा—"जहाँपनाह! सही है। परन्तु मैं पक्षी मार रही थी, भूल से धोबी को गोली लग गयी।" जहाँगीर ने कहा—"राजा हो या प्रजा, न्याय सबके लिये है।" अतः धोबिन के हाथ में तलवार देकर बादशाह ने कहा—"तुझे कल बेगम ने बिधवा किया है, और तू आज मुझे मार कर बेगम को विधवा कर दे। यही सच्चा न्याय है।" ऐसा कहकर धोबिन के आगे अपना शिर झुका दिया।

इस न्याय से सब स्तम्भित हो गये। बेचारी धोबिन बादशाह के चरणों में गिर पड़ी। जब धोबिन ने तलवार फेंक दी। तब बादशाह ने उसकी अच्छी पेंसन बांधकर विदा किया।

शिक्षा—अनुचित का त्याग करके उचित का ग्रहण तथा सदा निष्पक्ष न्याय-प्रिय ही, निर्भय-सुख से पूर्ण रहता है, ऐसे ही हमें बनना चाहिये।

बोध विरति सद्रहस्य दे, दुख को कीनो छेव।
ऋणी दास तेहि को सदा, जय जय जय गुरुदेव ॥१००॥

स्वरूप का ज्ञान, जगत्-पंच विषयों से वैराग्य और बर्ताव में सदाचरण तथा मनमें सद्भावना देकर, जीवके समस्त दुःखों को नष्ट कर दिये। ऐसे सद्गुरु का, यह दास सदैव ऋणी है। हे सद्गुरु देव! आपकी कोटिशः धन्यता है ॥१००॥

बोधसार सटीक तृतीय खण्ड समाप्त।

प्रकरण फल

अपने हित का करलो विचार ।

जब तक जीवन की शेष आयु ।
चलता पिंजर में प्राणवायु ॥
हैं स्वस्थ सभी इन्द्री के गण ।
जब तक आजावे नहीं मरण ॥

तब तक करलो अपना उधार ॥ अपने०॥१॥

जीवन क्षण-क्षण होता व्यतीत ।
वर्तमान शीघ्र होता अतीत ॥
प्रतिभास मात्र तन धन यौवन ।
सीकर तुषार ज्यों चंचल घन ॥

अज्ञात निधन दिन तन असार ॥ अपने०॥२॥

आशा के तेरे भव्य भवन ।
इक दिन निश्चित हो जायँ दहन ॥
कल्याण कार्य का दिव्य काल ।
वर्तमान समय तेरो विशाल ॥

तज मोह सन्त का ले अधार ॥अपने०॥३॥
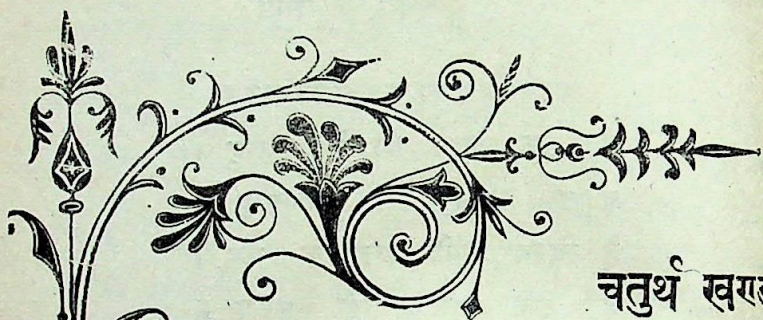
चतुर्थ खण्ड

मानवता का यह दिव्य रूप ।

चोरी हिंसा व्यभिचार त्याग ।
गाली निन्दा मिथ्या से भाग ।।
मद ईर्षा क्रोध मान छल से ।
ले मुक्ति पाशविकता बल से ।।
सब दोष तजे लखि अन्ध-कूप ।।मानवता०।।१।।

मन कर्म वचन आचरण स्वच्छ ।
मैत्री करुणा मुदिता उपक्ष ।।
समता सुहृदता परुपकार ।
सब भांति शील सम्यक् अचार ।
वसुधैव कुटुम का भाव-नूप ।।मानवता ।।२।।

सब देश जाति पथ के प्रानी ।
मानव-खग-मृग-कृमि जिय जानी ।।
भरसक न काहु को दुःख देन ।
बन सके तो आँसू पोछ लेन ।।
सम्यक् अहिंसकी का स्वरूप ।।मानवता०।।३।।

सद्गुरवे नमः

बोधसार-सटीक

चतुर्थ खण्ड

वन्दना–साखी

बन्दीछोर कबीर गुरु, साहेब स्वतः विराज।
दुखित देखि द्रवित भयो, कियो जीव को काज ॥१॥

स्व-स्वरूप में प्रतिष्ठित, बन्धन को छुड़ाने वाले, पूज्य सद्गुरु श्री कबीर साहेब, जीवों के अज्ञान-सम्भव दुःखों को देखकर करुणार्द्र हो उनके कल्याण के लिये ज्ञानोपदेश किये ॥१॥

स्वयं शोध निज बोध दै, भ्रम तम दीन्हों काटि।
जड़ चेतन की ग्रन्थि को, निर्णय करके छाँटि ॥२॥

अपने शोधन के बल से पारख स्वरूप का बोध देकर, जिज्ञासु-जीवों के भ्रम रूप अन्धकार को काट दिये। और यथार्थ निर्णय करके जड़-चेतन की ग्रन्थि (आसक्ति) को विदीर्ण कर दिये ॥२॥

तेहि ते वन्दौं पद कमल, सदा हिये धरि ध्यान।
देहि शक्ति गुरु भक्ति निज, जब तक तन में प्रान ॥३॥

इसलिये सदैव अन्तःकरण में ध्यान धारण करके, आपके चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ। हे सद्गुरु ! प्रबल वैराग्य की शक्ति तथा अपने चरणों का प्रेम, जीवन पर्यन्त के लिये दे दीजिये ॥३॥

सर्व हितैषी ज्ञान तव, कहा चहौं कछु भेव।
श्रवण मनन अभ्यास करि, जेहि से भव दुख छेव ॥४॥

आप का ज्ञान सबका हित करने वाला है, उसी का रहस्य (आपही की कृपा से) मैं भी कुछ कहना चाहता हूँ। जिससे आपकी ज्ञान-भरी निर्णय वाणियों का श्रवण-मनन तथा तद्नुसार अभ्यास करके, जन्मादिक दुःखों का नाश हो ॥४॥

जड़-चेतन-विचार

चौपाई

पारख ज्ञान प्रकाश कियो विधि। नमों नमों गुरुदेव स्वयं सिधि॥
जल थल वायू पावक कारण। जड़ता रूप सदा सो धारण ॥१

विधि पूर्वक पारखज्ञान प्रकाश करने वाले, स्वयं सिद्ध सद्गुरुदेव को बारम्बार नमस्कार है। पानी, मिट्टी, हवा और आग—ये चार तत्त्व जगत् के मूल कारण रूप हैं। ये जड़ स्वभाव से ही सदा स्थित हैं॥

शून्य रहित चारों निरधारा। एक से एक विलक्षण न्यारा॥
चेतन सबको जाननहारा। ज्ञान स्वरूप दोऊ निरधारा ॥२॥

शून्य (आकाश) से रहित उपर्युक्त चारों तत्व अपने-अपने स्वरूप से निराधार-उत्पत्ति-रहित हैं। एक तत्त्व से दूसरे तत्त्व सर्वथा विलक्षण हैं। अतः चारों से चारों भिन्न उत्पत्ति-नाश-रहित हैं। इन जड़-तत्वों से पृथक् अगणित चैतन्य जीव हैं। वे सब जड़ तत्व को जानने वाले और नाम-संज्ञा ठहराने वाले हैं। ज्ञान स्वरूप सब जीव भी अपने स्वरूप से निराधार-असंग, अविनाशी हैं ॥२॥

जड़ से भिन्न विलक्षण जानो। कर्ता कारण रहित पिछानो॥
जड़ चेतन सम्बन्ध अनादी। भूल विवश जिव स्वयं प्रवादी ॥३

उन सब जीवों को चार जड़ तत्वों से सर्वथा पृथक् एवं विलक्षण समझो। ये जड़ और चेतन का न अन्य कर्ता (बनाने वाला) है और न अन्य कारण है, ऐसा परीक्षा करके देखो। जड़-चेतन का सम्बन्ध

अनादि का है। सद्गुरु ने परखाया है कि जीव स्वतः स्वरूप की भूल-वश जड़ में फंसा है ॥३॥

बीज वृक्ष दिन रात हैं जैसे। कर्म देह नारी नर तैसे॥
वह जड़ यह चेतन है संगा। जड़ प्रमाण योग्य यक अंगा॥४

जैसे बीज-वृक्ष दिन-रात प्रवाह रूप अनादि हैं, इसमें कोई पहले पीछे कहते नहीं बनता। इसी प्रकार कर्म और देह तथा स्त्री-पुरुष-घट का प्रवाह अनादि समझो। बीज-वृक्ष दोनों जड़ हैं और यहां कर्मदेह के साथ चेतन जीव है अतएव बीज-वृक्ष जड़ का प्रमाण यहां केवल अंग में लिया गया है ॥४॥

बिना बीज के वृक्ष नहीं, बिना वृक्ष के बीज नहीं। इसी प्रकार बिना कर्म के देह नहीं तथा बिना देह के कर्म नहीं। अतएव जगत्-प्रवाह रूप अनादि है। इसकी उत्पत्ति प्रलय कभी नहीं।

है प्रवाह सम्बन्ध विजाती। एक नित्य यक अनित्य दिखाती॥
तेहि पारख से परखो भाई। भिन्न-भिन्न सब देत दिखाई॥५

चार तत्त्व जड़ और अखण्डित चैतन्य जीव—ये दोनों की जाति सर्वथा भिन्न है; अर्थात् एक जड़ है, दूसरा चैतन्य। परन्तु इनका सम्बन्ध प्रवाह रूप अनादि है। चैतन्य जीव तो नित्य अविनाशी है ही। परन्तु चार जड़ तत्त्व भी नित्य वस्तु हैं। केवल जो उनके कार्य-पदार्थ हैं, वे ही अनित्य नाशवान् हैं। हे भाई! तिसे विवेक से देखो। पृथक्-पृथक् सब दिख रहे हैं ॥५॥

मानुष-पशु अण्डज त्रय खानी। उष्मज चौथी खानि बखानी॥
कर्म क्षेत्र नरतन परधाना। पाप पुण्य दोउ कर्म विधाना॥६

मनुष्य, पशु, अण्डज—ये तीन खानि योनिज हैं, और माता-पिता रहित चौथी उष्मज खानि अयोनिज, विवेकी वर्णन करते हैं। मनुष्य-शरीर कर्म-भूमिका होने से सब खानियों में श्रेष्ठ है। शुभ-अशुभ दो कर्म हैं, अशुभ कर्मों को त्यागने तथा शुभ-कर्मों को करने की व्यवस्था है ॥ ६ ॥

इच्छा जस तस कर्म कराई । सुख दुख तैसे होत हैं भाई ॥
सत रजतम गुण तीन प्रकारा । जस स्वभाव तस खानी धारा ॥७

इच्छा के अनुसार जीव शुभाशुभ कर्म करता है, उसी प्रकार उसे सुख-दुःख मिलते हैं। सत, रज और तम तीन भांति के स्वभाव वाले जीव होते हैं; जैसे जिनका स्वभाव होता है, तैसे खानि को वे प्राप्त होते हैं ॥७॥

श्रीकृष्ण जी कहते हैं—

श्लोकः—उर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्य गुण वृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥
(गीता १४।१८)

अर्थः—'सत्त्व गुण में स्थिति पुरुष श्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं; रजोगुण में स्थिति पुरुष सामान्य गति को तथा तमो-गुण में स्थित पुरुष नीच गति को प्राप्त होते हैं।'

आपुहिं कर्ता जीव विचारा । आपुहिं भोगत कर्म असारा ।
आपुहिं त्यागत आपुहिं गहता । आपुहि बद्ध आप है मुक्ता ॥८॥

विचार करके देखिये, जीव स्वतः ही अपने कर्मों का स्वतन्त्रता पूर्वक कर्ता है; और स्वतः ही सार-हीन कर्म-फल-भोगों को भोगता है। दुःख जानकर स्वतः ही कर्मों का त्याग करता तथा सुख जानकर स्वतः ही ग्रहण करता है। विषयासक्ति-वश स्वतः जीव बन्धमान है, और विषय त्यागकर स्वतः ही मुक्त है ॥८॥

अन्य शास्त्रों ने भी कहा है—

श्लोकः—स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयंतत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते॥

अर्थः—'आत्मा स्वतः कर्मों का कर्ता और स्वतः ही उसके फलों का भोक्ता है। अज्ञान-वश स्वतः संसार में भ्रमता है, अज्ञान-त्यागकर, स्वतः संसार से मुक्त हो जाता हैं।'

गोस्वामी जी कहते हैं—

"ना काहुइ कोइ सुख दुख दाता। निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता॥"

अतएव दूसरे की आशा त्याग कर अपने कर्मों को सुधारो ।

निर्मल जीव अखण्ड अनाशी । भानु समान सदा परकाशी ।।
विषय मोह तम मेह है ढाके । बिन वैराग्य प्रकाश न ताके ।।६

जीव स्वच्छ-अखण्ड तथा अविनाशी है, सूर्यवत् स्वतः सदैव ज्ञान प्रकाशक है, परन्तु विषयासक्ति रूपी बादल जीव को तमाच्छादित किये हैं, बिना वैराग्य-प्रभंजन चले, अन्धकारकारक विषयासक्ति-बादल का नाश नहीं होता, और न ज्ञान का प्रकाश होता है ।।६।।

साखी

जड़हन्ता ममता तजै, शुद्ध स्वरूपहिं आप ।
जड़ तम घन नाशै तभी, चेतन चेतन आप ।।१।।

अपने को शुद्ध चैतन्य स्वरूप समझकर, जड़-शरीरादि की अहन्ता-ममता त्याग करे । जड़ासक्ति रूपी बादल का तभी नाश हो करके, ज्ञान स्वरूप केवल चेतन-ही-चेतन अपने आप रह जायगा ।।१।।

ज्ञान मात्र जिव से पृथक्, जड़ धर्मादि विचार ।
सो विवरण नीचे लखो, भिन्न-भिन्न निरुवार ।।२।।

जीव केवल ज्ञान स्वरूप है, इससे पृथक् धर्म-गुणादि-सहित जड़ तत्त्व हैं । तिसका विवेचन नीचे चौपाइयों तथा साखियों में देखो, पृथक्-पृथक् निर्णय किया गया है ।।२।।

धर्म कठिन गुण गन्ध रहाई, क्रिया सहित पृथ्वी है भाई ।।
गुरुत्वा धारण शक्ति सो जानो । तत्त्व मेल आकार पिछानो ।।१

हे भाई ! पृथ्वी का धर्म कठोर है, गुण (विषय) गन्ध है, पृथ्वी के परमाणुओं में क्रिया है; इसी से कंकड़-पत्थर, बीज-वृक्ष उससे बनते रहते हैं । साइंस के मत से पश्चिम से पूर्व-ओर घूमने की क्रिया है । गुरुत्वा और धारणा दो शक्तियाँ हैं; अन्य तत्त्व जल, अग्नि, वायु से मेल है और आकार स्थूल है ।।१।।

जल में शीतल धर्म जनाई । रस गुण क्रिया अधोमुख जाई ।।
शक्ति रसायन स्थूल अकारा । अन्य तत्त्व संयोगहिं धारा ।।२।।

जल में शीतल धर्म जानने में आता है, गुण रस, क्रिया अधोमुख जाना है। शक्ति रसायना, आकार स्थूल है; और अन्य तीन तत्त्वों से संयोग धारण करता है ॥२॥

अग्निधर्म प्रकाश उष्णता। रंग विचित्र रूप गुण रहता ॥
क्रिया उर्ध वो दाहक शक्ती। सूक्ष्म अकार तत्त्व में बरती ॥३॥

अग्नि का धर्म प्रकाशयुक्त गर्म है, अनेक रंग युक्त चित्र-विचित्र रूप ही इसका गुण है। क्रिया उर्ध मुख जाना, और शक्ति जलाने की, आकार में सूक्ष्म एवं अन्य तत्त्वों से सम्बन्ध है ॥३॥

वायु धर्म कोमल अति गाई। गुण स्पर्श शब्द प्रगटाई ॥
शक्ति सनेह वो वस्तु खिंचाई। तिरछी गमन से क्रिया रहाई ॥४॥

वायु का धर्म अत्यन्त कोमल कहा जाता है, गुण स्पर्श और शब्द* प्रकट होते हैं। शक्ति स्नेह है, इसी से वस्तुओं में खिचाव उत्पन्न होता है, तिरछी गमन क्रिया है, (सूक्ष्म आकार तथा अन्य तत्वों से मेल है) ॥ ४ ॥

साखी

क्रिया धर्म गुण शक्ति युत, अरुअकार संयोग।
यह षट भेदहिं तत्त्व में, स्वयं अनादी योग ॥३॥

धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति, मेल और आकार—ये छः भेद हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु—इन चार तत्त्वों में ये स्वतः अनादि सिद्ध हैं ॥३॥

इन जड़ तत्त्वों से परे, स्वतः विलक्षण जीव।
ज्ञाता ध्याता आपही, गुरू ज्ञान लहि शीव ॥४॥

इन चार जड़ तत्वों से पृथक एवं विलण जीव, अपने आप है।

---

* 'शब्द स्पर्शौ च विज्ञेयौ वायुरुच्यते।

(महाभारत-अनुगीता)

अर्थ—शब्द स्पर्श वायु के दो गुण जानने योग्य कहे जाते हैं।

सबका ज्ञान-ध्यान करने वाला स्वयं जीव ही है, सद्गुरु से ऐसा ज्ञान प्राप्त करके कल्याण स्वरूप रह जाता है ॥४॥

केवल भूल हेतु भरमाना । और न कोई भेद बखाना ।
जीव अनेक स्वरूप से भिन्ना । निजनिज कर्म भोग से खिन्ना ॥१

केवल अपने स्वरूप-ज्ञान से रहित होने के कारण ही जीव जन्म-मृत्यु के चक्कर में घूमते हैं। जीव में अन्य कोई भेद नहीं है। चैतन्य जीव अगणित हे, सबका स्वरूप पृथक-पृथक है। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे सब जीव अपने-अपने कर्म-भोगों के वश होकर पृथक्-पृथक् दुखी हैं ॥१॥

जबही ज्ञान स्वरूप का होवे । कर्म बीज तबही सब खोवै ।
रवि के उदय नाश तम जैसे । बोध ज्ञान से मुक्ति लहैसे ॥२

जीव को गुरु-द्वारा, जब स्व-स्वरूप का यथार्थ बोध और तदनुसार आचरण हो जाता हैं; तभी उसके सब कर्म-बीज नष्ट हो जाते हैं। सूर्य के उदय होते ही, जैसे अन्धकार नष्ट हो जाता है; इसी प्रकार स्वरूपबोध से, जीव को मोक्ष प्राप्त होता है ॥२॥

यह प्रमाण प्रत्यक्षहि जानो । ज्ञान भानु में तम नहि मानो ।
तत्त्व भेद से रवि जस छिपिया । सुख इच्छा से जिव तस ढकिया

यह तो प्रत्यक्ष ही प्रमाण-द्वारा समझो कि सूर्य में जैसे अन्धकार नहीं होता, तैसे स्व-स्वरूप-बोध में विषयाशक्ति नहीं होती। बादल के आवरण से सूर्य जैसे छिप जाता है, विषय-सुखों की इच्छा से, तैसे ही जीव आच्छादित हो जाता है ॥३॥

रविघन रहित नित्य परकाशा । मोहबिना तम जीव निराशा ॥३

बादल-रहित सूर्य जैसे सदैव प्रकाशता है, विषयों के राग से रहित होने पर, तैसे जीव संसार से निराश, ज्ञान से आलोकित रहता है ॥३१॥

मानवता-लक्षण

दया क्षमा सत धीर विचारा । विरति विवेक भक्ति गुण सारा ॥
निर्दय त्यागि दया को धारे । निज सम जानि जीव हितकारे ॥

दया, क्षमा, सत्य, धैर्य, बिचार, विवेक, वैराग्य तथा साधु-गुरु की भक्ति—ये सम्पूर्ण हंसरहनी धारण करने योग्य हैं। (मूल रूप मानवता के लक्षण-अष्ठ महासद्‌गुणों के नाम बताये गये, अब एक-एक करके व्याख्या पूर्वक बतलाते हैं—) प्रथम निर्दयता को त्याग करके दया को धारण करे, सब जीवों को अपने समान जानकर, यथाशक्ति सबका हित करे ॥१॥

दाल गल जाती, यदि पानी अच्छा होता।

एक भूखा फकीर, एक धनी के आगे हाथ फैला कर कहा—"बाबा! दया हो जाय, कुछ दे-दें मैं बहुत भूखा हूँ।" उस धनी ने व्यंग शब्दों में कहा—"चलो, तुम्हारी यहाँ दाल नहीं गल सकती।" फकीर ने कहा—"श्री मान्! दाल अवश्य गल जाती, परन्तु जब पानी अच्छा होता।" हंसता हुआ फकीर चल दिया। श्रीमान् जी लज्जित हो गये।

शिक्षा—शक्ति चले तक किसी जीव का घात न करे, पेशेवर, भिखमंगों से तो सावधान रहे। परन्तु असहाय-भूखों को यथाशक्ति कुछ दे।

दोहा—जो तू आया जगत में, तो ऐसा करि लेय।
करु साहेब की बन्दगी, भूखे को कछु देय ॥ पं०

सहनशील बनि तजै कठोरा। क्रोध बिवश नहिं होवै बौरा।
देह भोग सब नेह असारा। सत्य स्वरूप जीव निरधारा ॥२

सहनशील बनकर कठोर आचरण तथा वचन का त्याग करे, क्रोध के वश में होकर पागल न बने, इस प्रकार दूसरा गुण क्षमा को धारण करे। शरीर तथा शरीर के भोग-विलास और संसार के सब प्रेम निस्सार हैं, और जीव का स्वरूप सत्य तथा निःसंग है ॥२॥

सहनशील तथा क्षमाशील कैसा होना चाहिये? इसके विषय में नीचे का दृष्टान्त मनन करना चाहिये।

बहू की सज्जनता।

एक ग्राम में एक ब्राह्मण दो प्राणी रहते थे। उनके एक होनहार

पुत्र था। पुत्र एम० ए० पास हुआ। उसके विवाह के लिये कितने ही ब्राह्मण आने लगे और दहेज का लालच दिखलाने लगे। परन्तु पण्डित जी को दहेज की भूख नहीं थी और इस पापमय दहेज-प्रथा से उनका विचार भी विरुद्ध था। परन्तु उनकी पत्नी पण्डितानी दहेज की बड़ी भूखी थी और वे सोच रखी थीं कि हमारे पढ़े-लिखे पुत्र के विवाह में काफी धन मिलेगा।

निदान एक अच्छे घराने की रूप-शील गुणवती ब्राह्मण-कन्या से पण्डितजी ने अपने पुत्र का विवाह कर लिया। लड़कीवाले से पण्डित जी ने दहेज माँगा और न उन्हें संकोच में डाला तथा न विवाह में बाहरी आडम्बर ही किया। अर्थात् नाच-सिनेमा, खेल-तमाशे, आतिश-बाजी तथा बहुत भीड़-भाड़ का आडम्बर त्यागकर सादगी पूर्वक थोड़े खर्चे में लड़के-लड़की का विवाह कर लिया।

पुत्र के विवाह में दहेज न मिलने से पण्डितानी को बड़ा दुःख हुआ। बहू के आने पर—यद्यपि वह शीलवती थी—तथापि पण्डितानी उनसे तनकर रहने लगी। कुछ दिनों के पश्चात् तो पण्डितानी बहू पर गालियों की बौछार करने लगी। बहू के नैहर वाले माता-पिता को भी कटी-जली सुनाकर उसको कष्ट देने का प्रयत्न किया करती। परन्तु बहू समझदार एवं सुशीला थी। सासु की सब गाली-गलौज सुनकर सह लेती और कोई उत्तर न देकर, सेवा करती रहती। पण्डित जी कई बार पण्डितानी को समझाये; परन्तु उनका स्वभाव सुधरने की अपेक्षा बिगड़ता ही गया। इनकी कलह से पण्डित जी को और पुत्र को बड़ी चिन्ता रहती।

एक दिन मारे क्रोध के पण्डितानी ने जलती हुई लकड़ी बहू के पैर पर पटक दिया। बहू एक बार चीख मार कर चुप हो रही। लड़के का विचार हुआ कि माता से अलग हो जायं। ऐसा सोचकर लड़का माता को कुछ कड़ी बात कहने वाला ही था कि इतने में बहू ने उसका हाथ पकड़ कर एकान्त में ले गयी और लगी समझाने—"कामना में भंग पड़ने से मनुष्य को क्रोध होता है। माता जी को

आपके विवाह में दहेज की बड़ी कामना थी, सो न मिलने पर क्रो[ध] उठाना उनका स्वाभाविक है। माता ने अपने हृदय का रस पिला[कर] आप को पाला-पोषा है। अतः आप उनके जीवन भर के ऋणी हैं। [मैं] आपके चरणों में अर्पित हूँ। आप उनके चरणों में अर्पित हैं। अतः हो[म] और आप को चाहिये कि उन वृद्ध दम्पति की जीवन पर्यन्त सेवा करें। पागल अपने मन की बात करता है। आप की माता कामना के वश होकर पागल हो गयी है। उनकी दुर्बलता देखकर हम लोगों को भी दुर्बल नहीं बनना है, इत्यादि।"

एक दिन सास पुनः क्रोध में आकर जलती हुई लकड़ी लेकर वधू के ऊपर दौड़ी। इतने में स्वयं फिसल कर गिर पड़ी तथा लकड़ी की आग उसकी साड़ी में लग गयी और वह जलने लगी। बहू दौड़ कर उसकी आग को बुझाई, आग बुझाते समय बहू के कई जगह आग की दाग लग गयी। परन्तु वह धैर्य पूर्वक सास को बचाई। सास अच्छी तरह जल गयी थी। बहू उसको अपनी गोद में सुला ली। वह गोद में पड़े-पड़े बहू को गाली दे रही थी कि "तेरे कारण ही मैं गिरी और जली" इत्यादि। पुत्र और पुत्रवधू दोनों मिलकर उसकी बड़ी सेवा की। बधू घर का भी काम सम्हालती और सास की देख-रेख तथा सेवा में रात-दिन उसके पास डटी रहती। हाथ पर थूक लेकर फेकना, मल मूत्र धोना-फेकना, घाव धोना, दवा लगाना, पट्टी करना, कपड़ा बदल कर धोना, मुख में ग्रास देकर खिलाना—आदि सारी सेवा का कार्य तत्परता पूर्वक सहर्ष वधू करती रही।

छः महीने के पश्चात् सास खाट से उठ सकी ओर अब वह अच्छी हो गयी। शरीर के अच्छे होने के साथ-साथ सास का मन भी अच्छा हो गया। बहू की सहनशीलता, सेवा, क्षमा, त्याग, तपस्या के प्रभाव से सास के हृदय में पश्चाताप की अग्नि सुलग उठी और वह शीलवती बहू (पतोह) को हृदय से लगा कर फूट-फूट कर रो पड़ी। और बहू के प्रभाव से सास भी देवी-स्वभाव की हो गयी। अतएव इसी प्रकार हम लोगों को भी सहनशील होना अति आवश्यक है।

असतवाद सब त्यागि के भाई । सत्य स्वरूप रहो लवलाई ॥
हानि देखि घबड़ाय न कबहीं । तजि अधीर धीरज को लहही॥३॥

हे भाई ! असत्य-भाषण, असत्य-आचरण सब प्रकार से त्याग कर; सत्य स्व-स्वरूप में रमण करो, इस प्रकार तीसरा गुण सत्य धारण करो। नाशवान् वस्तुओं की हानि देखकर, कभी मत घबराओ, अधैर्य त्याग कर, अटल धैर्य को धारण करो ॥३॥

शूर वीर सम हटै न रण से । काम अनीक दलन अरि मन से ॥
जगत असार जीव है सारा । स्वप्न भोग दुख बहु संसारा ॥४

शूर-वीर के समान मनसे लड़ने में, युद्ध-स्थल रूप साधन-क्षेत्र से न हटे। काम की सेना तथा मन-शत्रु को दल-मल डाले, इस प्रकार चौथा गुण धैर्य धारण करे। जगत् पंच विषय सार-हीन है, अपना चैतन्य स्वरूप ही सार है। संसार के समस्त भोग स्वप्नवत् तथा दुःख पूर्ण हैं ॥४॥

सद्गुरु वैद्य रोग करि नाशा । औषध ताहि विचार प्रकाशा ॥
जड़ से भिन्न जीव अविनाशी । दृश्य प्रपंच जग देह विनाशी ॥५

सद्गुरु रूप वैद्य, विचार रूप औषध का शिष्य के हृदय में प्रकाश करके, उसके मानसिक रोगों का नाश करते हैं। अतः विचार रूप यह पाँचवाँ गुण धारण करे। जीव, जड़ से पृथक् और अविनाशी है; संसार दृश्य-प्रपंच शरीरादि सब नाशवान् परिवर्तनशील हैं ॥५॥

अस विवेक मनमें जब खासा । जड़ तम नाशि सुज्ञान प्रकाशा ॥
तब वैराग्य सहज में आवै । अखिल राग तजि आश नशावै ॥६

उपर्युक्त प्रकार का विवेश, जब मनमें मुख्य रूप से आ जाता है, तब जड़ आसक्ति का नाश होकर, दिव्य ज्ञान का प्रकाश होता है, अतः छठाँ गुण विवेक धारण करे, विवेक के धारण करने से वैराग्य सहज में आ जाता है और सब का अभाव रूप वैराग्य जब आया, तब सम्पूर्ण राग का नाश होकर, संसार-शरीर की आशा से जीव मक्त हो गया।

संसार के भोग स्वप्नवत् निरसार, क्षणभंगुर तथा दुख:पूर्ण हैं—विवेक से या ठोकर से—जब ऐसा निश्चय हो जाता है, तभी वैराग्य उत्पन्न होता है।

विषयी जीवन की असारता

एक राज्य में, राज्य-पुरोहित का शत्रुक नामक लड़का चोर निकला तथा उसमें अन्य भी दुष्टतायें थीं। वह थोड़े ही दिनों में नगर के अनेक धनवानों का धन चुरा लिया। प्रजा का कष्ट देखकर राजा ने कोतवाल को आज्ञा दिया कि "शत्रुक को शीघ्र पकड़ लो।" कुछ दिन के प्रयत्न से एक दिन कोतवाल द्वारा शत्रुक पकड़ा गया। राजा के जाँच करने पर शत्रुक भयंकर अपराधी ठहरा। अतएव कोतवाल को राजा ने आज्ञा दिया कि "इसे पूरे नगर में घुमाकर, शाम को पर्वत की चोटी पर चढ़ाकर और वहाँ से ढकेल कर प्राण-दण्ड दे दो।"

कोतवाल शत्रुक को नगर में घुमा रहा था। नगर की गलियों में उसे देखने के लिये भीड़ लगी थी। "आज देखें शत्रुक चोर कैसा है?" इस प्रकार की भावना सबके हृदय में व्याप्त हो रही थी। शत्रुक नवयुवक तथा देखने में सुन्दर था। एक सेठ की सुभद्रा नामक इकलौती लड़की शत्रुक को देखी और वह उस पर मोहित हो गयी। अतः अपने माता-पिता से कही कि "चाहे जिस प्रकार हो, शत्रुक को अपराध से छुड़ाकर, इसके साथ मेरा विवाह कराया जाय।" सेठ-सेठानी ने बहुत समझाया कि यह राज्य का अपराधी है, अतः इसका छूटना कठिन है। और जो इसको छुड़ायेगा, उसपर राजा का कोप हुए बिना नहीं रह सकता।" परन्तु सुभद्रा का मन-इच्छित-वस्तु के लिये हठ करना स्वभाव था। अतः उसने दुराग्रह न छोड़ा।

निदान सेठ ने एक हजार स्वर्ण मुद्रायें कोतवाल को घूस रूप में देकर शत्रुक को माँगा। कोतवाल ने शत्रुक को दिन भर नगर में घुमाकर, शाम को उसे सेठ को दे दिया और उसके बदले में एक दूसरे अपराधी को पर्वत से गिराकर, प्राणदण्ड दे दिया। नगर में यह रहस्य अन्य कोई न जान सका। जनता में यही प्रसिद्धि हुई कि शत्रुक मारा

गया। इधर उसी रात्रि शत्रुक और सुभद्रा का छिपकर विवाह हुआ। सुभद्रा मन-अनुकूल वर पाकर बहुत प्रसन्न हुई। परन्तु शत्रुक के मन में कुछ और ही भावना थी। वह सुभद्रा के कीमती आभूषणों पर ही ध्यान रखता था। वह अपने अज्ञानवश यह नहीं समझ पाता था कि सेठ की सारी सम्पत्ति और आभूषणों के सहित सुभद्रा मेरी है।" बल्कि वह अपने नीच चोर-स्वभाव-वश केवल सुभद्रा के आभूषणों को ही हड़प कर, उसे धोखा देना चाहता था!

इस प्रकार कुछ दिन सुभद्रा के साथ रहकर, दम्पति-सम्बन्ध का नाटक खेला। निदान एक दिन सुभद्रा को अति प्रसन्न देखकर शत्रुक ने कहा—जिस दिन मैं अपराधी के रूप में प्राण-दण्ड देने के लिये कोतवाल-द्वारा नगर में घुमाया जा रहा था, उस दिन मैं पर्वत की देवी से प्रार्थना करके यह मानता किया था कि 'ऐ देवी! यदि मेरी जान बच जाय, तो मैं आपके दर्शन करूँगा।' अतएव देवी की प्रसन्नता से मेरी जान बच गयी। इस लिये उसके दर्शनार्थ, मैं पर्वत के शिखर पर जाना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें भी सहर्ष चलना चाहिये।

उपर्युक्त बात सुनकर सुभद्रा यह न समझ सकी कि यह शत्रुक का षड़यन्त्र है। क्योंकि प्राण-दण्ड से छुटकारा पाने पर देवी के दर्शन करना शत्रुक का स्वाभाविक था। अतएव शत्रुक के साथ सुभद्रा ने चलने को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया और शत्रुक के संकेतानुसार सुभद्रा ने अपने सारे आभूषणों से सजकर पति के साथ चली। साथ में नौकर-चाकर भी लिये गये। शत्रुक के प्रति सुभद्रा के हृदय में यह किञ्चित् भी भान नहीं था कि इनके हृदय में कुछ और ही चाल है।

पर्वत तक पहुंच कर अपने संगी-साथियों तथा नौकरों को पर्वत के नीचे छोड़ कर और केवल सुभद्रा को साथ लेकर शत्रुक पर्वत पर चढ़ने लगा। सुभद्रा केवल अपने पति के साथ एकान्त पर्वत पर देवी के दर्शनार्थ भ्रमण करती हुई अति प्रसन्नता का अनुभव कर रही थी। इतने में एकाएक शत्रुक ने सुभद्रा को कुछ अपशब्द कहा। यह सुनकर सुभद्रा आश्चर्यित हो गयी और उसे शत्रुक के प्रति सन्देह हुआ।

दस मिनिट और चढ़ने पर सत्रुक ने डाँट कर कहा कि "अपना सब आभूषण रख दे।" सुभद्रा समझ गयी कि अब जान की जोखिम है। अतः उसने बड़ी चतुरता से काम लिया और शत्रुक से कहा—"पतिदेव आभूषण क्या, यह शरीर ही आप को अर्पित हो चुका है। कृपया अब एक बार आप अपना अन्तिम आलिंगन दे दीजिये। फिर पीछे से आभूषण लेकर हमारे शरीर का जो कुछ करना होगा, सो कीजियेगा।" शत्रुक ने इसमें कोई आपत्ति न समझी। कामी को एकान्त में मनोवासना प्रदीप्त होती ही है। अतः सुभद्रा के आलिंगनपाश में शत्रुक बंध गया। उसे विषयासक्ति में बेभान समझ कर सुभद्रा ने पर्वत से ढकेल दिया तथा शत्रुक पर्वत से गिर कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। राजा-द्वारा जो दण्ड शत्रुक को मिला था, वह सुभद्रा-द्वारा पूर्ण हुआ।

अब सुभद्रा के हृदय में पुरुष मात्र के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो गया। बिषयी जीवन की असारता को समझकर उसने आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने का नियम कर लिया। उसने वैराग्यवान् सन्तों का सत्संग किया। उसे ज्ञान की प्राप्ति हुई। वह साधना पूर्वक जीवन व्यतीत करती हुई कल्याण की अधिकारिणी हुई।

इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि जिस वैवाहिक तथा विषयी जीवन के लिए मनुष्य पहले से आकर्षित रहता है। वह सर्वथा निस्सार होता है। यद्यपि उपर्युक्त दृष्टान्तानुसार सबकी दशा नहीं होती। तथापि यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि दूर से विषय का आकर्षण अधिक है। परन्तु उसमें सार कुछ भी नहीं है। क्योंकि कितनी ही अनुकूलता हो, अन्त में सब छूटने वाले हैं। अतः नाशवान् क्षणभंगुर वस्तुओं से वैराग्य करना ही परम् कर्तव्य है।

श्रद्धा प्रेम उठी लहराई। शान्ति तोष जल बरसि जुड़ाई ॥
आज्ञा मानि गुरू सेवकाई। भक्ति प्रताप मुक्ति पद पाई ॥७॥

वैराग्यवान् सद्गुरु-सन्तों के प्रति तथा निःसंग मोक्ष-हेतु श्रद्धा तथा प्रेम रूप बादल हृदयाकाश में उठकर उछलने लगा। और शान्ति सन्तोष रूप जल की वृष्टि करके मन को शीतल कर दिया। सद्गुरु की

आज्ञा मानकर सेवकाई करने लगे; इस भक्ति के प्रताप से मोक्षपद को जीव प्राप्त हो गया ॥७॥

यह सब सद्गुण जिनके भाई । सोइ नर सज्जन हंस कहाई ॥
अष्ट महा यहि सद्गुण भाई । यहि में ही सब धर्म बताई ॥८॥

उपर्युक्त सम्पूर्ण सद्गुण जिसमें हों, हे भाई। वे ही सज्जन–पुरुष हंस (विवेकी) कहलाते हैं। हे बन्धु ! यही आठ महासद्गुण हैं, विवेकीजन इसी में सब धर्मों के अंग बताते हैं ॥८॥

दानवता-लक्षण

हिंसा मांस भक्ष जो करते । मद्यपान व्यभिचार में जरते ॥
तामस क्रोध अधिक बरजोरा । लूट फूँक ईर्ष्या चहु ओरा ॥९॥

जो जीवों की हिंसा करता, मांस-मछली-अण्डे खाता, मद्य पीता तथा व्यभिचार करता हैं। जो तामस गुण तथा अधिक क्रोध में जलता रहता, जो जबर्दस्ती, लूटफूंक करता एवं चारों ओर सबकी ईर्ष्या करता, अर्थात् दूसरे की उन्नति में जलता है ॥९॥

विषयवाद जो व्यसन अनेका । भूत प्रेत देवादिक टेका ॥
धर्म कर्म मुकती का खण्डन । देह भोग सत्यहिं करि मण्डन ॥१०
दानव दैत्य के लक्षण याही । करि अकर्म चौरासी जाही ॥११

जो विषयभोग को ही सत्य समझ कर, उसी का पक्ष लेता हैं; जो अनेक दुर्व्यसनों में लीन है। जो असत्य तामसी भूत-प्रेत-देवादि की कल्पना करके हिंसादि करता है। जो धर्म कर्म और मोक्ष का खण्डन करके शरीर तथा शरीर के भोग-ऐश्वर्य ही को सत्य मानकर, उसी की सिद्धि करता है–ये ही दानव या दैत्य के लक्षण हैं। ऐसे लोग अपकर्म करके चौरासी-चक्कर तथा शूकर-कूकर-कृमि-कीटादि योनियोंको प्राप्त होते हैं ॥१०-११॥

नष्टस्य कान्यागतिः

विक्रमादित्य ने कालिदास से पूछा—"नष्टस्य कान्यागतिः ? अर्थात् "जो नष्ट हो गया है, उसकी और क्या गति होगी ?"

उत्तर देने के लिये कालिदास ने एक सप्ताह का समय माँगा। प्रश्न करने के चार दिन के पश्चात् भिखारी ब्राह्मण का वेष बनाकर प्रातःकाल राजा विक्रमादित्य के पास पहुँचा। राजा पूजा करने बैठे थे। कालिदास रूप भिखारी ब्राह्मण ने राजा से भिक्षा माँगी। एक हृष्ट-पुष्ट जवान ब्राह्मण को पूजन के समय भिक्षा माँगते देखकर राजा ने फटकारा—

"तुम्हें लज्जा नहीं आती, इतने हृष्ट-पुष्ट नवजवान होकर भिक्षा माँगते हो?"

ब्राह्मण ने कहा—"महाराज मैं जूआ भी खेलता हूँ।"

राजा—"ब्राह्मण और जूवा! धिक्कार है तेरे को!"

ब्राह्मण—"जूवा खेलते-खेलते मदिरा पीने की भी मेरी आदत हो गयी।"

राजा—"हे भगवान्! तुम्हारा इतना पतन!"

ब्राह्मण—"मदिरा पीने से मादकता बढ़ी, और बेश्यागमन करने लगा।"

राजा—"अहो! तुम्हारे पतन की सीमा नहीं है।"

ब्राह्मण—"जूवा खेलने, मदिरा पीने और वेश्यागमन के लिये अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है। अतः मैं चोरी भी करता हूँ।"

राजा—"तो तुम ब्राह्मणत्व को बिलकुल खो बैठे हो?"

ब्राह्मण—"चोरी, जूवा, मदिरा और वेश्यागमन आदि में फँसकर द्वार-द्वार का ठोकर खाने लगा।"

राजा घृणापूर्वक कहा—"तब तुम भिखारी बन गये, छिः।"

ब्राह्मण ने कहा—"नष्टस्य कान्यागतिः?"

राजा विक्रमादित्य को उत्तर मिल गया और वे कालिदास को पहचान कर हँस पड़े। तात्पर्य यह है कि जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वही जूवा खेलता, मदिरा पीता, वेश्यागमन या व्यभिचार करता, चोरी करता तथा नवजवान होकर भीख माँगता है।

शिक्षा—उपर्युक्त दानवता के समस्त लक्षणों का सर्वथा त्याग करना, मानव का परम कर्तव्य है।

अन्याय का फल

एक धनी-मानी जमीन्दार ठाकुर जी थे। उनके घर के पास एक बुढ़िया की झोपड़ी थी। उसके और कोई नहीं था, केवल एक लड़का था। दोनों पास के जमीन में साग भाँजी बोकर और उसे बेचकर निर्वाह करते थे। कुछ दिन पश्चात् ठाकुर जी के मन में यह पाप उदय हुआ कि "बुढ़िया की झोपड़ी यहाँ से हट जाय, तो हम अपने मकान को बड़ा कर सकते हैं।"

बात बाहर फैली, बुढ़िया सुनी। एक दिन आकर ठाकुर जी के चरणों में गिरकर कहने लगी—"सरकार! आप सब प्रकार से सम्पन्न हैं, हम गरीब आदमी हैं। बाप-दादों से इसी झोपड़ी में रहते आये हैं। हमें यहाँ से मत हटाइये।" इतनी बात सुनकर तो ठाकुर जी बिगड़ पड़े और कहने लगे—"तुम नीच हो, सीधे कहा नहीं मानोगे। पुलिस आकर निकालेगी तब निकलोगे। तुम्हारी झोपड़ी की रक्षा हो और हमारा मकान न बने? सौ-पचास रुपये लेने हैं, तो ले लो? अन्यथा रुपये-झोपड़ी सब जायगी।"

यह सुनकर बुढ़िया को बड़ी निराशा हुई, और साथ-साथ क्रोध भी चढ़ा। वह कहने लगी—"बाबू! अन्याय का फल अच्छा न होगा। आप हमरी मड़ैया उजाड़ेंगे, तो आपका पक्का मकान भी मटियामेल हो जायगा। कुछ परलोक और धर्म को भी डरा करो।"

इतना सुनकर तो ठाकुर जी का पारा चढ़ गया और उन्होंने कहा—"तू बड़ी धर्मी और परलोकवादी बनकर आयी है। तेरे समान और कोई भगत नहीं होगा। मैं परलोक-वरलोक कुछ नहीं मानता। देखेंगे कल तुम्हारे धर्म को, चल! यहाँ से निकल!"

बुढ़िया दुखी होकर उनके दरवाजे से चली गयी। ठाकुर जी शक्तिशाली थे ही। उन्होंने पुलिस को बुलवा कर बुढ़िया और उसके बच्चे को निकलवा दिया। वे दोनों रोते हुए कहीं चले गये। ठाकुर जी का मकान बना। दो वर्ष बीते। तीसरे वर्ष हैजा की बीमारी पड़ी। ठाकुर जी का इकलौता जवान लड़का और युवती स्त्री एक ही दिन मर

गये। बुढ़िया को निकालने में ये दोनों ठाकुर जी को खूब उसकायें थे।

कोई पुराना मुक़दमा चल रहा था। इसी बीच में विपक्षी की ठाकुर जी के ऊपर डिग्री हो गयी। अब क्या था। ठाकुर जी के घर पर कुर्की आयी और घर नीलाम हो गया! बेचारे ठाकुर जी सड़क पर ठोकरें खाने लगे।

शिक्षा—जो जैसा करता है; उसको उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। कर्म-फल-भोग में देर भले हो, पर अन्धेर नहीं है। अतः सदैव अच्छाई करना चाहिये।

राजस-लक्षण।

फैशन शौक़ स्वाद बहू माना। लोलुप विषय भोग करि नाना॥
भौतिक भोग ठाट यह राजस। दुःखहिं हेतु रोग सो मानस॥१२

शरीर का तड़कीला-भड़कीला फैशन करना, बहुत लालसा रखना, जिह्वा-स्वाद की चाहना रखना, मान पाने की बड़ी इच्छा रखना या अपने को सबसे बड़ा मानना, काम विषय में लोलुप बने रहना तथा नाच-सिनेमादि देखने की लगन आवारापन होना, नाना वस्तुओं में लोभ होना, उचित के विरुद्ध मायाबी जड़-वस्तुओं का बहुत ठाट-बाट, बनाव-चिकनाव करना—यह सब राजस गुण हैं। यह मानसिकरोग—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि के तथा दुखों के कारण हैं॥१२॥

शिक्षा—उपर्युक्त रज-स्वभाव का सर्वथा त्याग करके अच्छे पुरुषों की संगत करनी चाहिये। कुसंग भूलकर भी न करे। नाच-सिनेमा तो चरित्र को नष्ट करने के लिये महान विष है। निम्न उदाहरण को मनन कीजिये और जीवन सुधारिये।

कुसंग तथा सिनेमा से पतन

कालेज का एक छात्र बतला रहा था—"पहले पढ़ने में हमारी बड़ी लगन थी। बी० ए० तक मैं अच्छे नम्बरों से अव्याहत पास होता रहा। मैं न कभी सिनेमा देखता था न ही उसमें हमारी रुचि थी, मैं तो अपनी पढ़ाई में रुचि रखता था। दुर्भाग्य-वश एक छात्र से मित्रता हो गयी। वह सिनेमा का प्रेमी था। एक दिन सड़क में मुझे घुमा कर

उसने सिनेमा के कई गन्दे पोस्टर एवं चित्र दिखलाये और सिनेमा सम्बन्धी कई पत्र भी दिखलाये। जिसमें सिनेमा की अभिनेत्रियों के हाव-भाव युक्त कई चित्र थे। उसने सिनेमा के मौज-शौक का बहुत वर्णन किया। मैं ऊपर से उसको निस्सार बतलाता हुआ भी, भीतर मन से उसकी ओर खिंचा जा रहा था।

उस दिन तो मैं घर लौट आया, सिनेमा देखने नहीं गया। परन्तु अब हमारा मन हमारे वश नहीं रह गया। दूसरे दिन सिनेमा देखने गया। फिर तो सिनेमा में हमारी आसक्ति हो गयी। एक दिन उत्तम श्रेणी का टिकट कटा कर सिनेमा देख रहा था। पास में एक अज्ञात नवयुवती छात्रा भी बैठी थी। सिनेमा में ऐसे विषय-वासना के भाव आये कि हमारा मन पागल हो गया। ठीक हमारी ही दशा पास में बैठी छात्रा युवती की थी। सिनेमा बन्द हुआ। हमारा और युवती का परस्पर संकेत हुआ। दोनों एक अज्ञात स्थान में गये। हम दोनों क्या किये ! कहने की आवश्यकता नहीं। दोनों का अधः-पतन हुआ।

सिनेमा देखने के साथ-साथ हमारे दोष-दुर्गुण बढ़ते गये। इस वर्ष मैं फेल हो गया। अत्यन्त विषयासक्ति एवं-व्यसन से वह युवती तो टी० बी० की बीमारी से पीड़ित होकर वर्ष के भीतर ही चल बसी। मैं जीवित तो रहा; परन्तु मेरा सर्वतोभाँति से पतन हुआ। सिनेमा देखने से व्यभिचार बढ़ा, वेश्यागमन किया, फिर शराब-मांस-अण्डा का सेवन किया। सिगरेट की भी आदत पड़ी। इन सब के लिये पैसा चाहिये; अतः मैं चोरी भी करने लगा।

दूसरे वर्ष दुबारा परीक्षा में बैठा, पुनः फेल हो गया। दुर्व्यवहार के कारण एक बार पुलिस के कोड़े भी हमारे ऊपर पड़े। शारीरिक, बौद्धिक एवं नैतिक—मेरा सभी प्रकार से पतन हुआ। मैं अपने दुःख से पीड़ित मस्तक में कीड़े पड़े हुए कुत्ते के समान विकल था और इस दुःख-निवृत्ति का मार्ग ढूँढ रहा था। परन्तु आदत प्रबल हो जाने से मैं मन-इन्द्रियों के अधीन था। भविष्य के सुखमय जीवन से निराश

होकर, आत्म-हत्या कर लेने की कल्पना में, घूमते-फिरते एक बाग में जा पहुंचा।

सौभाग्य से वहाँ एक सन्त, शान्तचित्त बैठे मिले। उनकी आकृति और बातचीत से, उन पर मेरा विश्वास हो गया, और उनके सामने अपने पापों को मैंने खोल कर रख दिया। सन्त ने समझाया—"देखो! जब तुम पहले सिनेमा नहीं देखते थे, तब उसके सम्बन्ध में तुम्हें कोई कष्ट नहीं था। अब उसके देखने का व्यसन बना कर कितना दुखी हो? यदि पुनः सिनेमा तथा अन्य दुर्गुण-व्यसन छोड़ दो, तो कुछ दिनों में पूर्ववत् पुनः सुखी हो जाओगे। विषय-भोगों में सुख नहीं हैं, सिवा दुःख के।" इस प्रकार उनके विविध निर्णय के श्रवण करने से हमें साहस मिला, और अपने बनाये समस्त दोषों को त्याग कर मैं शीघ्र ही सुखी हो गया।"

शिक्षा—देखो! एक कुसंगी मित्र के किञ्चित् सम्पर्क से, गन्दे चित्र देखने एवं सिनेमा देखने से, एक सज्जन-छात्र का कितना घोर पतन हुआ। अतः कुसंग, गन्दे चित्र तथा सिनेमा—इन सबका सर्वथा त्याग कर, साधु-संग करना चाहिये।

ऊँची शिक्षा क्या है?

एक शहर में दो भाई रहते थे। बड़ा भाई एम० ए० पास कर लिया था। छोटा भाई बी० ए० में पढ़ रहा था। बड़े भाई का विवाह एक देहाती लड़की से हुआ। लड़की रूप गुण सम्पन्ना एवं शीलवती थी। चार-पाँच कक्षा तक पढ़ी थी, हिन्दी सद्ग्रन्थों को पढ़ा करती थी। बड़ों की सेवा, पातिव्रत-धर्म का पालन एवं गृहस्थ-धर्म के कर्तव्य-विधान का ज्ञान, माता-पिता द्वारा उसे हो गया था। उसके नैहर में सन्त आते थे, अतः सत्संग-द्वारा उसे स्व-स्वरूप का भी ज्ञान था।

इधर छोटे भाई का विवाह एक शहरी लड़की से हुआ जो बी० ए० पास थी। बड़े फैशन से रहने वाली चुलबुली प्रकृति की थी। पति के साथ सिनेमा देखने जाना, पार्टी में जाना, पति के मित्रों के आने पर उनका बड़ी चाव से स्वागत करना तथा मादकता भरे भाव-भंगिमा

पूर्वक पति से या अन्य लोगों से धारावाहिक वार्ता-विवाद करना—उसका स्वभाव था।

बड़े भाई की स्त्री में लज्जा, शील, शान्ति और सादापन था, तो छोटे भाई की स्त्री में मादकता, चंचलता एवं फैशन-विलास। बड़े भाई की स्त्री पति की आज्ञाकारिणी, सेवापरायण तथा घर के काम-काज में उत्साह रखती। छोटे भाई की स्त्री इसके विरुद्ध थी। बड़े भाई की स्त्री सिनेमा-पार्टी में नहीं जाना चाहती, पर-पुरुष से विनोद नहीं करती। परन्तु पति यही चाहता कि यह भी छोटे भाई की स्त्री के समान चुलबुली प्रकृति की हो। मन के अनुकूल न पाकर वह अपने भाग्य को कोसता तथा स्त्री से झुझलाहट, कुवाक्य एवं बुरा बर्ताव भी कर देता। परन्तु वह बेचारी सब सहकर सन्तोष पूर्वक पति की और घर वालों की यथायोग्य सेवा करती रहती थी।

एकबार गरमी के दिनों में छोटा भाई अपनी पत्नी को लेकर पहाड़ पर गया। परन्तु बड़ा भाई सोचा कि "मैं अपनी भद्देस्वभाव वाली आज की सभ्यता से पिछड़ी, देहाती पत्नी को लेकर सभ्य मित्रों के साथ कैसे अपनी हँसी कराने जाऊं।" इस प्रकार सन्तापित होकर बड़ा भाई नहीं गया। कुछ दिनों के पश्चात् छोटे भाई की पत्नी का तार आया कि—"आपके छोटे भाई बीमार हैं मेरा भी स्वास्थ्य ऐसा नहीं कि सेवा कर सकूं। अतः आप आइये या किसी को भेजिये।"

बड़े भाई ने तार का उत्तर देते हुए पूछा - "हम तो आ रहे हैं, परन्तु यह बताओ कि भाई को कौन सी बीमारी है, तथा तुम्हारे स्वास्थ्य में क्या गड़बड़ी है ?" दो दिन पश्चात् बहू का पुनः तार आया कि "आपके भाई का बुखार उतर गया है। मेरा भी स्वास्थ्य ठीक है। परन्तु ऐसी दशा में मेरा यहाँ रहना नहीं होगा। मैं कल ही नैहर चली जाऊंगी।"

तार पढ़कर बड़ा भाई स्तम्भित हो रहा; "जब भाई का बुखार भी उतर गया है, और वह स्वयं भी स्वस्थ्य है, फिर क्यों नहीं रह सकती ?"

बड़े भाई की स्त्री ने कहा—"यह समय देखने का नहीं है। हम दोनों को चलकर सेवा करनी चाहिये।" उसी दिन दोनों चल दिये। दूसरे दिन पहाड़ पर पहुंच गये। छोटे भाई की स्त्री तब तक नैहर चली गयी थी। पूछने पर पता लगा कि छोटा भाई कमजोर होने के कारण पत्नी को साथ ले जाकर सिनेमा नहीं दिखा सका। इससे वह क्रोधित होकर चली गयी। बड़े भाई की स्त्री ने कहा – "अभी बच्ची हैं, माता-पिता का स्मरण आ गया होगा, चली गयी होगी। हम सब आ ही गये हैं।"

संयोगाधीन दूसरे ही दिन बड़े भाई को बुखार लग गया। घर पर कोई न था। अतः साथ में एक आदमी देकर छोटे भाई को घर पर भेज दिया। और बड़ा भाई अपनी पत्नी के साथ रह गया। बड़े भाई का बुखार बढ़ता गया। मारे बुखार के उसका शरीर जला जाता। फिर चेचक भी हो गया। स्त्री समय-समय पर डाक्टर बुला लाती। दवाई-पानी का पूरा प्रबन्ध करती। अपनी भूख और नींद भूल कर भी रात-दिन मशीन की भाँति पुरुष की सेवा मे स्त्री डटी रहती थी। आदर के साथ दिशा-लघुशंका साफ करती। दक्षता के सात स्त्री की दवाई और सेवा से २२ दिनों में पुरुष का बुखार उतर गया और चेचक के दाने भी सूखकर गिर गये। पत्नी की सच्ची सभ्यता और सुशीलता देखकर, पति मन-ही-मन बहुत लज्जित हुआ।

एक दिन पति ने कहा—"तू किस ज्ञान से निःस्वार्थ सेवा करती। सदैव सन्तुष्ट रहती, स्वाद शौकीनो से दूर रहती और सहनशक्ति में पृथ्वी के समान बनी रहती है।" अच्छा अवसर जानकर पत्नी ने कहा—गृहस्थी-धर्मानुसार पति की सब भाँति निःस्वार्थ सेवा करना, स्त्री का परम् कर्तव्य हैं। मैं केवल अपने कर्तव्य का पालन करती हूँ। इसमें मेरी कोई विशेषता नहीं है। मैं सदैव नालायक हूँ। रहा सदा सन्तुष्ट रहना, सहनशील रहना तथा स्वाद शौकीनो से दूर रहना—यह हमारे नैहर के सत्संग का प्रभाव है। हमारे पिता के यहाँ वैराग्यवान् विवेकी सन्त आते हैं। उनके द्वारा मुझे यह ज्ञान मिला है कि "मैं

शरीर नहीं हूँ; बल्कि शरीर में रहने वाला उसका चालक अविनाशी चैतन्य हूँ। स्वाद-शौकीनी, सिनेमा तथा नाना भोगों से कभी सन्तोष नहीं होता। बल्कि जितना ही भोगों का सेवन किया जाता है; उतनी ही तृष्णा ज्वाला, मनस्ताप, रोग शोक बढ़ते हैं !

अतएव त्याग और सन्तोष में ही अनन्त सन्तोष मिलता है और सहन करने से ही दूसरे पर विजय मिलती है। बराबर लड़ लेने से नहीं। 'मैं नित्य चैतन्य हूँ, मन इन्द्रिय स्वाधीन करके, अपने स्वरूप में स्थित होना ही मानव-जीवन का प्रमुख उद्देश्य है।' इसी ज्ञान से मैं सन्तुष्ट रहती हूँ। यद्यपि मैं अभी पूरी कल्याण की अधिकारिणी नहीं हूँ। क्योंकि आपकी आसक्ति ने हमें काम-कीचड़ में डुबो रखा है। हे पतिदेव ! आप भी विषय-विलास त्याग कर, सत्संगी बनें संयमी बनें, तो हम दोनों सहज ही विषय-तृष्णा की दुर्गम-धारा से पार होकर नित्य सन्तुष्ट एवं कल्याण के पात्र बन जायँ।"

पत्नी की इस प्रकार ज्ञान-भरी वाणी सुन कर, पति का हृदय परिवर्तित हो गया और अनर्थकारी नयी सभ्यता की विलासिता त्याग कर सत्संगी संयमी हो गया तथा शरीर से भिन्न अहने चैतन्य पारख स्वरूप के ज्ञान में संलग्न होकर सदैव के लिये सुखी हो गया। पति-पत्नी दोनों एक कल्याण के मार्ग में आ गये।

विचार करना चाहिये कि छोटे भाई की पत्नी जो बी० ए० पास ती, उसकी शिक्षा ऊँची थी कि बड़े भाई की पत्नी की शिक्षा ऊंची थी, जो केवल चार पाँच कक्षा साधारण हिन्दी पढ़ी थी ? वास्तव में जिसमें अच्छे आचार, सादापन, सद्‌गुण, सेवा, त्याग है। वही ऊँची शिक्षा-प्राप्त है। तिसमें यदि प्रकृति-पार अविनाशी चैतन्य का भी बोध हो, तब तो उसके समान संसार में कोई शिक्षित है ही नहीं।

आजकल पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर लड़कियाँ गृह-कर्तव्य कुछ नहीं जानती उन्हें अपने गृहस्थ-जीवन का कर्तव्य कुछ नहीं सिखाया जाता। किताबों के कीड़े बना दी जाती हैं। सादी के पश्चात् जब लड़की ससुराल जाती है, उसका पीहर के घर से सब अधिकार

उठ जाता है। ससुराल जाती है, वह पूर्ण रूप से वहाँ की ही समझी जाती है।

सासु ससुर को माँ बाप तथा ननद देवरको भाई बहन की तरह जानकर, उनसे प्रेम करना—लड़की के ससुराल जाते समय—माँ यही शिक्षा देती थी। परन्तु अब माँ-बाप यह चाहते है कि जो कुछ हम लड़की को दें, वह सब हमारी लड़की को ही मिले। सास-ससुर का कुछ अधिकार नहीं। ऐसा देखकर, लड़की का माँ-बाप पर अधिक प्रेम हो जाता है। सास-ससुर ननद-देवर से बिलकुल प्रेम नहीं रहता। केवल लोकाचार की सभ्यता से कुछ कर देती हैं।

अपने पति की कमाई में देवर-ननद से अधिक अधिकार वह अपने भाई-बहन या भतीजे का समझने लगती है। उसका पति भी यही समझने लगता है। पहले लड़की के ससुराल में, उसके पीहर वालों का; किसी का कोई हक नहीं माना जाता था। वो तो कभी अपनी लड़की लिवाने गये, तो मेहमान समझे जाते थे।

बहू अपने पीहर से जो वस्तु लाई, उसमें से किसी ननद या देवर आदि ने ले ली, उसे यह बुरा लगता है। क्यों बुरा लगता है ? कि वह ननद-देवर को अपना नहीं समझती। वस्तु के आगे ननद-देवर का महत्व कम समझती है। फिर कभी पीहर में आकर माँ से कहती है—"मेरी वह वस्तु ननद ने ले ली।' तो माँ मुंह बना कर कहती है—"वह उसने क्यों ले ली ? वह तो तुम्हें बहुत पसन्द थी। हमने क्या इसीलिये खरीदी थी। तेरी सास भी बहुत बुरी है, जो तेरी वस्तु दे दी या दूसरे को लेने दी।"

यह नहीं कहती कि "बेटी ले ली तो क्या वह तेरी प्रिय ननद है। तुम्हें प्रसन्नता से दे देना चाहिये। ननद-देवर से प्यार करना चाहिये।' माँ से ऐसी शिक्षा न पाकर, उल्टी शिक्षा पाती है। तो लड़की समझने लगती है कि पति की कमाई तो मेरी है। उसमें ननद-देवर का कुछ अधिकार नहीं। इसके विपरीत भाई-बहनों का अधिकार समझने लगती है। जो सर्वथा गलत है।

लड़की को चाहिये कि ससुराल जाकर सास-ससुर, ननद-देवर

को अपना समझे, उनसे हार्दिक प्रेम रखे। ननद-देवर का काम करने में आलस्य न करे।

बहुत बहुएँ ननद-देवर से हर बात में चिढ़ती हैं। हर समय अपने भाई-बहन या पीहर वालों की बड़ाई करती रहती हैं। उन्हें ही अच्छा समझती हैं। ननद-देवर को बुरे भाव से देखती हैं। पहले तो भाभी के आने पर ननद-देवर को बडी प्रसन्नता होती है। 'हमारी भाभी आयेगी' बड़ा चाव होता है। बाद में भाभी का यह स्वभाव देखकर, उनका भी स्वभाव पलट जाता है। परिणाम क्या होता है? घर में कलह होता रहता है। घर में सुख नहीं रहता। इसी से माता को चाहिये कि अपनी लड़की को यह शिक्षा दे कि "ननद-देवर से वह प्रेम करे। ननद-देवर प्यारी-से-प्यारी वस्तु ले लेवें, वह बुरा न माने। बल्कि प्रसन्नता से दे-दे।" आजकल वस्तु को बहुत महत्व दिया जाता है, प्रेम को नहीं।

कहीं-कहीं ननद भी अति कलहकारिणी होती है। वह भाभी के आचरणों में, बातों में, त्रुटि निकाल-निकालकर अपनी माँ से लगाती रहती है, और भाभी से झगड़ती रहती है। सास-ननद दोनों एक ओर होकर बहू को सन्ताप देती रहती हैं। दूसरे की लड़की को अपने घर में लाकर सन्ताप देना—यह कितना महान पाप है।

अपने में किसी को जोड़ना, यह महान अज्ञान है। जैसे माँ अपने में पुत्र को जोड़ती है, यह समझकर कि मैंने इसके साथ कितने कष्ट उठाये यह मेरा है। है तो यह अज्ञान ही।

कोई-कोई तो पुत्र न होने पर भी किसी और के पुत्र को अपना मानकर मोहवश अपने में जोड़ लेती हैं। यह महान अज्ञान या मृग, तृष्णा है। प्रारब्ध पर सन्तोष न करके, बिना हुआ दुःख शिर पर लाद लेती हैं। प्रारब्धानुसार जो बेटा-बेटी मिले हैं। वह बोझा तो जबर्दस्ती निभाना है। जो प्रारब्ध में नहीं है, वह बोझा भी क्यों लादे?

वास्तव में सच्चा पुत्र, सच्चा कुटुम्ब तथा सच्चा धन धर्म है। मरते समय जीव का कोई साथी नहीं होता। पुत्र-धन सब यहीं रह

जाते हैं। परन्तु जीव के साथ में धर्म ही जाता है। अतएव सब तृष्णा त्याग कर चिन्तामणि रूप धर्म का ही संचय करना चाहिये।

सातस-लक्षण

शील अहिंसा शुद्धाहारी। जीव दया शुभ कर्म बिचारी॥
मिष्ट वचन निज पर हितकारी। सतोगुणी सो लक्षण धारी।१२

नम्रता रूप शील स्वभाव रखना, हिंसा का त्याग करना, शुद्ध साकाहार प्रयुक्त भोजन ग्रहण करना, जीवों पर दया करना, पुण्य कर्म करना, विचार शुद्ध रखना, अपने-पराये के हितकर मीठे वचन बोलना—यह सब सतोगुणी लक्षण धारण करने योग्य हैं।।१२।।

तीन प्रकार मनुज जग केरे। उत्तम मध्यम कनिष्ठ घनेरे।
मोक्ष हेतु उत्तम अधिकारी। सज्जन हंस रूप तन धारी।१३॥

संसार के मनुष्यों का तीन श्रेणियों में विभाजन किया जा सकता है—उत्तम, मध्यम और कनिष्ट; सो कनिष्ट ही की मात्रा अधिक है। मानवता तथा सातस लक्षण धारण करने वाले ही 'उत्तम' हैं। ये ही मुक्ति के सहज रूप से अधिकारी हैं। ऐसे सज्जन तो मानो पहले से ही हंस (विवेकी) का रूप धारण करके आये है। यदि इनमें कोई मोक्ष-कार्य पूरा न कर सका, तो नर-तन में आता है। (अन्य श्रेणी के मनुष्य भी यदि सुधरना चाहे, तो अधिक परिश्रम से सुधर कर और सत्संग प्राप्त कर, मोक्ष के अधिकारी बन सकते हैं।)।।१३।।

मनुष्यों के तीन प्रकार

एक पिता के तीन लड़के थे। एक लूला तथा लङ्गड़ा था, दूसरा अन्धा तथा तीसरा सर्वाङ्ग सम्पन्न। जो लूला-लंगड़ा था, वह तो माता-पिता की सेवा कुछ कर नहीं सके; परन्तु दूसरा अन्धा भी नेत्र-हीन होने के कारण कुछ न कर सके। केवल तीसरा सम्पन्न लड़का ही सेवा करे।

इसी प्रकार संसार में तीन प्रकार मनुष्य हैं। एक कृपण तथा आलसी—यही लूला-लङ्गड़ा है। यह न दान कर सके न सत्संग-सेवा।

दूसरा अति विषयी—यही अन्धा है। इसको परमार्थ दिखता ही नहीं। फिर यह धर्म-भक्ति कैसे कर सकता है? तीसरा उदार और पुरुषार्थी है—यही सम्पन्न है। यह दान करता, सन्त-सेवा करता तथा सत्संग, स्वध्याय करके कल्याण-मार्गमें लगा रहता है। अतएव मनुष्य को उदार तथा पुरुषार्थी होना चाहिये।

मध्यम पशु पक्षी में जाई। दुःख अमित बहु भार उठाई॥
कृमि अरु कीट नीच तन धरहीं। रौ-रौ नरक भोग दुःख मरही॥१४॥
ताते सावधान हो जाओ। धर्म जक्ति युत जन्म विताओ॥१४॥

राजसगुण युक्त मनुष्य ही मध्यम हैं, (यदि इनमें धर्म-परोपकार तथा जीवन में संयमिकता है, तो नरतन-प्राप्ति के अधिकारी हैं। अन्यथा) ये पशु-पक्षी आदि खानियों में बारम्बार जन्म धारण करके अपार दुःख भोगते हैं। तापस गुण युक्त मनुष्य ही कनिष्ट हैं। ये अति नीच कीट-पतंगादि तन धर-धर कर तथा मल-मूत्र-फोड़ा आदि में तन धर-धर कर घोर नरक का दुःख भोगते हुए, शीघ्र-शीघ्र जनमते-मरते है॥१४॥

अतएव मनुष्य को चाहिये कि वह सावधान होकर राजस-तामस त्याग कर, सतोगुण युक्त धर्म-भक्ति सहित इस उत्तम मानव-जीवन को व्यतीत करे॥ १४½ ॥

इस संसार में कोई किसी का नहीं है। सबके कर्म तथा कर्म-फल-भोग पृथक्-पृथक् हैं। स्त्री-पुत्र-मित्र-बन्धु-बान्धव कोई किसी के कर्म-फल-भोग में साझीदार नहीं हो सकते। प्रत्यक्ष है, पुत्र के पैर में लगी हुई चोट को, पुत्र ही भोगता है। माता-पिता केवल बाहर से हाय-हाय किया करते हैं। बहुत करते हैं, दवाई-पानी करते हैं। परन्तु भोग तो पुत्र को ही भोगना पड़ता है। इसी प्रकार सबका समझ लीजिये।

एक घर एक समाज में रहते हुए अपने-अपने कर्मानुसार सबके कर्म-फल-भोग, सबके गुण-स्वभाव पृथक् हैं। एक ही घर में तामसी

मनुष्य क्रोधादि में जलता रहता है, राजसी नाना विषय इच्छा-तृष्णा में दुखी रहता है और सातसी स्वच्छन्द, सन्तुष्ट और शान्त रहता है। अपने गुण-स्वभाव और कर्म ही लोक-परलोक में साथी है। अतएव सबकी आशा त्यागकर, अपने सुधार में शीघ्र लगनां चाहिये।

रात कब होती है?

श्री कृष्ण जी ने यशोदामाता से कहा—"माँ दूध दो।"

माँ ने कहा—"अभी दूध नहीं मिलेगा।"

श्री कृष्ण—"कब मिलेगा ?"

यशोदा—"रात में।"

श्री कृष्ण—"रात कब होती है ?"

यशोदा—"अंधेरा होने पर।"

श्री कृष्ण ने दोनों आँखें बन्द कर ली और कहा—"माँ! अंधेरा हो गया, अब दूध दो।"

माँ यशोदा हँस पड़ी।

इसका सिद्धान्त यह है कि अपनी आँख बन्द कर लेने से अपने लिये रात है, और अपनी आँख खोलने से दिन है। अतः अपने सुधार के लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये। जो अपना सुधार कर लेता है, वही दूसरे का सुधार कर सकता है।

छन्द-सदाचार-मनन

दरश परश गुरु सन्त निष्ठा, प्रेम से शुभ सार है।
धन्य वह जो धारि उर में, अहं करि सब छार है॥
कर्तव्य यह दुख अन्त-हित, गुरु पद सदा आधार हो।
पर स्वच्छ मन अपना चही, जो पक्ष जग सब टार हो॥१॥

विवेक-वैराग्य सम्पन्न सद्गुरु-सन्तों के दर्शन, चरण-स्पर्श, श्रद्धा-प्रेम कल्याणकारी तथा लाभकारी हैं। वह जिज्ञासु प्रशंसनीय है, जो अपने हृदय में भक्ति धारण करके, सब अहंकार को नाश कर देता है। सम्पूर्ण दुःखों के नाश के लिये, मुमुक्षु का यही कर्तव्य है कि जीवन-

पर्यन्त सद्गुरु के चरणों का तथा स्व-स्वरूपस्थिति के अभ्यास का आश्रय रखे। परन्तु उपर्युक्त आचरण धारण करने के लिये, संसार के सब पक्ष-आसक्ति को सर्वथा त्याग कर, अपना अन्तःकरण पवित्र करना होगा ॥ १ ॥

है कामना जहँ राम नहिं, जहँ राम हैं निष्काम हो।
भानु निशि यक सम नहीं, परकाश में आराम हो ॥
जिज्ञासु जन अस जानकर, निज रूप में ही शान्त हो।
गुरु परख पारख साथ रखि, स्थिति सदा निर्भ्रान्त हो ॥ २ ॥

जहाँ जगत् कामना है, वहाँ हृदय-निवासी राम की स्थिति नहीं। और जहाँ चैतन्य राम की स्थिति है वहाँ जगत्-कामना नहीं। क्योंकि सूर्य-अन्धकार साथ में नहीं रह सकते, राम को तो ज्ञान-प्रकाश में ही आराम होगा। ऐसा जानकर मुमुक्षुगण स्व-स्वरूप चैतन्य राम में शान्त होवें। सद्गुरु का पारख-ज्ञान तथा परीक्षा-दृष्टि को हृदय में रखकर, भ्रांति-रहित एकरस स्थिति करें ॥२॥

देहधारी जीव जित, चलते वो फिरते देखिये।
तन मन वचन से हो दया, निज सम उन्हें भी पेखिये ॥
घात करना पाप है, त्रयताप में जरता सदा।
अस जानि हिंसा को तजै, नहिं दुख किंचित हो कदा ॥ ३ ॥

जहाँ तक शरीर-धारी जीव चलते-फिरते देखने में आते हैं। अपने समान उन्हें भी जानकर तन, मन, वचन से दया पालन करो। किसी को चोट पहुँचाना महापाप है, इस पाप का फल—तीन ताप में सदैव जलना है। ऐसा जानकर हिंसा त्याग करे, किञ्चिन्मात्र कभी किसी को हमारे द्वारा दुःख न हो—ऐसा अपना भाव रखे ॥३॥

दुःख कोई दे तुझे, छीने वो लूटे वस्तु को।
उसकी तरह तुम न करो, सहने में हित है आप को ॥

उलटे क्षमा उस पर करो, लखि के कथा जो विष्णु की।
मुनि भृगु ने मारी लात जो, सो वक्ष में भगवान की ॥४॥

कोई तुम्हें क्लेश दे, तुम्हारे पदार्थ को छीन ले, लूट ले या बिगाड़ दे तो उसकी भाँति तुम दुष्ट कर्म न करो, तुम्हारा कल्याण तो सहने में ही है। बल्कि उलट कर उस दुष्ट के प्रति क्षमा कर दो, देखो! भगवान विष्णु की कथा प्रसिद्ध है। भृगुमुनि ने भगवान् विष्णु की छाती में जब अपने पैर से प्रहार किया—॥४॥

कर से पकड़ मलने लगे, हा! कष्ट भा बहु आपको।
बज्र सम छाती मेरी, कोमल कमल पद आप को॥
ऐसी सहन की शक्ति महिमा, आज तक विस्तार है।
लखि के न चेते मूढ़ मन, जड़ता महा संसार है॥ ५॥

तब भृगुमुनि के चरण को भगवान अपने कोमल हाथों से पकड़ कर सहलाने लगे और कहने लगे—"अहो! आप को महान कष्ट हुआ होगा। क्योंकि कहाँ बज्र के समान हमारी कठोर छाती और कहाँ कमल के सदृश आपका कोमल चरण!" सहनशक्ति का ऐसा गौरव आज तक संसार में फैला है ऐसा उदाहरण देख-सुनकर भी, यह मूर्ख मन नहीं सावधान होता। सचमुच संसार में महान अज्ञान है॥५॥

बड़ा गुण कौन ?

एक मनुष्य के तीन पुत्र थे और उसके पास धन अधिक था। पुत्रों के बड़े होने पर पिता ने सोचा कि अब हम वृद्ध हो चुके हैं, अतः मृत्यु के निकट ही हैं। हमारे न रहने पर सम्भवतः बच्चों में धन के बाँटने का झगड़ा हो। अतएव हमारे रहते धन बट जाय तो अच्छा है। ऐसा विचार करके धन का तीन भाग करके, तीनों पुत्रों को दे दिया, और एक जवाहर अपने पास रख लिया। उसने सोचा "तीनों पुत्रों में जिसके पास कोई बड़ा गुण होगा, उसी को यह जवाहर पुरस्कार (इनाम) में दूँगा।"

कुछ दिन के पश्चात् एक दिन तीनों पुत्र पिता के निकट बैठे थे। पिता ने बड़े लड़के से पूछा—"तुमने आज तक कौन-सा अच्छा काम किया है ?" उसने कहा—"पिता जी ! एक दिन एक विपत्तिग्रस्त अपरिचित मनुष्य एकान्त में मुझे एक लाख रुपये रखने के लिये दिया। एक सप्ताह के पश्चात् उसके आने पर, उसके सारे रुपये ज्यों-के-त्यों मैंने वापस कर दिया। यही अच्छा कार्य मुझसे हुआ है। क्योंकि मैं चाहता, तो उसके रुपये न देता और वह कुछ न कर पाता। क्योंकि रुपये रखते समय न कोई साक्षी था न लिखा-पढ़ी।"

पिता ने कहा—"बेइमानों की अपेक्षा तो तुमने अवश्य ही अच्छा काम किया है। परन्तु इसमें तुमने अधिक क्या किया ? उसे उसके ही रुपये तो दिये।"

पिता ने दूसरे मझले लड़के से पूछा—"तुमने कौन-सा अच्छा कार्य किया है ?" मझले लड़के ने कहा—"एक दिन, एक दूसरे का बालक नदी में डूब रहा था; मैंने जीवन का मोह त्यागकर नदी में कूद पड़ा और उसकी जान बचा ली।" पिता ने कहा—"तुमने अवश्य ही उत्तम काम किया। परन्तु मनुष्य का तो यह सहज स्वभाव ही होना चाहिये कि वह परोपकार करे।"

पिता ने तीसरे छोटे लड़के से पूछा—"तुमने आज तक कौन-सा अच्छा काम किया है ?" लड़के ने कहा—"एक मनुष्य, जो हमें मार डालने के लिये खोजता था; हमारा परम शत्रु था। वह एक दिन अधिक शराब पीकर, नशा में बेभान हो नदी के तट पर पड़ा था। जहाँ वह पड़ा था, वहाँ की पृथ्वी में दरार फटकर, नदी में गिरना ही चाहती थी। तट के नीचे नदी बहुत गहरी और भयानक थी। मैं तुरन्त दौड़ा और उस मनुष्य को उठा कर, बाहर ले आया। उसमें मैंने यही समझा कि यह तो अपनी प्रारब्ध-बलिष्टता से बच रहा है, और मैं अपना केवल कर्तव्य पालन करता हूँ। हे पिता जी ! मैंने केवल इतना ही अच्छा काम किया है।"

पिता ने कहा—"पुत्र ! तू धन्य है ! तेरा गुण सबसे बड़ा है। जो शत्रु को भी प्राण प्रिय समझ कर, उसको अभय-दान दे; और फिर

इतना निर्मानी हो, ऐसे पुरुष दुर्लभ हैं।" ऐसा कहकर पिता ने उस जवाहर को, उस छोटे लड़के को पुरस्कार रूप में दिया।

गद्य, पद्य, श्लोक-दृष्टान्तों की योजना करके ग्रन्थ निर्माण कर देना। सभा में भाषण करना, और सुन-समझ लेना दूसरी बात है; और उनके अनुसार ठीक अपना आचरण बनाना दूसरी बात है। शिक्षा करते समय – भगवान् विष्णु, महात्मा बुद्ध, महात्मा महाबीर स्वामी, महात्मा यीशु तथा महात्मा श्री कबीर साहेब सभी बन जाते हैं। परन्तु प्रतिकूल परिस्थिति-उत्पन्न होने पर, क्षमा, सहन, समता तथा शान्ति रखना— विरले कर पाते हैं। ऐसे महान गुण क्षमा आदि का आचरण धारण करने से ही, अपने तथा दूसरे को भी सुख-शान्ति मिलेगी और जनता के लिये उच्च आदर्श (नमूना) स्थापित होगा।

है जीव अविनाशी सदा, जड़ दृश्य से वह पार है।
द्रष्टा स्वतः चैतन्य तू ही, भूलता संसार है॥
अविकार स्वच्छ स्वरूप तेरा, कल्पना सब छार है।
अस जानि स्थिति में सदा, तब आप ही निरधार है॥ ६॥

चैतन्य जीव नित्य, अविनाशी और जड़ पंच विषय से पृथक् है। चैतन्य ! तू स्वयं सबका साक्षी है, फिर तू जगत्-साक्ष्य में क्यों भूलता है? तेरा स्वरूप निर्मल-निर्विकार है, अन्य सब कल्पनायें मिथ्या हैं। इस प्रकार जानकर, सदैव स्व-स्वरूपस्थिति के अभ्यास में रहो, तभी अपने आप असंग ठहर सकोगे।

परीक्षक-ध्यान-चौपाई

पारख गुरु सन्त जब भेंटे। तब सब दुख जग बन्धन छूटे॥
जो यथार्थ गुरु दया स्वरूपी। लखि जग बन्धन पारख रूपी॥ १

जब पारखी सन्त-गुरु से भेंट हुई तथा स्वस्वरूप ज्ञान मिला, तब जगत् के सम्पूर्ण हमारे बन्धन तथा दुःख छूट गये। कृपामय जो यथार्थ सत्गुरु हैं, वे संसार के बन्धनों को परख कर, पारख स्वरूप में स्थित हैं॥१॥

पंच विषय सुख बन्धन जेते । जीवन का परखावें तेते ।
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा । सब जग जीव इसी में अन्धा ॥२॥

पंच विषयों में सुख की मान्यता रूपी जितने बन्धन हैं; उन सबको सद्गुरु-सन्तजन, जीवों को परीक्षा कराते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—संसार के सब जीव, इसी में आसक्त होकर विवेकहीन हो रहे हैं ॥२॥

शब्द राग स्वर श्रोत पसारा । कोमल पर्श त्वचा बिस्तारा ॥
सुन्दर रूप नेत्र लखि भीना । जिह्वा स्वाद लीन रस मीना ॥३

जहाँ तक स्वर-ध्वनि का विस्तार है, सब कान का शब्द-विषय है; कोमल कठोर आदि शब्द वा फैलाव चमड़ी का विषय है। नेत्रों से आकर्षक रूप देख कर जीव आसक्त हो जाता है, और जिह्वा के स्वाद-रस में मछली के समान जीव लवलीन हो जाता है ॥३॥

गन्ध सुगन्ध घ्राण मन भावा । भ्रमर समान फिरहिं नर धावा ॥
त्वचा नेत्र श्रवण अरु रसना । घ्राण पंच इन्द्रिय यह बरणा ॥४

नाक से अनेकों गन्ध-सुगन्ध अच्छे लगते हैं, भंवरा के तुल्य मनुष्य गन्ध की आसक्ति में दौड़ता फिरता है। चमड़ी, आँख, कान, जीभ तथा नाक—ये पाँच इन्द्रियाँ कही जाती हैं ॥४॥

पंच विषय इन्द्रिय अधीना । वशीभूत जिव तेज विहीना ॥
सो विवेक बिन नहिं निरवारा । पारख दृष्टि पाय तब न्यारा ॥५॥

उपर्युक्त पञ्च ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँचों विषयों में आसक्त हैं और जीव इन्द्रियों के वशीभूत हैं, इसीलिये यह विवेक के तेज से हीन है। यह विषयासक्ति विवेक के बिना नहीं कट सकती। विषयों में दुःख की परीक्षा दृष्टि होने पर ही, जीव उससे पृथक हो सकता है ॥५॥

कम्बल कि भालू ?

एक नदी के तट पर एक मनुष्य खड़ा था। इतने में उसने नदी में एक कम्बल बहते देखा। उसको निकालने के लिये वह नदी में

कूद पड़ा, और तैर कर उसको पकड़ लिया। परन्तु प्रयत्न करने पर भी, भालू से अपने को न छुड़ा सका। इतने में नदी के तट पर उसका पिता आ गया। पिता ने कहा—"यदि कम्बल को न निकाल सको, तो छोड़ कर चले आओ।।" पुत्र ने कहा—"पिता जी ! मैं कम्बल को छोड़ना चाहता हूँ, परन्तु वह मुझे ही नहीं छोड़ रहा है।।"

यह संसार ही नदी है। इसमें प्राणी-पदार्थ एवं पंच विषय-भोग रूप भयंकर भालू बह रहा है। परन्तु अज्ञानी मनुष्य उसे सुख रूप कम्बल समझ कर, पकड़ना चाहता है और पकड़ता है। फिर पीछे से प्राणी पदार्थों से दुःख पाकर उन्हें मनुष्य छोड़ना चाहता है। परन्तु तब छोड़ना चाहते हुए भी नहीं छोड़ पाता।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य पहले विषय-भोगों को सुख रूप मानकर पकड़ता है। पीछे उसको उससे दुःख मिलता है। आसक्ति प्रबल हो जाने पर फिर छुड़ाने पर भी, शीघ्र नहीं छूटती। अतएव प्रथम ही भोगों और प्राणियों से सावधान रहकर वैराग्य-तत्पर रहना चाहिये।

यह दृष्टान्त एक अंग का है। वास्तव में भालू तो जीवधारी प्राणी था। जिससे नाना प्रयत्न करने पर भी, मनुष्य उससे नहीं छूटता था। परन्तु यहाँ पंच विषय भोगों की आसक्ति, कोई स्वतन्त्र वस्तु या जीवधारी प्राणी नहीं है कि प्रयत्न करने पर भी न छूटे। इस दृष्टान्त में आसक्ति की प्रबलता बतलाई गयी है। वास्तव में कठिन-से-कठिन आसक्ति भी, प्रबल दोष-दर्शन से तुरन्त ध्वंस हो जायगी।

याते गुरु सत्संगहि गहिये। निज पद पाप अभय ह्वै रहिये ॥
जस मन इन्द्रिय विषय में धावत। तस तेहि पकड़ि कुसंग लगावत ॥६

इसलिये सद्गुरु के सत्संग में ही प्रविष्ट होइये और स्व-स्वरूप-स्थिति को प्राप्त कर निर्भय हो जाइये। जैसे मन और इन्द्रियाँ विषयों में दौड़ती हैं; तैसे उनको घुमाकर अच्छे मार्ग में लगा दो ॥६॥

तब निज उर विवेक परकाशा। होय सकल भ्रम तमहि विनाशा।
तब वैराग्य सदा मन भावै। सब उद्वेग सहज में जावै ॥७

तब अपने हृदय में विवेक का विकास होगा, और सम्पूर्ण अज्ञान विषयासक्ति रूपी अन्धकार का प्रलय हो जायगा। फिर सबसे मोह-रहित उदासीन रहना ही अपने हृदय में अच्छा लगेगा। और राग-द्वेष की सम्पूर्ण उलझनि अपने आप नष्ट हो जायगी ॥७॥

भक्ति साधुगुरु की चित दीन्हा। शुभ गुण सदाचार मन लीना ॥
तब स्थिति निज बोध असीना। स्ववश स्वतन्त्र सदा स्वाधीना ॥८

वैराग्य-प्रिय सन्त-गुरु की भक्ति-सेवा में मन लगाने से अच्छे गुण और आचरण तन-मन में भर जाते हैं। जीव स्व-स्वरूप की स्थिति में स्थित हो जाता है। और सदा के लिये स्ववश, स्वतन्त्र तथा स्वाधीन हो जाता है ॥८॥

स्वावलम्बन में सुख

एक बार एक अफसर की सेवा करने वाला नौकर, बिना बताये कहीं भाग गया। तो वे उसकी चिन्ता न करके, अपने हाथों अपना काम करने लगे। उनके एक मित्र ने कहा—"आप क्यों इतना कष्ट उठाते हैं। उस नौकर को खोज कर लाइये, और उससे काम लीजिये।" उन्होंने कहा—"जब हमारे बिना नौकर सुख पूर्वक रह सकता है, तो क्या बिना उसके, मैं सुख पूर्वक नहीं सकता ? मैं दासानुदास नहीं बन सकता। अतएव परावलम्बता का त्याग करके मनुष्य को स्वावलम्बी होना चाहिये।

उपर्युक्त दृष्टान्तानुसार जैसे व्यवहार में स्वावलम्बन सुख रूप है। ईसी प्रकार जड़-भोगों की समस्त वासनाओं को सर्वथा त्याग देने पर, जीव स्ववश सुखी हो जाता है। साधक को विचार करना चाहिए कि "मेरे बिना जब जड़-पदार्थ रह लेते हैं। तब उनके बिना मैं क्यों नहीं रह सकता हूँ ? मैं नित्य सन्तुष्ट चैतन्य होते हुए भी जड़-भोगों की यदि आशा करूं, तो इससे बड़ी तौहीनी का बात और क्या होगी ?"

अतएव जीव जब समस्त जड़-भोगों तथा संसार के प्राणी पदार्थों से निष्काम हो जाता है, और अपने आप ही सन्तुष्ट होकर स्वावलम्ब,

स्वतन्त्र तथा स्वाधीन हो जाता है। उस समय के सुख तथा विलक्षण स्थिति का वर्णन मुख से नहीं हो सकता।

जीवन्मुक्त तभी दृढ़ जानो। अन्त विदेह मुक्ति पहिचानो।
उत्तम नरतन सो फल याही। जड़ासक्ति तजि मुक्ति लहाही ॥६॥

उपर्युक्त प्रकार से जगत् कामना एवं राग से जब जीव रहित होकर स्वतन्त्र एवं स्वावलम्ब हो जाता है। तभी उसे निश्चित रूप से जीवन्मुक्त समझो, उसी की शरीर-पात-पश्चात् विदेह मुक्ति होती है। श्रेष्ठ मानव तन का यही लाभ है कि जड़ पंच विषय संसार शरीर की आसक्ति-त्याग कर' मोक्ष प्राप्त कर ले ॥९॥

इन्द्री मन से सजग हमेशा। परखि परखि त्यागै सब रेसा ॥
काम क्रोध मद लोभ भयंकर। मोह महा अज्ञान दुखंकर ॥१०

मन इन्द्रियों से सदैव सावधान रहे, परीक्षा पूर्वक सब दोषों को त्यागता रहे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, मद और अज्ञान—ये सब बड़े भयंकर दुखदायी हैं ॥१०॥

बंचक बाम विषय आकर्षक। सुख भ्रम लाय जीव प्रतिबन्धक ॥
तिनसे विमुख सदा जो होई। भक्ति सुसंग विराग समोई ॥११

भ्रमिक-विषयी नर-नारी तथा पंच विषय—ये मनुष्य में खिंचाव उत्पन्न करते हैं। जीव के हृदय में विषयों के प्रति सुख भ्रम लगा कर, बन्धनों में डाल देते हैं। भ्रमिक-विषयी नर-नारी तथा पंच विषयों का जो सदैव अभाव रखता है; वही सत्संग-भक्ति तथा वैराग्य-दशा में प्रवेश पाता है ॥११॥

शत्रु समान सदा हुशियारा। दुर्गुण व्यसन वो तजे विकारा ॥
मूल आप जिव सबका द्रष्टा। सो बिन जाने होवै भ्रष्टा ॥१२

मन-इन्द्रियों को वैरी के समान जानकर, जो इनसे सदैव सावधान रहता है। दुर्गुण-दुर्व्यसनों तथा सब दोषों को त्याग देता है, वही कल्याण का भागी होता है। मुख्यतः अपने आप ही चैतन्य जीव सबका साक्षी है। अपने महत्व को न जानने से यह पतित होता है ॥१२॥

साधु गुरू पद प्रेम सुनेमा। निश्चय करै पाय नित क्षेमा॥
इन्द्री मनको करि स्वाधीना। अलाहार रुप स्वाद विहीना॥१३
शोधि-शोधि गुण गहि यहि भाँति। निश्चय निज में होवे शान्ती

सन्त-गुरु के चरणों में प्रेम-नियम धारण करके जीव सदा के लिये कुशलपद पाता है। इन्द्रिय-मन को स्ववश करे, भोजन युक्त और स्वादासक्ति त्याग कर करे ।१३॥ इस प्रकार खोज-खोजकर या परीक्षा-पूर्वक सद्गुणों को ग्रहण करे; फिर निश्चय है कि जीव अपने में शान्त हो जायगा ॥१३½॥

पदार्थों में सुख नहीं

एक मनुष्य एक महात्मा की सेवा किया। महात्मा प्रसन्न होकर कहे कि "जो वर माँगना हो मांगलो।" वह मनुष्य बड़ा लालची था। अतः उसने कहा—"महात्मन्! मैं जो वस्तु छू लूँ, वह सोना हो जाय।" महात्मा "ऐसा ही हो" कहकर चले गये।

अब यह जो छूता, वह सोना हो जाता। घर को छूवा, वह सोना हो गया। इसी प्रकार अपने बाग का वृक्ष, अपने शरीर के वस्त्र छूये, और वे सब सोने हो गये। इतने में भोजन करने बैठा, तो जैसे रोटी छूवा, वह सोने की हो गयी। अब वह कैसे दांतों से कटे और कैसे पेट में जाय।

गिलास का पानी छूने से, वह भी सोना हो गया। इतने में पुत्र आया और उसे छू लिया, वह भी सोने का हो गया। अब तो यह बहुत घबराया और महात्मा को खोजने लगा। महात्मा मिले, तो अपना दुखडा कह सुनाया और कहा कि "महाराज! आप अपना वर लौटा लीजिये। मैं सोना नहीं चाहता।" महात्मा कृपा करके अपना दिया हुआ बर लौटा लिये और उसे पूर्ववत् ठीक कर दिये।

उपर्युक्त दृष्टान्त कल्पित है। इस दृष्टान्त से यह लेना है कि वास्तव में स्वर्ण-रत्न आदि वस्तु से जीव को सुख नहीं मिल सकता। बल्कि जीवन निर्वाहिक सात्त्विक वस्तुओं का उपयोग करते हुए, मनको शान्त

रखने से ही स्थाई सुख मिल सकता है। सुख अपने आप में है, बाहर नहीं।

सबसे परे अपना स्वरूप

दुख सुख रहित जीव अविनाशी। केवल भूल विवश अध्यासी॥
निज स्वरूप से मुक्त हमेशा। रवि घन न्याय आवरण तैसा॥१॥

चैतन्य जीव दुःख-सुख से रहित और अविनाशी है। मात्र स्व-स्वरूप की भूल-वश विषयों का अध्यासी बना है। जीव का स्वरूप सर्वदा मुक्त रूप है। सूर्य पर बादल-आवरण-न्याय, इस पर वासनाओं का ढक्कन है॥१॥

धन सुत नारि और परिवारा। ममता पंच विषय को धारा॥
सबको त्यागि परख में थीरा। स्ववश स्वतन्त्र सोई है बीरा॥२॥

धन, पुत्र, स्त्री, परिवार तथा पंचविषय—इन सबों में जीव ने ममता कर रखा है। सबकी ममता-राग-त्याग कर जो स्व-स्वरूप पारख में स्थित हो जाता है, वही वीरपुरुष स्ववश तथा स्वतन्त्र होता है॥२॥

बलबुधि विद्या मान न तहवाँ। दुख छूटन की इच्छा जहवाँ॥
निज को छोड़ि कछू नहिं चाही। स्वयं स्वरूप में शान्त रहाही॥३॥

जिनके हृदय में दुःखों से छूटने के लिये प्रबल इच्छा रहती है। उनके हृदय में बल, बुद्धि, विद्यादि का अभिमान नहीं रहता। वे अपनी स्वरूप स्थिति-त्याग कर कुछ नहीं चाहते; सदैव स्व-स्वरूप में स्थित रहते हैं॥३॥

निराधार निज निज सब जीवा। बिन जाने कोई खोजत पीवा॥
गुरू कृपा करि बोध जो दीना। मिटी कल्पना तम सबछीना॥४॥

सब जीव अपने-अपने स्वरूप से असंग हैं। बिना ज्ञान के कोई दूसरे कल्पित पति की खोज करते हैं। यहाँ तो सद्गुरु ने कृपा करके स्व-स्वरूप का ज्ञान दे दिया; अतः कल्पनायें नष्ट हो गयीं, और अज्ञान-अन्धकार सब विलीन हो गये॥४॥

परम प्रकाश भयो भ्रम नाशा। जगत ब्रह्म की छूटी आशा॥
स्वयं आप अपरोक्ष स्वरूपा। सदा थीर मन पारख भूपा॥५॥

पारख का परम् प्रकाश हो गया और सब भ्रम का संहार हुआ। जगत और कल्पित ब्रह्म दोनों की आशायें छूट गयीं। अपने आप ही चैतन्य अपरोक्ष (स्वयं प्रत्यक्ष) स्वरूप है। ऐसा जानकर तथा मनको शान्त करके, पारख पद में स्वतन्त्र स्थित हो गया॥५॥

हमी जीव सब जाननहारा। हमी सबन का करत विचारा॥
हमी जीव हैं निश्चय कर्ता। हमी दुखों सुख के हैं भर्ता॥६॥

हम या हमारे समान सब जीव ही, जड़ पदार्थों के जानने वाले हैं। हमही सबके विचार करने वाले हैं। हम जीव ही बुद्धि का निश्चय करने वाले हैं और हमही ज्ञान-अज्ञान से सुख-दुःख दोनों के उत्पन्न करने वाले स्वामी हैं॥६॥

सब इन्द्रिन का जीव है प्रेरक। जीव बिना नहिं कोंई हेरक॥
ईश ब्रह्म का जीवहिं कर्ता। देवी देव भूत को रटता॥७॥

सब इन्द्रियों को प्रेरणा करने वाला जीव ही है। जीव के अतिरिक्त खोजने पर भी अन्य कोई स्रष्टा नहीं दिखता। ईश्वर-ब्रह्म की कल्पना करके सिद्ध करने वाला जीव ही है। कल्पित देवी-देव, भूत-प्रेत मानकर जीव ही रटता है। जीव इन सबों को न कल्पे, तो ये कुछ नहीं। अतः जीव ही सबसे बड़ा है॥७॥

श्री कृष्ण जी गीता में कहते हैं—

श्लोकः—उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥
(गीता। १३।२२)

अर्थः-'जीव इस देह में स्थित हुआ भी त्रिगुणातीत ही है। यही साक्षी, प्रेरक, स्वामी, भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा है—ऐसा कहा गया है।'

जीवहिं नाम रूप को ज्ञाता । नामी आप सकल को ध्याता ॥
जब तक आप को नाहीं जानत। तब तक ईश ब्रह्मको ठानत ॥८

जीव ही संज्ञा और पदार्थ का ज्ञाता, सबका नामकरण करने वाला नामी और सबका ध्यान करने वाला ध्याता है। जब तक अपने दिव्य चैतन्य पारख स्वरूप को नहीं जानता, तब तक ईश्वर-ब्रह्म पृथक् निश्चय करता रहता है ॥८॥

वन-यात्रा समय लक्ष्मण राम से कहते हैं

श्लोक—विल्कहो वीर्य हीनो यः स दैवमनुवर्तते ।
वीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ॥

(बा० रा० अ० का० २३ सर्ग)

अर्थ—'जो कायर है; जिसमें पराक्रम का नाम नहीं है, वही दैव का भरोसा करता है। विवेकी शक्तिशाली, एवं वीर पुरुष, दैव की उपासना नहीं करते।'

दिशा भरम जस चकित हो बुद्धी। मद्यपान जस होत बेशुद्धी।
तैसे और को और बखानत। निज स्वरूप को नाहीं जानत ॥६॥

दिग्-भ्रम होने से जैसे बुद्धि चकित हो जाती है, मद्य पीने से जैसे सुधि-बुधि जाती रहती है। तैसे जीव विषयासक्ति के नशा-वश अन्य-का-अन्य ही बकता रहता है; अपने स्वरूप को ठीकरूप से नहीं जानता ॥६॥

सद्गुरु मिलत बोध तब होवे। भ्रम तम नशि रवि ज्ञान समोवे॥
पूरब पुण्य उदय जेहि केरा। तेइ पावत गुरु ज्ञान यथेरा ॥१०॥

पारखी सद्गुरु के मिलते ही, जीव को स्व-स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। और भ्रम रूप अन्धकार को नाश करके सूर्यवत् स्वतः ज्ञान स्वरूप जीव स्थित हो जाता है। जिसके पूर्व जन्मों के पुण्य-कर्म उदय होते हैं, वही गुरु का यथार्थ स्वरूप-ज्ञान प्राप्त करता है ॥१०॥

बोधसार सटीक चतुर्थ खण्ड समाप्त

प्रकरण फल

यह जीवन का अवसर अनूप ।

श्रुति नेत्र हस्त पग रसन घ्राण ।
सब स्वस्थ चल रहे शेष प्राण ।
मन शुद्ध मोक्ष की चाह योग ।
गुरु सन्त विवेकी का सयोग ॥

पा रत्न समय भज निज स्वरूप ॥यह०॥१॥

व्यवहार जगत के सभी पूर ।
होंगे न कभी मन ! चेत क्रूर ॥
तू धूल खेल में समय रत्न ।
खोता, नहिं करता मुक्ति-यत्न ॥

पड़ता फिर-फिर तू जगत् कूप ॥यह०॥२॥

ये नारि महल मठ धन जमीन ।
सुत शिष्य बड़ाई दिवस तीन ॥
इनमें फँस कर क्यों मुक्ति पन्थ ।
तू खोता है पाकर सुपन्थ ॥

तज दृश्य लीन हो परख रूप ॥यह०॥३॥
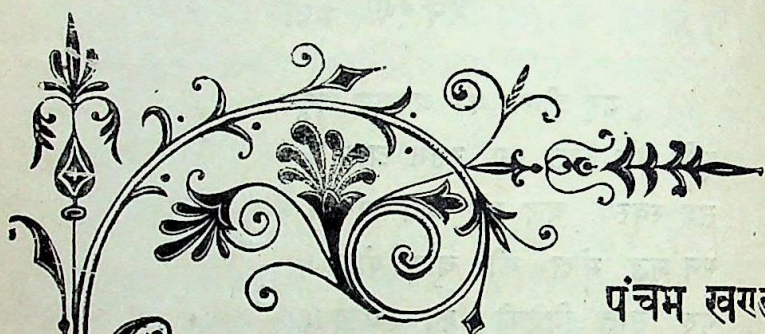
पंचम खण्ड

विषयों को विषवत् शीघ्र त्याग ।

विषयों में उलझे ये गो - मन ।
नहिं पाते शान्ति कभी इक छन ॥
इच्छा की अग्नी में प्रचण्ड ।
जलते रहते निशिदिन उदण्ड ॥
उर पीड़ित करते द्वेष राग ॥विषयों० ॥१॥

नित असन्तोष खिन्नता घिरी ।
भय शोक मोह वासना भरी ॥
विषयी जीवन शव सदृश जान ।
बन शीघ्र निर्विषय हो महान ॥
जग भोग रोग से कर विराग ॥विषयों०॥२॥

व्रत ब्रह्मचर्य ले तू पुनीत ।
सत्संग भक्ति की चल सुनीत ॥
इन्द्रिये - दमन मन - शमन साध ।
निज दिव्य रूप में ले समाध ॥
चलते फिरते नित परख पाग ॥ विषयों० ॥३॥

* सद्गुरवे नमः

बोधसार-सटीक

पंचम खण्ड

छन्द

नमों इष्ट साहेब गुरुवर कबीरम् ।
स्व पारख प्रकाशी परम् देव धीरम् ॥ १ ॥

परम इष्टदेव, गम्भीर, स्वतः, पारख-प्रकाशी श्रेष्ठ सद्गुरु श्री कबीर साहेब को नमस्कार है ॥१॥

नमों सन्त स्वामी गुरूदेव बोधक ।
हरो दुःख मेरा परम् पद के शोधक ॥ २ ॥

सन्त-प्रभु तथा बोध-दाता सद्गुरु को नमस्कार है । हे मोक्षपद के विवेकी ! हमारे अज्ञान-जनित दुःखों को हर लो ॥२॥

प्रखाओं जगत जाल खानी औ बानी ।
पड़ा हूँ मैं तामें नहीं दुःख जानी ॥ ३ ॥

संसार के खानी-वाणी बन्धनों की परख करा दो । मैं उसमें आसक्त होकर पड़ा हूँ, उसमें मैं अज्ञान-वश, दुःख नहीं जान पाता ॥३॥

नहीं चाहता हूं अनादी से भूला ।
छुड़ा दो गुरु जी महा चक्र शूला ॥ ४ ॥

मैं सदा-सर्वदा से भूला हूँ, मैं अपने को ठीक तरह से नहीं जानता । हे गुरुदेव जी ! जन्म-मरण के इस विशाल भूला-चक्कर से हमें छुड़ा दीजिये ॥४॥

ये पाँचों विषय मोह माया है गाँसे।
प्रबल बाम बंचक व बानो में फाँसे ॥ ५ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—ये पाँचों विषयों की मोह रूपी माया सब जीवों को ग्रस रखी है। बाम-बंचक और वाणी-बन्धन के प्रबल फांस ने जीवों को फँसाया है ॥५॥

मृगा मीन भँवरा पतंगज को देखो।
विषय एक में एक फँसता निरेखो ॥ ६ ॥

देखो ! मृगा, मछली, भंवरा, पतंगी तथा हाथी—ये पाँचों एक-एक विषय में फंस कर, मारे-बाँधे जाते दिखते हैं ॥६॥

है सपरस विषय काम हस्ती बँधाया।
मृगा कान से शब्द सुन के लुभाय ॥ ७ ॥

स्पर्श-विषय-काम में पड़कर हाथी बाँधा जाता है। मृगा कानों से मधुर बंशी-बेन आदि के शब्द सुनकर मोह जाता है, फिर मारा-बाँधा जाता है ॥७॥

पतंगी विषय रूप अग्नी में जरती।
रसास्वाद बश मीन बंशी में फँसती ॥ ८ ॥

पतंगे अग्नि के रूप विषय में जलते हैं। रस विषय की आसक्ति में पड़ कर मछली बंशी-काँटे में फंस जाती है ॥८॥

भ्रमर नाशिका गन्ध में कष्ट पाता।
नहीं भेद जाने असह दुख उठाता ॥ ९ ॥

नाक-द्वारा गन्ध-विषय में आसक्त होकर भंवरा मृत्यु रूपी कष्ट पाता है। 'मैं इन विषयों की आसक्ति में मारा जाऊंगा"—यह रहस्य न जान कर, जीव असह कष्ट उठाते हैं ॥९॥

हैं अज्ञान पाँचों फंसे जीव आपी।
मनुज ज्ञान ज्ञाता न सोचे है पापी ॥ १० ॥

उपर्युक्त पाँचों जीव अज्ञानी हैं, ये अपने आप विषयों में फँस जाते हैं परन्तु मनुष्य तो ज्ञाता-ज्ञान स्वरूप है, फिर भी यह पापी नहीं विचार करता ॥१०॥

"जरत पतंगी अज्ञ वश, मीन मांस के लोभ।
जानि बूझ हम विषय सों, विस्मय कर यह मोह।"

मरे एक में एक फँस के बेचारे।
मनुज के हैं पीछे तो पाँचों लगारे ॥ ११ ॥

उपर्युक्त बेचारे एक-एक जीव एक-एक विषय में फंस के मारे-बाँधे जाते हैं। मनुष्य के पीछे तो पाँचों विषय लगे हैं ॥११॥

पाँचों विषयों के भोग, मृग-तृष्णा के समान हैं। इनमें अनादिकाल से भ्रमते-भ्रमते जीव शान्ति नहीं पा रहा है। क्योंकि विषयों से कभी सन्तोष नहीं हो सकता। विषयासक्ति लेकर जीव कहीं भी जायेगा उसे दुःख घेरे ही रहेंगे।

जहाँ बेवकूफ वहाँ सैकड़ों फजीती

एक ग्राम में स्त्री और पुरुष दो प्राणी रहते थे। स्त्री का नाम फजीती और पुरुष का नाम बेवकूफ था। एक दिन दोनों में झगड़ा हुआ। स्त्री कहीं भाग गयी। पुरुष खोजने निकला। मार्ग में किसी ने पूछा—"किसको खोजते हो?" पुरुष ने कहा—"अपनी स्त्री को।" उसने पूछा—"तुम्हारी स्त्री का क्या नाम है?" पुरुष ने कहा—"फजीती।" उसने कहा—"तुम्हारा क्या नाम है?" पुरुष ने कहा—"बेवकूफ।" उसने कहा—"अरे यार! तुम एक फजीती को क्या खोजते हो? जहाँ बेवकूफ रहेगा; वहाँ सैकड़ों फजीती मिलेंगी।"

तात्पर्य यह है कि मनुष्य का अज्ञान यदि न जाय, तो वह जहाँ रहेगा; उसको कष्ट मिलता रहेगा। महान अज्ञान तो यह है कि दुःख-दायी विषयों से, सुख की लालसा करना। अतः दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये। विषय-वासना का सर्वथा त्याग करना परम अनिवार्य है।

कृपा एक गुरुदेव का है सहारा।
जो धारण परें सोंई हौंवे किनारा ॥ १२ ॥

उपर्युक्त विषयों से छूटने के लिये, एक सद्गुरुदेव की कृपा का ही आधार है। जो सद्गुरुदेव के सदुपदेशानुसार आचरण बनायेगा, वही इससे पार पावेगा ॥१२॥

हैं चैतन्य जड़ दोऊ वस्तू अनादी।
वो सम्बन्ध में भूल होती सदादी ॥ १३ ॥

अगणित चैतन्य जीव तथा चारतत्व जड़—ये दोनों पदार्थ अनादि हैं। जड़ के सम्बन्ध में जीव अनादिकाल से स्व-स्वरूप को भूले हैं ॥१३॥

है नर जीव के बाद कर्ता न कोई।
सो देखो परीक्षा भले करके सोंई ॥ १४ ॥

चारों खानियों के जीव समान हैं, तिसमें मनुष्य जीव बुद्धि-विवेक में सबसे श्रेष्ठ हैं। इसके ऊपर कोई कर्ता-मालिक नहीं है। इसके विषय में अच्छी तरह परीक्षा करके देखो ॥१४॥

ये कर्ता कर्म का शुभाशुभ है जोंई।
सो प्रत्यक्ष देखो नजर से तु लोंई ॥१५॥

जो पाप-पुण्य दो कर्म हैं—इनका कर्ता मनुष्य जीव ही है। जैसा करता है, वैसे फल भोगता है। ऐ लोगो! इसे विवेक-दृष्टि से प्रत्यक्ष करके देखो ॥१५॥

कौन स्वर्ग में गया कौन नरक में ?

एक सेठ के यहां दो पढ़े-लिखे आदमी नौकरी की आशा में आये। उनकी अन्य परीक्षा करके, बुद्धि की भी परीक्षा के लिये सेठ ने कहा कि—"आप दोनों व्यक्ति श्मशान की ओर जाओ। इधर से दो मुर्दों को अभी लोग दाह करने के लिये ले गये हैं। पता लगा आओ कि उन दो में कौन स्वर्ग में गया और कौन नरक में ?"

वे दोनों चल दिये। एक ने सोचा "जीव का स्वर्ग-नरक तथा शुभ-अशुभ गति का प्राप्त होना दूसरा कैसे जान सकता है ? यह कोई बाह्य नेत्र का विषय है नहीं। अच्छा चलो मुर्दे के साथवालों से पूछें।"

वह जाकर एक से पूछा—"यह बताओ! जो दोनों व्यक्ति आज मरे हैं; उनके जीव स्वर्ग में गये कि नरक में ?" उत्तर दाता क्रोध में कहा—"यह कौन जान सकता है। आप को जानना है, तो मरकर देख आइये।"

यह सुनकर उसको बड़ी झिझक हुई, और सोचा कि "सेठ ने कैसी बिना शिर-पैर की बात पूछी है।" जाकर सेठ से कहा—"सेठ जी! शरीर त्याग कर गये हुए जीव को कौन जान सकता है कि वह स्वर्ग में गया या नरक में गया।" सेठ जी हंस कर कहे—"अच्छा, आप जाइये; आप के लिए हमारे यहाँ स्थान नहीं है।"

दूसरा बुद्धिमान मनुष्य एक मुर्दे वालों की टोली में गया और उनकी बातों को सुनने लगा। उस टोली में से एक ने कहा—"अरे भाई! यह बड़ा भला आदमी था। बड़ा दयावान् था। जीवन भर परोपकार में रत रहा।" दूसरे ने कहा—"भाई! यह आदमी नहीं था, देवता था। इसके समान तो चार छः गाँव में कोई न मिलेगा। इसके मर जाने से हमारा गाँव अनाथ हो गया।"

उपर्युक्त बात सुनकर वह मनुष्य निश्चय कर लिया कि "इस मरे हुए मनुष्य का जीव अवश्य स्वर्ग में गया।" इतने में वह दूसरे मुर्दे की टोली में, उसकी बात सुनने गया। वहाँ एक कह रहा था—"अरे भाई! हमें तो श्मशान तक आने की इच्छा भी नहीं थी, परन्तु घर का आदमी होने से आना पड़ा। इसने हमें सदा दुःख ही दिया है।" दूसरे ने कहा—"आप तो अपनी ही गाते हैं, अरे! इसने किसको नहीं सताया, कौन-सा पाप इससे छूटा है। अच्छा किया मृत्यु ने इसे बुला लिया। इसके मर जाने से गाँव साफ हो गया।"

इतनी बात सुनकर उस चतुर मनुष्य ने निश्चय कर लिया कि 'इसका जीव नरक में गया।' अतः जाकर सेठ से कहा "कि जो मुर्दा

पहले गया है, उसका जीव स्वर्ग में गया और जो पीछे गया है, उसका जीव नरक में गया है!" सेठ ने पूछा—"तूने कैसे जाना?" बुद्धिमान ने अपनी परीक्षा की शैली बतायी। सेठ उसको बुद्धिमान जानकर, मुनीम के पद पर रख लिया।

सारांश—शुभ-कर्म करने वाला ही, पारलौकिक सुखरूप स्वर्ग को प्राप्त होता है। और जो अशुभ कर्म करता है। वह नाना दुःख रूप नरक को पाता है।

है ईश्वर खुदा आत्मा ब्रह्म माना।
वो व्यापक सकल जग्त में कह के साना ॥१६॥

ईश्वर, अल्ला मनुष्य जीव ही ने अनुमान करके मान लिया है। आत्मा-ब्रह्म को सम्पूर्ण चराचर जगत में व्यापक कहकर और मानकर जड़-चेतन एक में सान दिया है ॥१६॥

सो सबका हो कर्ता तुम्हीं जीव जानो।
ये कल्पित तुम्हारो तुम्हीं जीव मानो ॥१७॥

ईश्वर, ब्रह्म, व्यापक-आत्मा, अल्ला, खुदा, गाड—सबकी कल्पना करने वाला, सबका कर्ता तुम्हीं मनुष्य जीव हो। ये सब तुम्हारे मन की कल्पनायें हैं; तुम मनुष्य जीव ही ने इन्हें मान रखा है ॥१७॥

तुम्हारे बिना देखो निर्जीव सारे।
नहीं ज्ञान होता है जड़ में दिखारे ॥१८॥

विचार करके देखो! तुम जीवों के बिना, सब पदार्थ निर्जीव-जड़ हैं। जड़ तत्त्वों में तथा उनके कार्यों में जीव बिना तो ज्ञान होते देखा नहीं जाता ॥१८॥

"जीव बिना नहिं आतमा, जीव बिना नहिं ब्रह्म।
जीव बिना शीवो नहिं, जीव बिना सब भ्रम॥"

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—

शब्द

झगरा एक बढ़ो राजा राम। जो निरुवारे सो निरबान ॥१॥
ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया। बेद बड़ा कि जिन उपजाया ॥२॥

ई मन बड़ा कि जेहि मन माना। राम बड़ा कि रामहिं जाना ॥३॥
भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरै उदास। तीर्थ बड़ा कि तीर्थ के दास ॥४॥

अर्थः—"हे राजाराम—श्रेष्ठ मनुष्य! एक बड़ा भारी झगड़ा बढ़ा है। इसका जो निर्णय करे, वही कल्याण-पद पायेगा। ब्रह्म बड़ा है कि ब्रह्म की कल्पना जहाँ से खड़ी हुई, वह मनुष्य बड़ा है? वेद बड़ा है कि वेद रचयिता? यह मन बड़ा है कि मन का मानने वाला? हृदय-निवासी राम को छोड़ कर पृथक् कल्पित राम बड़ा है कि उसकी कल्पना को करने तथा जानने वाला बड़ा है? तीर्थों में अज्ञानी जीव सब मारे-मारे उदास होकर फिरते हैं। परन्तु तीर्थ बड़ा है कि तीर्थ का मानने वाला मनुष्य-जीव बड़ा है?"

तात्पर्य यह है कि कल्पित ब्रह्म की कल्पना करने वाला, वेद का रचने वाला, मन का मानने वाला, कर्ता-ईश्वर को थापने वाला, तीर्थों को मानने वाला – मनुष्य जीव ही, इन कृत्रिमों से श्रेष्ठ है। अपने "चिद्विलास" नामक पुस्तक में श्री सम्पूर्णानन्द जी ठीक ही लिखे हैं कि "जीव से बड़ा कोई नहीं है।"

एक उर्दू के कवि ने भी लिखा है—

"जाहिदे गुमराह का मैं किस तरह हमराह हूँ।
वह कहे अल्लाह है और मैं कहूँ अल्लाह हूँ॥"

'अर्थात् कोई जाहिद (परहेजगार-त्यागी) तो है, परन्तु गुमराह (भुलाने वाला-फँसाने वाला) है। तो मैं उसका हमराह (साथी) कैसे बनूँ? क्योंकि वह कहता है कि ईश्वर कहीं है और मैं कहता हूँ कि ईश्वर मैं स्वतः हूँ।'

श्री गान्धी जी 'मंगल प्रभात' नामक पुस्तक में कहते हैं 'ईश्वर सत्य है' ऐसा कहने की अपेक्षा, यह अधिक युक्त है कि 'सत्य ही ईश्वर है।'

वन से न लौटने की प्रतिज्ञा करके राम जाबालि से कहते हैं—

श्लोकः—सत्यमेवेश्वरो लोके सत्येधर्मः सदाश्रितः।
सत्य मूलानि सर्वाणि, सत्यान्नास्ति परं पदम्॥

(बाल्मीकीय रामायण अयो० सर्ग १०९ श्लोक १३)

अर्थ—'जगत् में सत्य ही ईश्वर है, सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य ही सबकी जड़ है। सत्य से बढ़कर दूसरा कोई परम् पद नहीं है।

सत्य को समझने के लिये किसी पोथी या पुरुष का पक्ष नहीं लेना चाहिये। तभी सत्य समझा जा सकता है। दो-दो मिलकर चार बालक-वृद्ध सबका कहा माना जाता है। दो-दो मिलकर पन्द्रह होता है—ऐसा किसी का कहा नहीं माना जा सकता।

कहा न मानो तो लिखा देख लो!

एक मनुष्य अपनी स्त्री को घर पर छोड़कर परदेश गया; और वह, वहाँ ५-७ वर्ष रह गया। स्त्री के कई बार पत्र देने पर भी पुरुष नहीं आया। तब एक बार बहुत दुखी होकर स्त्री ने पत्र लिखा, और उसमें एक वाक्य यह भी लिख दिया कि "मैं तुम्हारे रहते ही राँड़ हूँ।" जब पुरुष को पत्र मिला, तो वह पढ़कर रोने लगा। मोहल्ले वालों ने पूछा—"तुम क्यों रोते हो?" उसने कहा—"हमारी स्त्री राँड़ हो गयी।" लोगों ने कहा "अरे भोले भाई! तुम्हारे रहते हुए तुम्हारी स्त्री कैसे राँड़ हो गयी?" उसने कहा—"भैया कहा न मानो, तो लिखा देख लो।" ऐसा कहकर पत्र को लाकर दिखाने लगा।

सिद्धान्त यह है कि जब कोई विवेकवान् कल्पना-भ्रान्ति का खण्डन करके सत्य समझाते हैं। तब भूले लोग कहते हैं कि "महाराज! कहा न मानो तो पुराणों-पोथियों में लिखा देख लो।" यह विवेक नहीं करते कि पोथियों में किस दृष्टि से लिखा है। अनेक कल्पना की बातें भी लोग लिख देते हैं। बिना विवेक किये उसे मान लेना, अन्धकार में भटक जाना है। अतएव कहीं की कोई लिखी हुई बात भी विवेक की कसौटी पर कसकर ही मानना चाहिये।

कल्पित देवी-देव, भूत-प्रेत की मान्यता करके बकरा-सूअर आदि का बलि देना—इस कर्म का त्याग तो मनुष्य मात्र को तत्काल करना चाहिये! परन्तु जब तक विवेकी-पारखी सन्त न मिलें एवं स्व-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान जब तक न हो। तब तक ईश्वर की मान्यता धर्म-

वर्द्धक है। जब तक सूर्य उदित नहीं होता; तब तक चिराग-गैस से काम लेना कोई अनुचित काम नहीं। सूर्य के उदय होने पर चिराग-गैस अपने आप निष्प्रयोजन हो जायंगे। इसी प्रकार जब तक स्व-स्वरूप ज्ञान नहीं होता। तब तक कल्पित ईश्वरादि मानकर धर्म-सदाचरण में चलना कोई हानिप्रद नहीं हैं। फिर स्व-स्वरूप चैतन्य का ज्ञान होने पर ईश्वरादि की कल्पना अपने आप छूट जायगी।

फिर तो "जीव पाव निज सहज स्वरूपा" "ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस ?" (मानस रामायण) "आत्मन्येवात्मना तुष्टः" अर्थात् 'आत्मा से ही आत्मा में सन्तुष्ट, (गीता) "गुणे ष्वसक्त धीरीशो' अर्थात् 'समर्थ स्वतन्त्र ईश्वर वह है, जिसकी चित्तवृत्ति विषयों में नहीं जाती।" (श्रीमद्भागवत) एवं "ऐसे शब्द बतावें जीव को" "एक जीव कित कहीं बखानी" "जो जानहु जिव आपना" "जीवहिं मरण न होय" "कहहिं कबीर भूल की औषध पारख सबकी भाई।" "पारख बिना विनाश है।" इत्यादि भाव आ जाता है।

महा महों माया है जीवन फँसाया।
बचे कोई गुरु की दया जिसने पाया ॥१६॥

मोह की बलवती माया ने जीवों को फंसा रखा है। जिसने सद्गुरु की कृपा का आदर किया, वही इस माया से बच सका ॥१६॥

बिना ज्ञान गुरु के भिखारी है जीवन।
बिना भक्ति वैराग्य मिथ्या है जीवन ॥२०॥

सद्गुरु के स्वरूपज्ञान बिना, जीव विषय का भिक्षुक बना है। भक्ति-वैराग्य बिना, यह मानव जीवन व्यर्थ है ॥२०॥

दरिद्र कौन ?

एक महात्मा गरीबों को पैसा बाँट रहे थे। एक राजा हाथी पर बैठा हुआ, उसी ओर आ निकला। महात्मा ने एक मुट्ठी पैसा राजा के हौदे में फेंक दिया। राजा ने कहा—"महात्मन्। ये पैसे किसी गरीब को दीजिये। हमारे पास क्यों फेंक दिये ?" महात्मा ने कहा—

"मैं तो आप को गरीब ही जान कर, आप के पास पैसा फेंका है।" राजा ने कहा—"मैं तो गरीब नहीं, राजा हूँ। मेरे पास राज्य है।" महात्मा ने कहा—"जितना राज्य-धन आपके पास है, उससे अधिक चाहते हैं कि नहीं ?" राजा ने कहा—"अधिक क्यों नहीं चाहते।" महात्मा ने कहा—"इसीलिये आपको मैं दरिद्र समझ कर, आपके सामने पैसा फेंका है। जिसके हृदय में नाना चाहनायें हैं, वही दरिद्र है।" इस बातको सुनकर राजा लज्जित हो गया।

शिक्षा—वास्तव में इच्छा ही दरिद्रता है। जो इच्छा से रहित है, वही धनी है।

चौपाई

रंक सो कौन, जेहि तृष्णा चोखी।
धनी सो को, सब विधि सन्तोषी॥

जिसे भास होता है संसार में सुख।
उसे बन्ध जानो न छुटता कभी दुख॥२१॥

संसार के विषय-भोगों में जिसे सुख का भास होता है, उसको जानो, वह माया में बँधा है। इस धारणा के त्यागे बिना उसका दुःख कभी नहीं छूटता॥२१॥

जिसे दुःख दृष्टी बनी है जगत में।
सो बन्धन उसी का है छुटता क्षणक में॥२२॥

संसार के विषय-भोगों में जिसकी दोष-दृष्टि सदैव बनी रहती है। उसी का बन्धन क्षणमात्र में छूट जाता है॥२२॥

गले की है फाँसी जो आशा है करता।
नहीं पूर होवै जो तृष्णा में जरता॥२३॥

जो यह जीव संसार के प्राणी-पदार्थों की आशा करता है, यही इसके गले की फाँसी है। क्योंकि सांसारिक आशा कभी पूरी नहीं पड़ती; यदि कुछ पूरी पड़ गयी, तो तृष्णा की अग्नि बढ़ जाती है और जीव उसमें जलने लगता है॥२३॥

ये बालक युवा वृद्ध तीनों में देखो।
सो तृष्णा वशीभूत सबको निरेखो ॥२४॥

बालक, जवान तथा बुड्ढे—तीनों में देखिये; सब तृष्णा के वशीभूत नाच रहे हैं ॥२४॥

विषय भोग सबको नचाता जगत में।
बढ़ी चाह जस घृत अग्नी पड़त में ॥२५॥

विषय-भोगों की वासना ही, संसार में सब जीवों को नचा रही है। विषय-भोगों से इच्छा उसी प्रकार बढ़ जाती है, जैसे आग में घी पड़ने से आग बढ़ती है ॥२५॥

पढ़ वो अपढ़ और मूरख सयाना।
विषय काम में पड़ के होते दिवाना ॥२६॥

विद्वान्-अविद्वान्, मूर्ख और बुद्धिमान—काम-विषय में पड़कर, सब पागल बन जाते हैं ॥२६॥

विषय वासना त्यागि वो मन की भ्रान्ती।
मिटै दुःख वो दैन्य हो जीव शान्ती ॥२७॥

विषय की वासनायें तथा मन का सन्देह-मोह त्याग देने पर ही, दुःख-दीनता मिटकर जीव को शान्ति मिलेगी ॥२७॥

मन मारना ही मुक्ति का मार्ग है

एक मनुष्य अपने गुरु के दर्शनार्थ चला। उसके यहाँ एक पालतू तोता था। तोता ने कहा—आप अपने गुरु के दर्शनार्थ जाते हैं, तो हमारे लिये यह पूछ आना कि मैं जब से पिंजड़े में पड़ा, तब से नित्य 'राम-नाम' लेता हूँ, परन्तु इस कारावास से मोक्ष नहीं मिलता। फिर हमारे उद्धार का कौन मार्ग है?

वह मनुष्य जब अपने गुरु के पास पहुँचा, तब दण्डवत्-बन्दगी के पश्चात्, तोता का प्रश्न गुरु के समक्ष उपस्थित किया। तोता का प्रश्न सुनकर गुरु महाराज अचेत होकर गिर पड़े, और उनका मुर्दा का-सा

रूप हो गया। चेला डर गया, और अपने घर चला आया, तथा तोता से कहा—भाई! तेरे प्रश्न करते ही गुरु जी अचेत मुर्दा के समान हो गये; कुछ उत्तर ही नहीं दिये। गुरु के संकेत रूप उत्तर को तोता तुरन्त समझ गया, और वह भी झट मुर्दा के समान अचेत होकर पिजड़े में गिर पड़ा।

वह मनुष्य बहुत आश्चर्यित होगया, और सोचने लगा "यह कौन-सी लीला है कि तोते का प्रश्न सुनकर उधर गुरुजी अचेत हो गये; और गुरु जी का सन्देश पाकर इधर तोता भी अचेत हो गया।" निदान पिजड़े में से तोता को निकाल कर देखा, तो ज्ञात हुआ कि यह मर गया है। अतः उसको उसने बाहर डाल दिया। तोता जैसे अवसर पाया, तैसे उड़कर वृक्ष पर जा बैठा।

उपर्युक्त दृष्टान्त कल्पित है। इसका तात्पर्य यह है कि केवल किसी नाम-जप या बाहरी कर्मकाण्ड करने से इस संसार-शरीर रूपी पिजड़े से सदैव के लिये जीव मुक्त नहीं हो सकता। मोक्ष-प्राप्ति के लिये सुगम-मार्ग यह है कि संसार से साधक मर जाय। अर्थात् अपने मन की अहन्ता-ममता और मानन्दी को सर्वथा समाप्त करके संसार से निष्काम हो जाय। शुभाशुभ संसार की समस्त चेष्टाओं से पूर्ण निराश हो जाने पर ही, संसार-बन्धन से जीव छूटता है। इस प्रकार जिसका मन मर गया, उसको संसार किसी प्रकार भी नहीं बाँध सकता।

महा मूढ़ मानव है ममता जो करता।
हो स्वाहा रतन जन्म क्षण में है जरता ॥२८॥

यह मनुष्य महान् अज्ञानी है, जो छूटने बाले प्राणी-पदार्थों की ममता करता है। उत्तम मानव-जन्म को क्षणिक विषयाग्नि में हवन करके, जल मरता है ॥२८॥

कृमी कीट पशु पक्षि की भाँति जानो।
विशेषता न कुछ भी बड़ा दुःख मानो ॥२९॥

कृमि-कीट, पशु-पक्षी के समान-ही, विषयी मनुष्यों को समझो।

उससे वह कुछ अधिक नहीं है, विषयी मनुष्य बड़े दुःख के दलदल हीं में मानो फंसा है ॥२६॥

मुमुक्षू अगर मोक्ष चाहे जगत् से ।
करै प्रेम निश्छल विवेकी गुरू से ॥३०॥

मुमुक्षु यदि संसार-बन्धनों से सर्वथा अपनी मुक्ति चाहे; तो विवेक सम्पन्न वैराग्यवान् सद्गुरु की निष्छल भक्ति करे ॥३०॥

शत्रु का पैर कुल्हाड़ी से काटूँगा ?

एक ग्राम में दो भाई रहते थे। कुछ दिनों में दोनों में फूट हो गयी और आपस में वैमनस्य रहने लगा। फिर दोनों में बाँट हो गया। उन दोनों ने सब वस्तुयें जब बाँट लीं, तब कहने लगे कि "गुरुजी को भी बाँट लो।" दोनों में तय हुआ कि गुरुजी का दाहिना पैर बड़ा भाई अपना माने, और बायां पैर छोटा भाई अपना माने।

कुछ समय के पश्चात् गुरु जी आये। सामने बड़े भाई का मकान पड़ता था। गुरुजी बड़े भाई के मकान पर उतरे। उसने आसन दिया और जल लाकर चरण पखारने लगा। दाहिना पैर जब धो चुका, गुरुजी ने बायाँ पैर भी उसके हाथ में देना चाहा। गुरुजी का बायां पैर उसके हाथ में लगते ही, वह उलझ गया और उनके पैर में एक डण्डा मारते हुए कहा—"गुरुजी! आपने यह ठीक नहीं किया कि शत्रु का पैर हमारे हाथ में छुवा दिया।"

गुरुजी बेचारे लंगड़े-लंगड़े भागते-भागते छोटे भाई के द्वार पर पहुंचे। छोटा भाई सारा मर्म जब जान लिया, तब बड़े भाई पर क्रोधित होकर उसने कहा—"यदि शत्रु ने हमारे (बाँयें) पैर को डण्डा से मारा है, तो मैं उसके (दाहिने) पैर को कुलहड़ी से काटूँगा।" ऐसा कहकर कुल्हाड़ी लेने घर में दौड़ा। गुरुजी बेचारे वहाँसे भागकर अपनी जान बचायी।

उपर्युक्त दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि आपसी वैर-भाव की गर्मी, साधु-गुरु पर नहीं उतारना चाहिये। दो सेवकों में आपस में वैर रहता

है। साधु-गुरु के आने पर एक चाहता है, हमारे यहाँ गुरु जी का आसन रहे।

पहले जिसके द्वार पर गुरुजी आ गये, दूसरा समझता है, "गुरुजी उसका पक्ष करते हैं। यदि दूसरे के यहाँ पहले उतरे, तो पहला गुरुजी से कुछ उदास हो जाता हैं। यह अज्ञान कहीं-कहीं पाया जाता है। यह भक्ति का ठीक लक्षण नहीं है। अतएव आपसी वैरभाव की मलीनता त्यागकर, साधु-गुरु के पधारने पर; निष्छल-निष्कपट होकर सेवा-भक्ति करनी चाहिये।

> सो चारों तरफ दुःख ही दुःख देखै।
> नहीं सुक्ख किञ्चित जगत में है लेखै ॥३१॥

और वह (मुमुक्षु) चारों ओर क्लेश-ही-क्लेश समझे। वह संसार में किञ्चित् सुख न माने ॥३१॥

शिक्षा—जब सर्वत्र दोष-दृष्टि होकर दृढ़ वैराग्य हो जाता है, तब बड़े-बड़े राजे-रजवाड़े भी सांसारिक माया-जाल से विरक्त हो जाते हैं। नीचे श्री महावीर स्वामी का संक्षिप्त उदाहरण दिया जाता है; मनन करें।

श्री महावीर स्वामी का वैराग्य

मगध प्रदेशवर्तीय वैशाली नगरी (कुण्डन पुर) के राजा सिद्धार्थ तथा रानी त्रिशला के यहाँ चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को श्री महावीर स्वामी ने जन्म ग्रहण किया। महावीर स्वामी राजकुमार थे। सब प्रकार सांसारिक वैभव से सम्पन्न थे। विवाह हो चुका था। रूप-यौवन तथा योग्य गुण सम्पन्न राजकुमारी यशोदा, धर्मपत्नी के रूप में प्राप्त थी। किसी भी सांसारिक भोग की कमी नहीं थी। परन्तु उनका हृदय उदास था; वे सांसारिक जीवन से बेचैन थे।

दो वर्ष तक गृहस्थ जीवन में ही उन्होंने तपस्वियों जैसी साधना-तपस्या की अन्ततोगत्वा तीस वर्ष की भरी जवानी में मार्गशिर (अगहन) कृष्णा दशमी के दिन मगध के विशाल साम्राज्य वैभव पर लात

मारकर, वैराग्य का मार्ग पकड़ा। भोग-विलास में सदैव मस्त रहने वाले धनवान् नवजवानों पर भी महावीर स्वामी का प्रभाव पड़ा तथा कितने ही नवयुवक वैराग्य-मार्ग अपनाये।

इस संसार में कुछ नहीं रखा है, जिसको इस गन्दे तथा सार-हीन जगत् से वैराग्य हो गया है, वही बड़भागी है। सद्गुरु श्री पूरण साहेब कहते हैं :—

दोष दृष्टि जबहीं भई, तब उपज्यो वैराग।
दृढ़ निर्वेदन जाको भयो, सोइ मुमुक्षु बड़ भाग॥

करै त्याग विषवत् विषय को निरन्तर।
सु शिक्षा यही सार गुरु का है मन्तर॥३२॥

विषय-भोगों को विष के समान सदैव त्यागता रहे। सद्गुरु का यही शिक्षा-सार तथा मन्त्र है॥३२॥

है कर्तब मनुज का प्रथम यह विचारै।
वो दुर्मति सकल त्यागि सद्गुण को धारै॥३३॥

सम्पूर्ण दुर्बुद्धि को त्यागकर, सद्गुण धारण करना—यही मनुष्य का अपना प्रथम कर्तव्य है। यह विचार करे॥३३॥

दुराचार दुर्गुण सदा दुःखकारी।
तिसे त्याग कर होय सन्तत सुखारी॥३४॥

चोरी, हिंसा, व्यभिचार, मद्य-मांस भक्षण आदि दुराचार और काम, क्रोध, लोभादि दुर्गुण—ये सदा दुःखदायी हैं। इन्हें सर्वथा त्यागकर निरन्तर सुखी होना चाहिये॥३४॥

परीक्षा हमेशा करै अपने मनकी।
भरोसा न क्षण भर रखे मिथ्या तनकी॥३५॥

अपने आप द्रष्टा स्वरूप की स्थिति के लिये सदैव मनकी परख किया करे; और पानी का बुलबुला रूप मिथ्या शरीर का तो क्षणमात्र भी आशा-भरोशा न रखे॥३५॥

श्री रामजी वन में भरत से कहते हैं—

श्लोक—सर्वे क्षयान्तानिचयाः पतनान्ताः समुच्छयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्ता च जीवितम् ॥
(वा० रा० अ० का० सर्ग १०५ श्लोक० १६)

अर्थ--'समस्त संग्रहों का अन्त विनाश है। लौकिक उन्नतियों का अन्त पतन है। संयोग का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त मरण है।'

तारा को समझाते हुए हनुमान जी कहते हैं--

श्लोक--शोच्याशोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे।
कश्च कस्यानु शोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन बुद्बुदोपमे ॥
(वा० किष्कि० कां० सर्ग २१ श्लो० ३)

अर्थ—'तुम स्वयं शोचनीया हो, फिर दूसरे किसको शोचनीय समझकर शोक कर रही हो ? स्वयं दीन होकर दूसरे किस पर दया करती हो ? पानी के बुलबुले के समान इस शरीर में रहकर कौन जीव किस जीव के लिये शोचनीय है ?'

निकल श्वास जावे कभी भी न आवै ।
सो याते सदा प्रेम गुरु पद में लावै ॥३६॥

जहाँ प्राण निकले, तहाँ कभी इस शरीर में पुनः आने वाले नहीं। अतएव सर्वदा स्व-स्वरूप के प्रेम में ही लवलीन रहना चाहिये ॥३६॥

जु बिरही बने जीव कल्याण पद का ।
वो नाशै सकल मोह अज्ञान मनका ॥३७॥

जीव को मोक्ष-पद की प्राप्ति के लिये ही प्रेमी बनना चाहिये। और सम्पूर्ण मन के अज्ञान तथा मोह का प्रयत्न पूर्वक नाश करना चाहिये ॥३७॥

तजै लक्ष्य बाहर न सत्ता को देवै ।
हो अन्तर मुखी वृत्ति निज में समोवै ॥३८॥

शान्ति-साधक को चाहिये कि वह अपना चित्त बाहर न ले जाय

तथा मन-स्मरणों में अपना बल न दे। अपनी चित्त-वृत्ति को अन्तरमुख करके, स्व-स्वरूप में शान्त होता रहे ॥३८॥

मन-साँप को मारो

एक साधक अपने गुरु से जाकर निवेदन किया कि "हे सद्गुरुदेव ! शान्ति कैसे मिले ?" गुरु ने कहा—"तू जाकर छः महीने एकान्त में साधन-भजन कर, फिर पीछे से आकर मेरे से प्रश्न कर, तब मैं उत्तर दूँगा।"

वह जाकर एकान्त में साधन-भजन करने लगा। छः महींने में जब एक दिन रह गया। तब गुरु ने एक भंगिनी को बुलाकर उससे कहा—"तू ऐसा कर कि गाँव के बाहर जंगल में एक पर्णकुटी बना कर जो साधु रहता है। वह कल स्नान करके जब मेरे पास आने लगे। तब तू मार्ग में झाड़ू लगाना आरम्भ कर देना और खूब धूल उड़ाना। यह उपाधि देखकर, साधु को जो चेष्टा होगी, वह आकर मेरे से कहना।"

भंगिनी ने ऐसा ही किया। अर्थात् छः महीने की अवधि समाप्त करके, शान्ति-प्रिय अर्थ प्रश्न करने के लिये, स्नानादि शुद्धता करके, साधु जब गुरु के पास चला, तो भंगिनी ने मार्ग में बड़ी धूल उड़ायी। यह देखकर वह साधु मारे क्रोध के जल उठा और कहा—"अरे मूर्खा भंगिनी ! तू नहीं देखती कि मैं तपस्वी स्नान करके, गुरु के पास जा रहा हूँ। तू कितनी दुष्टा, हरामजादी और नीच है।" इस प्रकार कहते हुए दो-चार गालियाँ दी।

भंगिनी जाकर गुरु को साधु का क्रोध प्रकट करना बतला दिया। इधर साधु-जलभुनकर बेचारा पुनः स्नान किया और गुरु के पास गया। गुरु को सादर बन्दगी, दण्डवत् करके शान्ति-प्राप्ति के लिये प्रश्न किया। गुरु ने कहा—"भाई ! तेरा मन-साँप तो बड़ा विषधर है। अभी तो वह जरा भी नहीं मरा। जा छः महीने पुनः साधना कर ! फिर पीछे प्रश्न करने आना।"

वह साधु पुनः जाकर साधना में लग गया। छः महीने में जब एक दिन रह गया। तब गुरु ने पुनः उस भंगिनी को बुलाकर कहा—

"अबकी बार कल जब स्नान करके साधु हमारे पास आने लगे, तो तू पुनः मार्ग में धूल उड़ाते हुए झाड़ू लगाना और झाड़ू को उसके अंग में छुवा देना।"

दूसरे दिन जब साधु स्नान करके गुरु के पास चलने लगा। तब भंगिनी ने ऐसा ही किया। अर्थात् धूल उड़ाते हुए झाड़ू लगाने लगी और झाड़ू को साधु के अंग में छुवा भी दिया। अबकी बार साधु ने तो बहुत सम्हाला! परन्तु इतना कहा—"तू कैसी बुद्धि-हीन है, जो मुझ पवित्र साधु के ऊपर धूल उड़ाती है?"

साधु की इस उत्तेजनामय चेष्टा को भंगिनि जाकर गुरु को बतायी। जब साधु पुनः स्नान करके गुरु के पास पहुँचा और शान्ति-प्राप्ति के लिये प्रश्न किया। गुरु ने कहा—भाई! तेरा मन-साँप अधमरा तो हो गया है। परन्तु अभी पूरा मरा नहीं है। जा! पुनः छः महीने साधना करके उसे भलीभाँति मार।"

साधु जाकर पुनः साधना में लग गया। छः महीने में जब एक दिन बाकी रहा। तब गुरु ने पुनः भंगिनि को बुला कर कहा—"अबकी बार कल वह साधु जब स्नान करके, हमारे पास आने लगेगा। तब तू मार्ग में उसके ऊपर एक टोकरी कचड़ा डाल देना, और उसकी चेष्टा मेरे से बताना।"

साधु जब स्नान करके गुरु के पास जाने लगा। तब मार्ग में भंगिनि पीछे से एक टोकरी कचड़ा उसके शिर पर डाल दी। वह साधु उस भंगिनि के आगे शिर झुका दिया और कहा—"माँ! तू ही हमारा पथ-प्रदर्शक-गुरु है। तूने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया।"

भंगिनि जाकर गुरु से साधु के भाव को बतायी। जब साधु स्नान करके गुरु के पास गया। तब गुरु ने कहा—"बेटा! अब तुम्हारा मन-साँप विष-रहित हो गया है। अब तेरे को शान्ति मिली-मिलायी है।" इस प्रकार शिष्य की प्रशंसा करके गुरु ने शिष्य को स्वरूप-ज्ञान तथा स्वरूप-स्थिति का उपदेश दिया।

सार यह है कि कल्याण-इच्छुक को शान्ति की प्राप्ति के लिये मन

की सूक्ष्म वृत्तियों तक का भलीभाँति दमन करना चाहिये। मन के मुर्दा होने पर ही, अविचल शान्ति मिलती है। श्री गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज वैराग्य संदीपनी में कहते हैं—

"जो कोइ कोप भरै मुख बैना। सनमुख हतै गिरा सर पैना।
तुलसी तऊ लेश रिस नाहीं। सो शीतल कहिये जग माहीं॥"

अर्थ—'यदि कोइ क्रोध भरे अपने मुख से तीखे वचन रूपी वाण सम्मुख मारता हो। उसको सुन कर भी जिसके मन में लेश मात्र क्रोध नहीं होता--वह शीतल अर्थात् शान्त है।'

तभी मुक्त जीवन का है सुक्ख पाता।
सकल भास ताके हैं क्षण में नशाता॥३६॥

स्मरणों को छोड़-छोड़ कर, स्व-स्वरूप में शान्त होते रहने से ही, साधक जीवन्मुक्ति का निश्चल सुख पाता है। उसकी सम्पूर्ण विषयासक्ति क्षण ही में नष्ट हा जाती है॥३६॥

लगातार अभ्यास याही जो करता।
अकेला सो अन्तिम निराधार रहता॥४०॥

मन-स्मरणों को छोड़-छोड़ कर, स्व-स्वरूप में शान्त होते रहना—यही अभ्यास निरन्तर एकरस जो करता रहता है। वह अन्त में अपने आप असंग रह जाता है। जहाँ सम्पूर्ण दृश्य-प्रपंच का आत्यन्तिक अभाव है॥४०॥

लावनी

जीव अचल अविनाशी जानो जड़ से सदा निनारा है।
जगत ब्रह्म मानन्दी मिथ्या भूल अनादी धारा है॥
चारि खानि चौरासी भरमत जीव गर्भ वश हारा है।
कर्म शुभाशुभ छोड़ि के प्यारे निज में रहो सुपारा है॥१॥

जीव को निश्चल तथा अविनाशी समझो, वह जड़-शरीर से सर्वथा पृथक् है। प्रत्यक्ष पंचविषय-जगत् तथा परोक्ष कल्पित ब्रह्म की अहन्ता-ममता व्यर्थ है; स्व स्वरूप की भूल-वश अनादि काल से

जीव, जन्म-मृत्यु की धारा में बहता है। जीव चारों खानियों में भ्रमता, गर्भवास के वशीभूत होता; इस प्रकार यह अपने को दुःखों में हार गया है। पाप-पुण्य कर्मों की वासना त्याग कर, तथा स्व-स्वरूप में स्थित होकर ही, हे प्यारे! जगत्-सिन्धु से बचोगे ॥१॥

देखो जगत का नाता झूठा कैसा मोह फँसाई है।
मात पिता सुत नारि में ममता कहता मेरा भाई है॥
राजा राज हुकूमत सैना सम्पति महल भराई है।
यह सब नाटक जीवहिं करता लीला अधिक बढ़ाई है॥२॥

विचार कर देखो! संसार का सब सम्बन्ध झूठा है, परन्तु फिर भी सब जीव कैसे मोह में फंसे हैं? माता-पिता, स्त्री-पुत्र तथा भाई में ममता करके, अपना-अपना कहते हैं। राजा के राज्य, शासन, फौज, धन-ऐश्वर्य से भरे हुए महल-मन्दिर--यह सब अधिक लीला बढ़ाकर जीव ही खेल करता रहता है॥२॥

जहँ तक संग्रह जग में देखो कार्य अनेक दिखाई है।
पंच विषय के रूप रंग सब मानव आप भुलाई है॥
देखे सुने भोग जो भोगे दिल में वहै जनाई है।
सुख दुख राग द्वेष मन चिन्ता तैसे सन्मुख आई है॥३॥

जहाँ तक संसार में अनेक कार्य-पदार्थों के संग्रह दिखलाई देते हैं। सभी पंच विषय के रूप चमत्कार हैं। इसी में अपने आप को मनुष्य भूलता है। देखे, सुने और भोगे हुए भोगों के स्मरण ही हृदय में होते रहते हैं। तदनुसार ही सुख-दुःख, मोह-वैर तथा मानसिक चिन्तायें--जीव के सम्मुख आती रहती हैं॥३॥

विषय पिपासा ओसहि जानो तृषा कभी न बुझाई है।
अस्ति श्वान जिमि चाटत मूरख निज मुख श्रोणित आई है॥
तैसे भोग क्रिया करि कामी अपनी शक्ति गँवाई है।
लखै न तेज आपना उन्मत भूल सो अधिक समाई है॥४॥

ओस-कण चाटने से जैसे प्यास नहीं बुझती, तैसे समझो विषय भोग से इच्छा की पूर्ति नहीं होती। जैसे मूर्ख कुत्ता सूखी हड्डी को नोचता या चाटता है। कुत्ते के निजमुख से ही रक्त निकलता है और वह समझता है कि यह स्वादिष्ट रक्त हड्डी से आता है। इसी प्रकार कामुक भोग-क्रिया करके, अपनी शक्ति रूप वीर्य को ध्वंस कर विषय में सुख मानता है। अपने सुख को दूसरे में समझता है। यह कामान्ध पागल मनुष्य अपने श्रेष्ठ प्रभाव को नहीं देखता, इसमें अधिक भूल-दृष्टि समा गयी है ॥४॥

विद्युत प्रभा क्षणिक सुख जग का झूठा भास टिकाना है।
इन्द्रजाल वत् मन कल्पित सब कौतुक बाल भ्रमाना है॥
समय वृथा सब होत है उसका बिना ज्ञान गुरु ध्याना है।
सारासार विवेकी उर में तबहिं मोक्ष पद पाना है॥५॥

संसार के विषय-सुख विजली के चमकवत् अत्यन्त क्षणिक हैं, इनमें सुख का निश्चय करना व्यर्थ है। इन्द्रजाल के समान सब सम्बन्ध मनः-कल्पित हैं, बालक के खेलवत् संसार-प्रपंच में भटकना बुद्धिमानी नहीं है। सद्गुरु से स्व-स्वरूप का ज्ञान पाकर, उसमें ध्यान जंचे बिना, मनुष्य का उत्तम समय सब अनावश्यक चला जाता है। असत्य शरीर तथा सत्य चैतन्य स्वरूप का विवेक हृदय में करके जब साधक दृढ़ विवेकी बन जाता है, तभी वह मुक्ति पद पाता है ॥५॥

जड़ चेतन का करै विवेचन अवगुण व्यसन हटाई है।
हिंसा चोरी विषय विकारी ईर्षा मान नशाई है॥
धोखा कपट क्रोध न कीजै निन्दा गाली बहाई है।
झूठ बोलना चुगुली करना धर्म न नर का भाई है॥ ६॥

जड़-चेतन का निर्णय करे, दुर्गुण तथा दुर्व्यसनों को त्याग दे। जीवघात रूप हिंसा, चोरी राग-द्वेष-उत्पादक विषय, ईर्ष्या, अभिमान मिटा दे। धोखा देना, छल करना छोड़ दे; क्रोध न करे, किसी की

निन्दा न करे, गाली देना छोड़ दे। हे भाई! असत्य भाषण करना तथा चुगुली करना—ये भी मनुष्य के धर्म से दूर हैं, अतः त्यागने योग्य हैं ॥६॥

उपर्युक्त समस्त दुर्गुणों का त्याग करते हुए, चुगुली करना तथा चुगुली सुनना दोनों त्यागे। चुगुलखोर की सुनने से फूट होती है। यहाँ इस विषय में एक दृष्टान्त मनन कीजिये।

चुगुलखोर की न सुनिये

एक ग्राम में एक स्त्री पुरुष—दोनों प्राणियों की अच्छी पटती थी। एक मक्कार ने सोचा "इन दोनों में फूट डालनी चाहिये।" उसने स्त्री से जाकर कहा—"तुम्हारा पुरुष तो पूर्व जन्म का 'लोनिया' (एक नीच जाति का) है।" स्त्री ने पूछा—"आप कैसे जाने?" मक्कार ने कहा—"तुम्हारे पुरुष के शरीर के लक्षणों को मैंने देखा है। तुम्हें विश्वास न हो, तो रात में उसके सो जाने पर उसकी पीठ जीभ चाटकर देखो; वह खारा-खारा लगेगा।"

इधर इस मक्कार ने पुरुष से जाकर कहा—"आप की स्त्री तो पूर्व जन्म की कुतिया है; ऐसा उसके लक्षणों से ज्ञात होता है। तुम्हें विश्वास न हो, तो रात में सोने की नकल करके देख लो; सो जाने पर वह तुम्हारे शरीर को अवश्य चाटती होगी।"

रात में जब दोनों एकत्र हुए, तब पुरुष ने सोने की नकल की। स्त्री समझी, पति सो गया। अतः वह भी परीक्षार्थ पुरुष की पीठ चाटना आरम्भ की। पीठ चाटने से खारा लगा। क्योंकि हर मनुष्य की त्वचा पर खारापन होता है। परन्तु यह भेद न जानकर स्त्री को दृढ़ निश्चय हो गया कि यह 'लोनिया' है। उधर मक्कार की बात "स्त्री का कुतिया होना" पुरुष को भी निश्चय हो गया और क्रोध में भरकर कहा—"हट कुतिया कहीं की!" स्त्री ने कहा—भाग दाढ़ीजार लोनिया!" इस प्रकार दोनों में झगड़ा तथा मार-पीट आरम्भ हो गया।

इस दृष्टान्त से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि फूट डालने वाले

मक्कार तथा चुगुलखोर की बात न सुननी चाहिये। बिना ठीक से परीक्षा किये, किसी को बुरा मान लेना—अपनी भूल का परिचय देना है।

सदाचार गहिके हो मानव तबहीं तेरी भलाई है।
दुर्गुण दुराचार दुख सागर तामें सबहि डुबाई है॥
तामस राजस बढ़ा अधिक जग कलह अपार उपाई है।
भक्ष्याभक्ष्य विचार त्यागि के मांस मद्य अपनाई है॥ ७॥

अच्छे आचरणों को धारण करके मनुष्य बनो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा। कामादिक दुर्गुण तथा हिंसादि दुराचार, तो दुःखों के समुद्र हैं, इसी में सब जीव डूबते हैं। संसार में राजस-तामस अधिक बढ़ गये हैं; सर्वत्र झगड़ा, राग-द्वेष उत्पन्न होते रहते हैं। खाने योग्य तथा न खाने योग्य पदार्थों का विचार त्यागकर अधिक लोग मद्य-मांस ग्रहण करने लगते हैं॥७॥

धर्मवान् जो मनुष्य दयालू सदाचार को गहते हैं।
शुद्धाचार विचार से रहते हितकर बचन को कहते हैं।
अपने सम सब जानि जीव को कोई को नहीं दुखाते हैं।
ऐसे महापुरुष जग में जो तारि स्वयं तर जाते हैं॥ ८॥

जो धर्मवान् दयालु मनुष्य हैं, वे अच्छे आचरण को ही सदा ग्रहण करते हैं। शुद्ध आचार-विचार से रहते तथा सबसे हितमित-प्रिय वचन बोलते हैं। अपने ही सदृश सब चलते-फिरते जीवों को जानकर, किसी को भरसक किंचित् दुःख नहीं पहुँचाते। संसार में जो ऐसे श्रेष्ठ पुरुष होते हैं, वे अन्य का उद्धार करके, स्वयं भी संसार-सागर से पार हो जाते हैं॥ ८॥

अहो बन्धु! विश्व के प्यारे बनो अहिंसक उपकारी।
सन्त श्रेष्ठ गुरुजनों की शिक्षा गहि के चलिये सुविचारी॥

ईर्षा द्रोह तजो प्राणिन से ह्वै निर्भय अरु ब्रह्मचारी।
सुव्रत साहस गहो निरन्तर हो जाओ तू भव पारी॥ ६॥

अहो! विश्व के प्रिय भाइयो! अहिंसकी तथा परोपकारी बनो। श्रेष्ठ सन्त-गुरुजनों की शिक्षा ग्रहण करके भली-भाँति विचार पूर्वक आचरण बरतो। सब प्राणियों से ईर्ष्या तथा वैर त्याग दो, निर्भय तथा ब्रह्मचारी बन जाओ। सद्‌गुरू का कहना है कि कल्याण-प्राप्ति के लिये सदा हिम्मत रखो, और संसार-सागर से मोक्ष-प्राप्त कर लो॥ ६॥

गृहस्थी में रहकर किस प्रकार आचरण सम्पन्न होना चाहिये? इसके विषय में नीचे चार दृष्टान्त मननीय तथा अनुकरणीय हैं।

एक गरीब की ईमानदारी

एक शहर का एक सेठ अपनी ट्रक लेकर देहात में गुड़ खरीदने गया। गाँव में कई किसानों के यहाँ जा-जा कर सौ-दोसौ-चारसौ तथा हजार का माल फुटकर रूप से खरीदना पड़ता था और सब का मूल्य भी तुरन्त चुकाना पड़ता था। अतएव सेठ साथ में रुपये लेकर कई किसानों में यहाँ गया और माल खरीद कर पैसा पटाया।

सायंकाल एक गरीब किसान के यहाँ सौ रुपये के गुड़ खरीदने थे। निदान उसका भी गुड़ तौलाया गया। पैसा देते समय सेठ के सौ-सौ रुपये के दश नोट, एक कागज के पर्चे में लपेटे हुए गरीब के घर में गिर गये। गिरते समय न सेठ को ज्ञात हुआ न किसान को ही। सेठ ट्रक में माल भरवा कर शहर चला गया।

दूसरे दिन सेठ जब रुपये सँभाला, तब १०००) (एक हजार) गायब है। साथियों ने कहा—"कल जिस गाँव में गुड़ खरीदा गया है, वहाँ रुपये का पता लगाने के लिये जाना चाहिये।" सेठ ने कहा—"अरे भाई दुनिया बड़ी बेईमान है। जिसने रुपये पायें होंगे, वह काहे को देगा? और यह भी ठीक अनुमान नहीं है कि गुड बेचने वालों (किसानों) के घर ही रुपये गिरे हों। हो सकता है, रुपये मार्ग में कहीं गिर पड़े हों।"

लोगों ने कहा—"फिर भी जाकर खोज कर कर लेने से, सन्तोष हो जायगा।" इतनी बात हो ही रही थी कि गत दिवस जिस गरीब किसान के यहाँ अन्त में सायंकाल को सौ रुपये का गुड़ खरीदा गया था, उसका लड़का पहली बस से सेठ के यहाँ दस बजे ही पहुंच गया। और दुकान पर बैठे चिन्तित सेठ के सामने सौ-सौ के दशों नोटों को रख कर कहा—"लाला जी! ये आप के रुपये कल हमारे घर में गिर गये थे। जब आप चले आये, तब हमारे पिता ने देखा और वे बहुत ही पश्चाताप किये, तथा आज प्रातः काल ही, रुपये लेकर मुझे पहली बस से ही, आप के यहाँ आने को कहे। आप सम्भाल लीजिये। आप के सब रुपये हैं न?"

यह देखकर सेठ और उसके साथी आश्चर्य से दंग रह गये और कहे—"भाई! धन्य है तेरा गरीब पिता और तू, जो आयी हुई लक्ष्मी को इतनी गरीबी में भी लौटा दिया।" लड़के ने कहा—"इसमें हम लोगों की क्या धन्यता है। हम लोगों ने तो केवल अपना कर्तव्य पालन किया है। रुपये तो आप ही के थे। इस जन्म में आप के रुपये न लौटाते तो आगे जन्म में हाथी, घोड़ा, गधा, नौकर आदि बनकर अनेकों गुणा अधिक रूप में हम लोगों को पटाने ही पड़ते।"

सेठ ने उसे कुछ इनाम देना चाहा। उस गरीब-किसान का लड़का बोल उठा—"हमारे पिता ने इनाम लेने से मुझे रोक दिया है। यदि आप को इनाम देने हैं, तो यही आशीर्वाद दीजिये कि जीवन पर्यन्त हम लोग दूसरे का धन विष के समान समझें।" उस लड़के की यह बात सुनकर, सेठ श्रद्धा से मस्तक झुका दिया। हम लोगों को भी ऐसे ही ईमानदार बनना चाहिये।

दुष्टा भाभी के प्रति देवर की सज्जनता

एक ग्राम में दो भाई रहते थे। दोनों में बड़ा स्नेह था। परन्तु बड़े भाई की स्त्री से और देवर से नहीं पटता था क्योंकि भाभी का स्वभाव बहुत कड़ा था।

एक दिन घर में चोरी हुई। भाभी का चार हजार का गहना चुरा

गया। उसने देवर को लगाया। पति ने बहुत समझाया कि हमारा छोटाभाई बहुत सज्जन है। वह ऐसा स्वप्न में भी नहीं करेगा। परन्तु वह तो देवर को घर से निकलवाना चाहती थी। अन्त में पुलिस-द्वारा असली चोरों की जाँच हुई और गहने भी बरामद हुए। अतएव देवर पर किया हुआ भाभी का षड्यन्त्र निष्फल गया।

एक दिन उसने भोजन में विष मिलाकर देवर को खिला दिया। भोजन करने के पश्चात् देवर अचेत हो गया। बड़ा भाई उसे अस्पताल में ले गया। नौकर ने बड़े भाई से साफ-साफ बता दिया कि "हमारे-द्वारा विष मँगाकर आपकी पत्नी ने छोटे भाई को भोजन में दिया है।"

दवाई देकर उलटी करायी गयी और सब विष निकल गया। छोटा भाई अच्छा हो गया। पुलिस के आने पर बड़े भाई ने अपनी पत्नी पर सन्देह प्रकट किया। मुकदमा चला, अन्त में कोर्ट में छोटे भाई ने अपने बयान में बताया कि "विष तो मैंने ही खाया था, परीक्षा में फेल होने से मुझे सन्ताप हुआ और नौकर को कुछ रुपये देकर, विष मँगाकर खा लिया था। भाभी को नौकर ने इस लिये लगा दिया कि उन्होंने नौकर को डाँटा था।"

उपर्युक्त बयान से भाभी छोड़ दी गयी। और उसके देवरपर ही आत्महत्या का अपराध लगाकर न्यायाधीश ने उसको छः महीने की सजा कर दी। छः महीने जेल काटकर जब देवर घर आया। भाभी उसके चरणों में लिपट गयी और फूट-फूट कर रोने लगी तथा देवर-देवता के क्षमा-प्रभाव से दानवी भाभी देवी बन गयी। तात्पर्य यह कि तब भाभी देवर पर अगाध स्नेह रखने लगी और प्रतिज्ञा कर ली कि "अब सबसे सदैव सज्जनता का बर्ताव करूँगी।" क्या उसके देवर के समान पाठक भी क्षमाशील तथा सज्जन बन सकते हैं?

पत्नी की आदर्श मानवता

एक धार्मिक सज्जन के घर की शीलवती लड़की का विवाह कालेज से निकले हुए एक मनचले लड़के के साथ हो गया। लड़की रूप, गुण एवं शील से सम्पन्न थी। वह (१) सन्तों का सत्संग, भक्ति करती;

(२) सद्ग्रन्थ पढ़ती; (३) परपुरुष का स्पर्श नहीं करती; (४) अण्डा, मांस, मद्य एवं नशा की वस्तु नहीं खाती-पीती; (५) सिनेमा नहीं देखती तथा (६) आजकल की सभ्य कहलाने वाली असभ्य मन-चली लड़कियों के समान अर्धनग्न होकर शहर-बाजार में टहलने की इच्छा नहीं रखती।

और वह लड़का (अर्थात् उसका पति) तो सन्तों को व्यर्थ समझता, फिर सत्संग-भक्ति कैसे करे? वह गन्दी पुस्तकें पढ़ता; सिनेमा देखता, अण्डे-मांस-मद्यादि खाता-पीता तथा अन्य अनेक चंचलतायें उसमें थीं।

पति को पत्नी समझाती। मांस-मद्य, सिनेमा, गन्दे साहित्य का त्याग और सत्संग सद्ग्रन्थ के अनुराग का पाठ पढ़ाना चाहती। परन्तु यह सब सुनकर पति को महान दुःख तथा क्रोध होता। कई बार समझाने पर, जब उलटा ही परिणाम लगा। तब उसने समझाना छोड़ दिया। पति चाहता था कि "पत्नी भी अण्डा-मांस और मद्यादि ग्रहण करे, सिनेमा देखने चले तथा मित्रों की पार्टी में हमारे साथ चलकर मनोरञ्जन करे, इत्यादि।" परन्तु शीलवती लड़की ऐसा कब कर सकती थी?

पत्नी को आधुनिक युग की सभ्यता से पिछड़ी हुई समझकर, पति को अपने भाग्य पर सन्ताप रहने लगा। पत्नी सभी गुणों से सम्पन्ना सेवा-परायणा थी। केवल पति की पाशविकता का अनुकरण न करने से, पति के मन में उसके प्रति द्वेष बढ़ता गया।

एक बार पति और पत्नी को कुछ दूर देश की यात्रा करनी थी। प्रथम श्रेणी का टिकट कटाकर पति-पत्नी रेल के डिब्बे में जा बैठे। उस डिब्बे में अन्य कोई न था। द्वेष के कारण पति के मन में, पत्नी की जान लेने की भावना उठ खड़ी हुई। जब गाड़ी छूटी और खूब रफ्तार से चलने लगी, तब पति ने धक्का देकर पत्नी को ढकेल दिया। वह बेचारी डिब्बे से पृथ्वी पर गिर पड़ी।

सौभाग्य से दूसरे डिब्बे में खिड़की खोल कर एक सज्जन कुछ बाहर देख रहे थे। एक नवयुवती को गाड़ी से गिरती हुई देखकर,

उन्होंने जंजीर खींची। गाड़ी रुक गयी। गाड़ी का गार्ड आया तथा अन्य सज्जन इकट्ठा हुए। लड़की जीवित थी। परन्तु पूरी तरह से घायल हो चुकी थी। उन बाबू जी का हृदय तो काँप रहा था कि सही-सही बात बतला देगी और हमारी जान जोखिम में पड़ जायगी। गिरने का कारण लोगों के पूछने पर, रोनी सूरत बना कर, उन बाबू ने कहा—"किसी कार्य-वश यह दरवाजे के सामने खड़ी थी। दरवाजा खुला था। अचानक लड़खड़ा कर स्वयं गिर पड़ी।"

घायल युवती को गाड़ी में रखकर बड़े स्टेशन पर लाया गया और एक अस्पताल में उसे रखा गया। दवाई-पानी होने लगी। परन्तु उसको मृत्यु के निकट समझ कर, लड़की से बयान लेने के लिये पुलिस मैजिस्ट्रेट को बुला लिया। इधर पति अपने भविष्य को दुर्दशाग्रस्त विचार कर, पृथक बैठा रो रहा था।

मैजिस्ट्रेट के सामने बयान देते हुए लड़की ने कहा—"साहब! मैं लघुशंका करके पुनः कुल्ला करने जाती थी। मुझे पहले से ही मृगी आया करती थी। उसी बीच मृगी आ गयी। डिब्बा का दरवाजा खुला था और बदहोश होकर मैं गिर पडी।" हाकिम ने कहा—"तुम्हारे पति ने तो तुम्हें नहीं ढकेल दिया।" युवती ने कहा—"राम-राम! वे हमें क्यों ढकेलते? हमारे दुःख से तो वे बहुत पीड़ित होंगे। उनको सामने बुला दिया जाय, मैं उनके चरणों के दर्शन करके अन्तिम प्रणाम कर लूं।"

पति पीछे खड़ा इन बातों को सुन रहा था। अपने किये का उसे घोर पश्चाताप हो रहा था। उसका हृदय काँप रहा था। उसकी अन्तरात्मा उसे कोच रही थी—"अरे दुष्ट! कहाँ तेरी नीचता और कहाँ इस साध्वी लड़की की उच्चता। अभी मरणासन्न होने पर भी सावधानी पूर्वक तेरी जान बचा रही है।" ऐसा पश्चाताप करके वह चीख उठा। लोगों ने उसे खींच कर, पत्नी के सामने कर दिया। पत्नी ने उसे देखा और उसके पैर छूई और सदा के लिये सो गयी।

इसके पश्चाताप से उस लड़के के स्वभाव में महान परिवर्तन

हुआ। वह समस्त दुर्गुणों को सर्वथा त्याग कर साधु-संगी हो गया और अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करके पुनः विवाह नहीं किया तथा छः महीने के पश्चात् घर से विरक्त हो गया।

देखो। स्त्री की क्षमा ने उसके मरते समय भी, पुरुष के स्वभाव का सुधार कर दिया। हम लोगों को भी ऐसे क्षमाशील होना चाहिये।

महापुरुष यूसुफ़

कुरान-शरीफ के बारहवें पारे में एक कथा आती है। मिश्र के शासक 'अजीज' (बादशाह) के यहाँ 'यूसुफ' नाम का एक नौकर रहता था। वह सुन्दर युवक था। उसे देखकर 'अजीज' की स्त्री 'जुलेखा' उस पर आसक्त हो गयी और एक दिन अपने मनोविकार की बात यूसुफ से कही। वह अस्वीकार किया। यह बलात्कार से उसे पकड़ना चाही। वह भगा, पीछे से जुलेखा ने उसके कुर्ता को पकड़ लिया और यूसुफ जोर से भगा। अतः उसका कुर्ता फट गया। इतने में अजीज आ गये, तो अपनी बचत के लिये जुलेखा ने यूसुफ को दोष लगाया।

परन्तु ठीक परीक्षा करने पर, युसुफ की सच्चायी बादशाह को प्रतीत हो गयी। इधर जुलेखा का मन यूसुफ की ओर अधिक आकर्षित होता रहा, और यूसुफ किसी प्रकार बचता रहा। दोनों को पृथक्-पृथक् करने के लिये बादशाह ने यूसुफ को जेलखाने में डाल दिया।

बहुत दिनों के पश्चात् बादशाह ने युसुफ को जेल से निकालने की आज्ञा दी। यूसुफ ने जेल-अधिकारी से कहा कि बादशाह अपनी स्त्री से ठीक बात जान लें कि मैं पविश्र हूँ कि नहीं, तब मैं निकलूंगा। बादशाह ने अपनी स्त्री को बुलाकर पूछा, तो उन्होंने साफ बताया कि मेरे ही मन में बुराई थी, यूसुफ पवित्र है। फिर बादशाह ने यूसुफ को जेल से मुक्त करके अपने राज्य में उत्तम अधिकारी बनाया।

यूसुफ महापुरुष थे। उनसे संसार के लोग शिक्षा लें।

उपर्युक्त चारों दृष्टान्तों से मनुष्य बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकता है।

छन्द

हे मन ! तू जो जो भावना है कर रहा सुख आस पर।
उसको अपूरण जानिये वह ही सदा है दुःखकर ॥
जो प्राप्त अमृत असन फल को त्याग कर कैसे सुखी।
त्यों ज्ञान गुरु का पाय नर धारण बिना होवे दुखी ॥ १ ॥

हे मन ! विषय-सुखों की आशा पर, जो-जो कल्पनायें तू कर रहा है। उसको अपूर्ण रूप जानकर त्याग दे; यह विषय-सुख-आशा की कल्पना ही सदैव दुःखदायी है। जो अमृतमय स्वादिष्ट व्यञ्जन, फल-मेवा को पाकर, पुनः उसे वह न खाये और त्याग दे, तो उसकी भूख कैसे जायगी तथा वह कैसे सुखी होगा ? इसी प्रकार गुरु का यथार्थ स्वरूप-ज्ञान प्राप्त करके भी, उसके आचरण धारण किये बिना, साधक जगत्-प्रपंच में पड़कर दुखी है ॥१॥

पारख रूदा सब पृथक् सम्बन्ध स ब दिल से तजो।
द्रष्टा सदा बन कर रहो तू आप आपी को भजो ॥
इसके अलावा स्वप्नसम झूठा जगत का नेह है।
इस हेतु से स्थिति लहो नहिं अन्त सबही खेह है ॥२॥

अपना पारख स्वरूप चैतन्य सदैव सबसे भिन्न है, अतः अपने हृदय से सबका सम्बन्ध त्याग दो। प्रारब्ध पर्यन्त मन साथ है, अतः तबतक सदैव सब मन-स्मरणों का साक्षी बनकर, स्व-स्वरूप-स्थिति में ठहरे रहो और अपने आप चैतन्य स्वरूप को नित्य जपते रहो। अपने स्वरूप के अतिरिक्त संसार का सारा राग स्वप्नवत् मिथ्या है। अतएव सबका अभाव करके स्व-स्वरूप की स्थिति को ही प्राप्त करो, अन्यथा अन्त में सब जड़-पदार्थ तो छूट ही जायँगे और स्वरूप-स्थिति भी न हो पायेगी ॥ २ ॥

शिक्षा—जीवन्मुक्ति-स्थिति-प्राप्ति के लिये, बाह्य अधिक व्यवहार-प्रपंचों का त्याग करके, निर्वाह के लिये प्रारब्ध पर निर्भर होकर,

निराश वर्तमान की रहनी चलकर, साधु को सब मन-स्मरणों का साक्षी बनना चाहिये। हृदय से बिना सबका सम्बन्ध त्याग दिये स्थाई शान्ति नहीं मिल सकती। सबका अभाव कर देने के पश्चात् ही, स्वरूप-स्थिति हो सकती है। यह विषय केवल कोरे कथन का नहीं है, दृढ़ रहनी का है। शिर पर बोझा रखे रहने में, जीव को बड़ी प्रसन्नता है। यह बोझा त्याग कर हलका नहीं होना चाहता।

अज्ञान वश जीव स्वयं सुखी नहीं होना चाहता

शिव और पार्वती टहलते-टहलते कहीं जा रहे थे। मार्ग में एक निर्धन-दुखी मनुष्य का घर पड़ा। उस घर में तीन प्राणी थे—स्त्री, पुरुष तथा लड़का। वे तीनों बुद्धि के भी दुर्बल थे। पार्वती ने शिवजी से कहा—"इन लोगों को किसी प्रकार सुखी कर दीजिये।" शिवजी ने कहा—"ये स्वयं सुखी नहीं होना चाहते।" पार्वती ने इस बात को नहीं माना। तब शिवजी ने कहा—"अच्छा, चलो! हम परीक्षा करा दें।"

उसके घर पर शिव पार्वती पहुँचे। पहले घर की स्त्री मिली। शिवजी ने कहा—"तुम्हें जो वर माँगना हो माँगलो।" स्त्री ने कहा—"मैं सोरह वर्ष की सुन्दरी हो जाऊँ।" शिव ने कहा—"हो जा।" वह सोरह वर्ष की सुन्दरी हो गयी। इतने में उसका पति आया और उसे देखकर समझा कि यह तो षोडसी सुन्दरी बनकर, दूसरा पति करना चाहती है। शिव जी ने पुरुष से कहा—"तू भी जो माँगना चाहे मांग ले।" पुरुष ने कहा—"ये हमारी स्त्री शूकरी हो जाय।"

शिवजी ने कहा—"जा! वह शूकरी हो जायगी।" अतः उसकी षोडशी सुन्दरी से शूकरी होगयी। लड़के से शिव जी ने वर माँगने को कहा। लड़के ने कहा—"हमारी माता पहले के समान हो जाय।" फिर तो उसकी माता पहले जैसी वृद्धा-कुद्रूपा थी, वैसे ही होगयी। शिव ने पार्वती से कहा—"देख लिया! ये लोग कहाँ सुखी होना चाहते हैं?"

उपर्युक्त दृष्टान्त कल्पित है। क्योंकि किसी के आशीर्वाद मात्र देने से, कोई वृद्धा से युवती तथा शूकरी नहीं हो सकती। इस दृष्टान्त की कल्पना सिद्धान्त की पुष्टि के लिये की गयी है। सिद्धान्त यह है कि यद्यपि सभी जीव सुख चाहते हैं। परन्तु अज्ञान-वश सुख का ठीक मार्ग नहीं जान पाते। त्याग से मिलनेवाले सुख को भोग में खोजते हैं। अनादिकाल से जीव को शिर पर बोझा रखना पसन्द है वही काम अब भी करता है। बोझा त्यागकर इससे निवृत्ति-शान्ति नहीं ली जाती। अतएव निवृत्ति पर स्वतः ध्यान देने से ही कल्याण होता है।

पंचामृत छन्द

हे जीव तू निष्काम नित्य रु तृप्त अपने आप है।
अरु स्वच्छ अविचल भिन्न सबसे तू सदा निष्पाप है॥
पर भूलकर संसार में सुख मोह माया में रिझे।
सन्तुष्ट हो निज रूप में अब प्राप्त करना क्या तुझे॥१॥

हे चैतन्य तू! कामना-हीन नित्य तृप्त स्वतः है। तू निर्भय, निश्चल, सबसे पृथक् तथा सदैव विकारहीन है। परन्तु उक्त अपने स्वरूप को भूलकर, संसार के कल्पित सुख रूपी मोह की माया में आसक्त होता है। अतः सब आसक्ति को त्याग कर, स्व-स्वरूप में सन्तुष्ट होओ, फिर तुम्हें क्या प्राप्त करना है? तू स्वयं तृप्त रूप है॥१॥

जिस काम नारी सुत सुता के मोह में हैरान है।
अनमिल सदा निज से सभी फिर क्यों करे अभिमान है॥
तू है अकेला शुद्ध चेतन क्यों किसी में जा बझे।
सब परख के न्यारा रहो अब प्राप्त करना क्या तुझे॥ २ ॥

जिस काम-वासना में तथा स्त्री-पुत्र-पुत्री के मोह में पड़कर तू सदा कष्टित है। वे सब तो अपने चेतन स्वरूप से कभी न मिलने वाले हैं। फिर उनका क्या अभिमान करता है? तू तो असङ्ग, शुद्ध चैतन्य पारख रूप है, फिर तू क्यों किसी प्राणी-पदार्थ के प्रपंच-राग में फंसता

है ? अतएव सबके जाल को परख कर, पारख रूप हो रहो, अब तुम्हें 'मिट्टी' 'कौड़ी' 'मृत्र-पात्र'—क्या प्राप्त करना है ? ॥ २ ॥

जिस स्वर्ग सुख लोकादि कर्ता के लिये है भरमता।
वह अन्य तुझ से कुछ नहीं तू ही उसे है मानता॥
मृग नाभि में ज्यों कस्तुरी निज अज्ञता से नहिं सुझे।
जब होश हो निज की तरफ तब प्राप्त करना क्या तुझे॥ ३ ॥

जिस कल्पित स्वर्ग-लोकादि के सुख के लिये तथा कर्ता (ईश्वर) की प्राप्ति के लिए नाना भ्रम में तू भ्रमता है। वह तेरी मान्यता से पृथक् कोई सत्य वस्तु नहीं है, तू ही उसका मानने वाला है। जैसे मृगा की नाभि में कस्तूरी होते हुए भी, अपने अज्ञान-वश उसे नहीं दिखता। ऐसे तू भी अपने स्वरूप के अज्ञानवश, अपने तृप्त स्वरूप को नहीं समझता। यदि तेरे को अपने तृप्त स्वरूप का स्मरण हो जाय, तो तुम्हें क्या प्राप्त करना है ? कुछ नहीं॥ ३ ॥

है कल्पना सब तुम्हीं से यह भूल से विस्तार है।
तुम परख पारख में बसो जग कार्य सब निस्सार है॥
तू सुख जहाँ है ठानता वह भर्म तिसमें क्यों रिझे।
जब तोष अपने आप में तब प्राप्त करना क्या तुझे॥ ४ ॥

स्व-स्वरूप की भूल से, ये सारी कल्पनायें तुम्हीं से फैली हैं। मन को परख-परख कर तुम निरन्तर पारख स्वरूप में ही स्थित रहो, संसार के सारे कार्य सार-हीन हैं; अतः संसार के कार्यों में मत फंसो। जिस विषय में, बाह्य-प्रपंच में तू सुख निश्चय करता है, वह भ्रम मात्र है। उसमें तू क्यों आसक्त होता है ? जब अपने आप स्वरूप में ही, अविचल सन्तोष की प्राप्ति हो सकती है; तब मृगतृष्णामय बाह्य-प्रपंचों में क्या तुम्हें प्राप्त करना है ? ॥४॥

सद्ग्रन्थ अरु सत्संग जो गुरु युक्ति नेम विचार है।
तत्पर रहे प्रारब्ध भर भव सिन्धु से तब पार है॥

सूरत स्वयं अविचल परमपद प्राप्त करना नहिं तुझे।
चेतन स्वतः तू आपही तब प्राप्त करना क्या तुझे ॥ ५ ॥

सद्ग्रन्थ-अवलोकन, सत्संग, गुरु-पारख की समझ, नियम तथा विचार—प्रारब्ध पर्यन्त इनमें दृढ़ रह कर, स्वरूप-स्थिति करे; तभी संसार सागर से जीव पार होता है। अपना स्वरूप स्वतः निश्चल तथा परम पद रूप है तुम्हें कुछ प्राप्त करना नहीं है क्योंकि तुम अपने आप ही चैतन्य तृप्त रूप हो; फिर दृश्य—वस्तु तुम्हें क्या प्राप्त करना है? ॥ ५ ॥

१—कुण्डलिया

स्वप्नमयी संसार है मतलब के सब यार।
मतलब पूरण हेतु निज सब सबसे करि प्यार ॥
करि सब सब से प्यार यार का संग न छोड़ै।
देखै नहिं जहँ स्वार्थ प्रेम तहँ तुरतै तोड़ैं ॥
ऐसो निपट असार जगत में नहिं कछु सा'र।
तो भी तजत न मोह सहै नित कष्ट अपार ॥ १ ॥

इस स्वप्नमय संसार में सब जीव स्वार्थ के मित्र हैं। अपना स्वार्थ पूर्ण होने के लिये, सबसे सब लोग मित्रता करते तथा मित्र का साथ नहीं छोड़ते। परन्तु जहाँ अपना स्वार्थ नहीं देखते, वहाँ तुरन्त ही प्रेम-तन्तु को तोड़ देते हैं। इस प्रकार यह संसार बिलकुल सार-हीन है। इसमें जीव का कुछ लाभ नहीं है। तो भी जीव इस संसार-प्रपँच का मोह नहीं त्यागता और नित्य दुःख सहता है ॥१॥

२—कुण्डलिया

स्वार्थ पूर्ण दुख रूप है परखो निज से न्यार।
सबसे न्यारा आप है भूल के कहे हमार ॥
तन तनया नध नारि सुख मानि करे आनन्द।

नहिं जानत सब छूटिहैं यह सब मन का फन्द ॥
बिना बोध गुरु ज्ञान तोष उर में नहिं आवत ।
भटकै मनके वेग शान्ति सुख कबहुँ न पावत ॥
सूरत चतुर सयान है करै जो विमल विवेक ।
ठहरै निज पद माहि जो सोई ज्ञानी दृढ़ नेक ॥ २ ॥

यह संसार स्वार्थ से पूर्ण दुःख रूप है, अपने स्वरूप से पृथक् है, इसे परीक्षा करो। जीव अपने आप सबसे पृथक् है; परन्तु अज्ञान-वश दृश्य को अपना कहता है। शरीर, स्त्री, पुत्र, पुत्री, सम्पत्ति आदि में सुख मानकर हर्षित होता है। यह नहीं जानता कि ये सब छूट जायंगे। अतः जगत-मोह मन की फाँसी है, इसे त्यागो। बिना स्वरूप-बोध तथा पारख-ज्ञान के हृदय में शान्ति नहीं मिलती। मन के उमंग में जीव भ्रमता रहता है और शान्ति रूपी सुख कभी नहीं पाता। गुरु कहते हैं, श्रेष्ठ बुद्धिमान वही है, जो शुद्ध विवेक करता है। जो अपने चैतन्य स्वरूप में स्थित होता है, वह दृढ़ ज्ञानी ही भला है ॥२॥

३ - कुण्डलिया

कपट रूप संसार यह हित अनहित नहिं जान ।
हित अनहित नहिं जान बँधी है मोह की पट्टी ॥
राग द्वेष की रारि जलै निशदिन की भट्ठी ।
कटुक वचन बोलत विषम चुभत तीरसम गाँस ।
विकल रहत सब जीव मित निज निज मन के फाँस ॥
तन मन वच दुख रूप अति कीने बिना सुधार ।
यहि हेतु गुरू भक्ति का लीजहि नितहि अधार ॥३॥

यह संसार कपट का रूप—भीतर कुछ बाहर कुछ है। परन्तु जीव कल्याण-अकल्याण नहीं जानता, अज्ञान की मोह-पट्टी बंधी है। मोह-वैर-झगड़े की अग्नि भट्ठी में रात-दिन जीव जलता है। द्वेष वश

तीव्र तथा उल्टे वचन लोग बोलते हैं, जो बाण के तुल्य हृदय में चुभ जाते हैं। सब जीव अपने-अपने मनके फन्दे में कण्टित हैं। बिना सुधार किये शरीर, वचन और मन दुःखमय ही हैं। अतएव वैराग्य-प्रिय सद्गुरु-सन्तों की भक्ति का सदैव आश्रय लेकर अपना सुधार करो ॥३॥

भजन

दृश्य से पार तू, नित निराधार तू, जीव सारा,
सत्य पारख का करलो विचारा ॥टेक॥

देह को है तू निज रूप माना। याते विषयों में फिरता दिवाना॥
ये ही अज्ञान है, दुःख की खान है, भव की धारा,
बन के व्यापक तू निज को बिगारा ॥१॥

निज को जग का उपादान माना। जड़ वो चैतन्य एकी में साना॥
सत्य से दूर तू, जग में भरपूर तू, बोझ धारा,
दृश्य से तू निज को हिगारा ॥२॥

सत्य चिद् शान्त निर्मल अनाशी। नित्य निर्द्वन्द्व पारख प्रकाशी॥
राग से दुख सहा, नित्य भव में बहा, न सम्हारा,
स्वप्न के शत्रु ने तुमको मारा ॥३॥

जड़ वो चैतन्य दो वस्तु न्यारे। स्व-स्व हैं भिन्न चैतन्य सारे॥
दृश्य जड़ त्याग कर, निज में अनुराग कर, पाप छारा,
नित्य अभिलाष निज रूप प्यारा ॥४॥

बोधसार सटीक पंचम खण्ड समाप्त।

प्रकरण फल

तन-मद-निद्रा से शीघ्र जाग ।
यह अस्ति मांस मल मज्ज कूप ।
सब भांति मलिन जड़ का स्वरूप ।।
त्रय ताप दुःख से सदा पूर ।
मिटकर क्षण में हो शीघ्र धूर ।।
जल में भू में अर्पते आग ।।तन-मद०।।१।।
भाड़ो सजाव घनका जमाव ।
चपला नभ-चाप सुरंग बनाव ।।
जल तरल ज्योति चंचल समीर ।
इमि नित परिवर्तन है शरीर ।।
इक दिन केंचुलि इव जाय त्याग ।।तन-मद०।।२।।
स्थूल-सूक्ष्म से सदा न्यार ।
अपना स्वरूप चैतन्य सार ।।
नित अज असंग अविकार रूप ।
है शान्त शुद्ध मंगल स्वरूप ।।
बस अपने ही में आप पाग ।।तन-मद०।।३।।
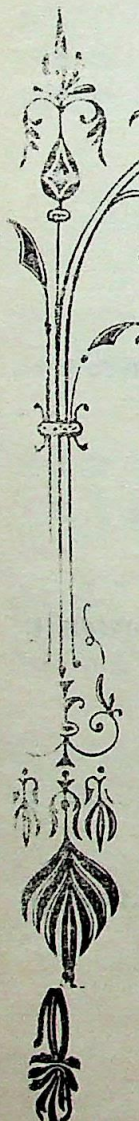
षष्टम खण्ड

जीवन की कड़ी टूटती है।
शिशुपन बालकपन गये बीत।
कौमार्य छिपा जाकर अतीत॥
यह यौवन का दो दिन बहार।
आता अधेड़ नीरस तुषार॥
वृद्धापन व्याधि फूटती है॥ जीवन०॥१॥

यौवन-विहार का याद-तीर।
चुभकर भर देता हृदय पीर॥
जीवन-सन्ध्या का करुण दृश्य।
सुख स्ववश स्वबल होते अदृश्य॥
अर्धाङ्गी नारि रूठती है॥ जीवन ॥२॥

जीवन रहते जीवन सुधार।
मरने पर क्या होगा गंवार॥
नर तन मुक्ती का खुला द्वार।
तू शीघ्र चेत निज को सम्हार॥
सब न्यारी वस्तु छूटती है। जीवन०॥ ॥३॥

सद्गुरवे नमः

बोधसार-सटीक

षष्टम खण्ड

१—विनय

हो रक्षक प्रभू जी शरण में तुम्हारे।
सो भव व्याधि नाशो असह दुख हमारे ॥ टेक ॥
भटकता भटकता अनादी से आया।
नहीं कोई रक्षक सहायक दिखाया ॥
मिले जब गुरू जी मिटे दुःख सारे ॥१॥ हो०॥
कोई ब्रह्म ईश्वर खुदा को बताया।
कोई देव देवी वो स्वर्गादि गाया ॥
किया यत्न साधन हुआ न सहारे ॥ २ हो० ॥
मिली सुन्दरी नारि यौवन सुहावन।
मिले पुत्र पुत्री वो धन धाम भावन ॥
बढ़ी रोग तृष्णा हृदय में अपारे ॥ ३ हो० ॥
किया भोग सुख हेतु बन के जो किंकर।
न पाया कछू सुख नचा भाँति बन्दर ॥
नशाये सकल अघ वो बन्धन हमारे ॥ ४ हो० ॥

जो जो मिले सब हैं भक्षक जगत में।
निजी स्वारथी न है परमार्थ चित में॥
सजगता सभी से दिये युक्ति सारे॥ ५ हो०॥
मिला बोध पारख जो यकरस हमेशा।
जहाँ न जगत द्वन्द्व कोई कलेशा॥
ये सूरत स्वतः दृष्टि करके निहारे॥ ६ हो०॥
विनय है हमारी प्रभू एक चित से।
छूटूँ मैं भव दुःख आवागमन से॥
यही दृष्टि दाया करो हित हमारे॥ ७ हो०॥

हे रक्षक सद्गुरु साहेब! मैं आपकी शरण में हूँ। मानसिक जन्मादिक रोग रूप हमारे असह क्लेशों को नष्ट कर दीजिये॥ टेक॥ मैं अनादि काल से भ्रमता हुआ आ रहा हूँ। परन्तु कोई हितकारी आधार हमें नहीं दिखा। जब आप सद्गुरु मिले, तब हमारे सम्पूर्ण कष्ट विनष्ट हो गये॥१॥ कोई तो कल्पित व्यापक ब्रह्म, कोई जगत्-कर्ता ईश्वर, कोई खुदा-अल्ला को जीव के ऊपर सिद्ध किया। कोई नाना देवी-देवादि तथा स्वर्गादि-सुख का लोभ दिया। इस कल्पना में पड़कर अनेकों साधन-उद्योग किये गये, परन्तु शान्ति का आश्रय न मिला॥२॥ मन भावन जवानी; सुन्दर स्त्री, पुत्र-पुत्री, सम्पत्ति-शासन सब मन-अनुकूल मिले। परन्तु इनके सम्बन्ध में तो, हृदय में अपार तृष्णा-व्याधि बढ़ गयी, शान्ति न मिली॥३॥ कल्पित सुख के लिये संसार का दास बनकर भोगों का संग्रह तथा उपभोग किया। परन्तु इसमें रत्ती मात्र सच्चा सुख न मिला; प्रत्युत बन्दर के समान चंचल बनकर संसार में नाचते रहे। आप सद्गुरु ने ही हमारे सम्पूर्ण कुकर्तव्य रूपी पापों को तथा विषयासक्ति रूपी बन्धनों को नष्ट कर दिये॥४॥ संसारी जो-जो मिले सब कल्याण-मार्ग से गिराने वाले, सब

अपने तन-मन के स्वार्थी, इनके मन में धर्म-परमार्थ का लक्ष्य नहीं है। आप सद्गुरु ने ही, संसार के प्राणियों से सावधान रहने की अनेक युक्तियाँ बताये ॥ ५ ॥ एकरस निरन्तर रहने वाला पारख स्व-स्वरूप का बोध प्राप्त हुआ। स्व-स्वरूप की स्वतः दृष्टि करके देखता हूँ, तो अपने में संसार के हानि-लाभ, सुख-दुःखादि के कोई द्वन्द्व-क्लेश नहीं हैं ॥६॥ हे स्वामिन्! एक लक्ष्य से हमारा यही निवेदन है कि हम जन्म-मृत्यु संसार-दुःख से सदा के लिये छूट जायें। हमारे ऊपर यही कृपा-दृष्टि करने का आप कष्ट करें ॥७॥

२—भजन-कीर्तन

जय गुरुदेव दया अब कीजै, भवसागर से पार करो ॥टेक॥

पूरब शुभ संचित जगि आया, मोक्ष भूमिका नर तन पाया ॥
बहुरि न अब जग में भटकाऊँ ॥ १ ॥ भव० ॥

खानि बानि है परबल धारा। गुरुपद पोत हमें अधारा ॥
माँझी गुरुवर को नित ध्याऊँ ॥ २ ॥ भव० ॥

नहिं कोई है और सहारा। जो हैं सो बहते भव धारा ॥
ताते शरण तुम्हारी आऊँ ॥ ३ ॥ भव० ॥

कामादिक में नित हैं जरते। रोग शोक संकट बहु सहते ॥
क्षमा तोष औषध अपनाऊँ ॥ ४ ॥ भव० ॥

मानव के गुण परिचय देकर। दानव के दुर्गुण सब हरकर ॥
अशुभ वासना सभी हटाऊँ ॥ ५ ॥ भव० ॥

स्वप्नमयी सब है संसारा। कौहट घृथा न है कछु सारा ॥
निराधार निज में ठहराऊँ ॥ ६ ॥ भव० ॥

जड़-चेतन का करि निरवारा। भूल भरम सब कर दो छारा ॥
पारख रवि गुरु ज्ञान टिकाऊँ ॥ ७ ॥ भव० ॥

समय हमारा व्यर्थ न जाये । चरण शरण में शीघ्र लगाये ॥
अर्जी मम प्रभु यही सुनाऊँ ॥ ८ ॥ भव० ॥
निरत निरन्तर निज पद माहीं । गुरु की कृपा अन्त नहिं जाहीं ॥
स्थिति स्थिति भाव टिकाऊँ ॥ ९ ॥ भव० ॥
सूरत जबतक तनमें रहना । सदाचार गुरु ध्यानहिं गहना ॥
क्षय प्रारब्ध मुक्त मद पाऊँ ॥१०॥ भव० ॥

इन्द्रियजयी सद्गुरुदेव । हमारे ऊपर कृपा करके, संसार-सागर से हमें पार कर दीजिये ॥ टेक ॥ पूर्व जन्मों के पुण्य संचित जाग्रत हो आये, मोक्ष-साधन-स्थल उत्तम मानव-तन प्राप्त हुआ । अब ऐसी कृपा हो कि फिर से संसार प्रपंच—जन्म—मृत्यु में न भ्रमना पड़े ॥१॥ खानी-वाणी का प्रबल प्रवाह है, इसमें हमें गुरुपद (स्वरूप ज्ञान) जहाज का ही आश्रय है। अतः संसार-सागर के मल्लाह रूप, श्रेष्ठ सद्गुरु का सदा ध्यान करता हूँ ॥ २ ॥ अन्य कोई आधार नहीं है, क्योंकि संसार के सभी जन खानी-वाणी की धारा में बह रहे हैं। इसीलिये आप की शरण में दास आया है ॥ ३ ॥ मैं काम-क्रोधादि में सदा संतप्त हो रहा हूँ चिन्ता-व्याधि के अनेक क्लेशों को सह रहा हूँ। आपकी कृपा से क्षमा-सन्तोष रूप भेषज को ही ग्रहण करूँगा ॥ ४ ॥

मन को मनुष्य के सद्गुणों का परिचय देकर, और दानवता-दोष मिटाकर, सभी बुरी वासनाओं को त्याग दूँ ॥५॥

सारे संसार का सम्बन्ध स्वप्नमय है । इस निष्प्रयोजन काँव-काँव में कुछ भी लाभ नहीं है । अतः असंग स्व-स्वरूप में स्थित करना ही सार है, अतएव वही करूँ ॥ ६ ॥ जड़ चेतन का निर्णय करके स्वरूप-भूल तथा विषय-सुख-भ्रम को मिटा देना चाहिये तथा रविवत् पारखज्ञान में स्थित करना चाहिये ॥७॥ हमारे उत्तम मानव जन्म का समय निष्प्रयोजन कार्यों में न जाने पावे । शीघ्र सद्गुरु के चरणों की शरण में लगकर कल्याण करें । हे प्रभु ! आप से यही निवेदन करता हूँ ॥८॥ सद्गुरु की ऐसी कृपा हो कि सदा स्व-स्वरूप में ही लीन रहूँ । जगव-

प्रपंच में न भटकूँ। केवल स्वरूप स्थित ही में प्रेम दृढ़ करूँ ॥९॥ ग्रन्थकर्ता का कहना है कि जब तक इस शरीर में रहना है। तब तक सदाचार पूर्वक स्वरूप ज्ञान के लक्ष्य में ही रत रहना है। तभी प्रारब्ध शरीर नाश होने पर जीव विदेह-मुक्ति-पद को प्राप्त होगा ॥१०॥

३—शब्द

भजन यक गुरु पद का है सार ॥ टेक ॥
गुरुपद निजपद एकहिं जनो, स्व-स्वरूप सोइ सार।
और विजाति सकल जड़ माया, तत्त्व तत्त्व भो न्यार ॥१॥
कारज त्रिविध परस्पर देखो, तत्त्वन के आधार।
धर्म क्रिया गुण शक्ति स्वभाविक, तत्व सम्बन्धाकार ॥ २ ॥
न कोइ प्रेरक कर्ता इनका, आप आप निरधार।
जीव अमर अविनाशी द्रष्टा, भूलि कहै करतार ॥ ३ ॥
पंच विषय सुख तन मानन्दी, भास अध्यास लगार।
विरति विवेक धारि उर सूरत, होत स्वतः भव पार ॥ ४ ॥

इस जीवन में गुरु-पद का चिन्तन ही एक लाभ है ॥टेक॥ गुरुपद तथा निज पद एकही समझो। अर्थात् स्व-स्वरूप ही गुरुपद या निज-पद है, यही सार तत्त्व है। स्वरूप के अतिरिक्त, सब विजाति जड़ माया है। सब तत्त्व भी पृथक् पृथक् हैं ॥१॥ देखो! अनेक प्रकार के कार्य-पदार्थ जड़ तत्त्वों के आधार में बनते रहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—इन तत्त्वों में धर्म, क्रिया, गुण, शक्ति, सम्बन्ध तथा आकार—ये छः भेद स्वाभाविक अनादि से हैं ॥२॥ इनको प्रेरणा करने वाला कोई कर्ता-मालिक नहीं है। जड़ चेतन दोनों अपने-आप निराधार हैं "प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।" (गीता) जीव अमृत स्वरूप नित्य तथा देह-सम्बन्ध से सबका साक्षी है यह अपने को भूल कर, कर्ता की कल्पना करता है ॥३॥ पाँच विषय तथा शरीर में सुख की मान्यता एवं भास अध्यास लगे हैं, यही बन्धन है। वैराग्य-विवेक तथा

स्वरूपज्ञान हृदय में धारण करके, यह जीव स्वतः संसार-सागर से तर जायगा ॥४॥

४—शब्द

करो मन स्ववश भोग सुख त्यागो ॥ टेक ॥

तन मन काल जाल यह जानो, तेहिमें नहिं अनुरागो ।
सबका कारण तन ही मन है, तन मन शोधि अदागो ॥ १ ॥
चोरी हिंसा और पाप रत, तेहि से जिव सब जागो ।
ईर्षा क्रोध मान छल अवगुण, तेहि तजि सब सन भागो ॥ २ ॥
निन्दा गाली मिथ्या भाषण, वचन दोष बिकरागो ।
सब उपाधि का मूल जानि तेहि, गहो बोध वैरागो ॥ ३ ॥
मनही बन्ध मोक्ष का कारण, मन ही जीति सुभागो ।
कर निरोध चित्तवृत्ति निरन्तर, स्वरत निज पद पागो ॥ ४ ॥

विषय-सुख-भोगों को त्याग कर; अपने को स्वाधीन करो ॥टेक॥ शरीर और मन का सुखाध्यास ही काल का जाल है, इसमें प्रेम न करो। सब दोष-दुःखों का कारण तन ही मन है; अतः तन मन के दोषों को त्याग कर, निर्मल हो जाओ ॥१॥ चोरी, हिंसा तथा अन्य पापों में सब जीव लीन हैं, अतः इस पाप-निद्रा से जाग्रत हो जाओ। किसी का सुख सम्मान देखकर जलना, क्रोध करना, स्वयं का अभिमान करना, किसी को धोखा देना—इन सब दुर्गुणों को त्यागकर, सबकी आसक्ति से पृथक् हो जाओ ॥२॥ दूसरे की निन्दा करना, गाली देना, असत्य बोलना—ये वाणी के भयंकर दोष हैं। इनको सब झगड़े की जड़ समझ कर तथा इन्हें त्याग कर स्वरूप बोध तथा वैराग्य धारण करो ॥३॥ मन ही बन्धन तथा मुक्ति का कारण है; अतः ऐ भाग्यशाली मनुष्य ! तुम मनही को जीतो। चित्त की वृत्तियों का निरन्तर निरोध करते हुए, स्व-स्वरूप बोध में लवलीन रहो ॥४॥

५—शब्द

गहे बिन कोई बने नहिं काम ॥ टेक ॥

चहै कथै वैराग्य ज्ञान नित, चहै भागवत साज।
बिना प्रेम परतीत किये कछु, होय नहीं शुभ काज ॥ १ ॥
वही प्रेम प्रवीण सुज्ञ जन, वही सबन शिरताज।
तन मन वचन शौच उर गहि के, आशा तृष्णा त्याज्य ॥ २ ॥
संग कुसंग परीक्षा करके, बुरे करम से लाज।
राग द्वेष पर निन्दा छोड़ै, स्वतः स्वरूप विराज ॥ ३ ॥
कथन गहन औ रहन एक सम, निज हित गहि सबसाज।
करि पुरुषार्थ लगन यक चित से, साधन से उर भाज ॥ ४ ॥
जैसे कामी नारि प्रिये अति, लोभिन के प्रिय दाम।
तैसे नित वैराग्य प्रिये जो, सूरत अटल स्वराज ॥ ५ ॥

त्याग मार्ग बिना दृढ़ता पूर्वक पकड़े, कल्याण का कोई कार्य नहीं बनता ॥टेक॥ चाहे कोई रात-दिन वैराग्य का कथन करे, चाहे कोई ज्ञान की झड़ी लगाता रहे और चाहे सब साज सजाकर श्री मद्भागवत् ही बाँचा करे। परन्तु बिना वैराग्य में प्रेम तथा त्याग में विश्वास किये, कल्याण-कार्य नहीं होता ॥१॥ वही मनुष्य श्रेष्ठ, निपुण, बुद्धिमान है और वही सबका शिर मुकुट है। जिसने अपने तन, मन, वचन को सुधार कर, अन्तःकरण को शुद्ध कर लिया तथा शरीर-संसार एवं संसार के समस्त प्राणी-पदार्थों की आशा-तृष्णा त्याग दिया है ॥२॥ अच्छी-बुरी संगत की परख करके, बुरी संगत को छोड़ो तथा बुरे कर्मों के करने से लज्जा करो। मोह-वैर, परायी निन्दा त्याग कर, स्व-स्वरूप में ही स्थित होओ ॥३॥ जैसे मुख से कहो, वैसे हृदय में ग्रहण करो और वैसे ही व्यवहार में आचरण को लाओ। बालकपन छोड़ दो, जीवन्मुक्ति-प्राप्ति के लिये सर्वाङ्ग रहस्य को ग्रहण करो। एक लक्ष्य

से निरन्तर पुरुषार्थ करके विवेक-वैराग्यादि साधनों से अन्तःकरण को पवित्र करलो ॥४॥ जैसे कामी को अत्यन्त प्रिय स्त्री है और लोभी को धन है। इसी प्रकार जिसको निरन्तर वैराग्य प्रिय है, वही अपनी स्वरूप स्थिति का अविचल स्वराज्य पाता है ॥५॥

क्रिस्टोफर कोलम्बस

इटली के जिनोवा नामक नगर में एक जुलाहे माता-पिता के यहाँ 'क्रिस्टोफर कोलम्बस' चौदहवीं (ई०) शताब्दी में जन्म लिया। यह निपुण नाविक हुआ और ५६ वर्ष की अवस्था में नई दुनियाँ की खोज में संलग्न रहा। तीन जहाज, एक सौ बीस आदमी तथा बारह महीने के जल-भोजन की सामग्री लेकर अज्ञात-दिशा की ओर जल-यात्रा की।

मार्ग में अनेक तूफानों से तथा पृथ्वी का किनारा न मिलने से साथियों ने कई बार विद्रोह किये तथा कोलम्बस की जान लेने तक के लिये तत्पर हुए। परन्तु वह सबको समझा-बुझाकर तथा लालच-भय देकर अपार साहस के बल पर नई दुनिया—अमेरिका की खोज कर ली।

इञ्जिनियर 'पेरी'

अमेरिकन इञ्जिनियर 'पेरी' ने ईस्वी उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तरी ध्रुव की खोज में सतत प्रयत्नशील रहा। कुत्तों के स्लेज (काष्ट की छोटी गाड़ी जो कुत्ते खींचते हैं) द्वारा पेरी सहस्रों मील बर्फ पर यात्रा की। कई बार स्लेज टूट जाने तथा कुत्तों के और अपने बीमार हो जाने से देश लौटता रहा। परन्तु पुनः पुनः यात्रा करता रहा। कई बार बर्फ की अपार ठण्डी, अन्धकार तथा सैकड़ों फीट ऊंची बर्फ की दीवारों एव और न जाने कितनी-कितनी तूफानों को झेल कर यात्रा करता रहा।

पेरी के पैर गल गये। उँगुलियाँ कटवा देनी पड़ी। पीड़ा-पर पीड़ा भोगता रहा, परन्तु उत्तरी ध्रुव-क्षेत्र पर पहुँचने की धुन न छोड़ी

तथा सन् १८२७ ई० से यात्रा आरम्भ कर, कई बार की असफलता से युद्ध करता हुआ ६ अप्रैल १९०९ ई० में पेरी उत्तरी ध्रुव पहुंचा और अमरीका का झण्डा हिम-खण्ड पर स्थापित किया।

हिमालय की सर्वोच्च चोटी

इस पृथ्वी तल पर सबसे ऊंची चोटी हिमालय की है। इसको एवरेस्ट की चोटी भी कहते हैं। यह उन्तीस हजार दो (२९००२) फीट, अर्थात् साढ़े पाँच मील से कुछ अधिक ही ऊंची है। इसके सिखर पर पहुंचने के लिये सन् १९२१ ई० से प्रयत्न होते रहे। अनेक तूफान, बर्फीले विषैले वायु से लड़ते हुए लोह जैसे बर्फ के विशालकाय शिला-खण्डों को काट-काटकर, अनेक बार मानवों की टोली असफल प्रयत्न करती रही। कितने लोगों की बीस हजार फिट के ऊपर हिम-समाधि बन गयी। कितनों को २५-२८ हजार फीट तक पहुंचकर विवशता पूर्वक लौटना पड़ा। इस प्रकार कई बार कितने लोग बर्फ-खण्डों में सदा के लिये सो गये।

१९५२ ई० तक दस अभियान (चढ़ाई) हो चुका और सब असफल रहे। अन्त में २७ मई १९५३ के अभियान में हिलरी तथा शेरपातेनसिंह हिमालय पर चढ़ना प्रारम्भ किये। बर्फ की बड़ी दिवारों में कुल्हाड़ों से काट-काटकर मार्ग बनाते हुए तथा दरार आदि में चिपक-चिपक कर चढ़ते हुए अथक परिश्रम-द्वारा उपर्युक्त कृत संकल्प व्यक्ति चोटी पर पहुँच कर भारत की ध्वजा गाड़ी।

उपर्युक्त उदाहरण-अनुसार कितने वैज्ञानिकों ने विलक्षण वस्तुओं की खोज के लिये तथा विचित्र यन्त्रों के निर्माण में अनेकों प्रयोग किये, जान तक खोयी। परन्तु जहाँ तक सम्भव हुआ, प्रयत्नशील बने रहे।

जीवन के लिये जो बिलकुल निष्प्रयोजन है, ऐसे कार्यों के लिये मनुष्य अपनी जान को जोखिम में डालकर, उसे प्राप्त करता है। फिर जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य—मोक्ष प्राप्ति, शान्ति-प्राप्ति के लिये, हम अपनी जान को क्यों न लगा दें?

परमार्थ मार्ग की थोड़ी कठिनाइयों से व्याकुल होकर, जो इन्द्रिय-मन के थपेड़ों से डगमगाने लगते हैं, उनकी बड़ी ही सोचनीय दशा है। साधक को उपर्युक्त उदाहरणों से साहस-वीरता का पाठ लेना चाहिये, और यह दृढ़ संकल्प करना चाहिये कि "इसी जीवन में इस पाँच फीट के शरीर में ही मोक्ष-साधन करके जीवन का परम एवं चरम उद्देश्य-मोक्ष-प्राप्त करूँगा।

अपने जीवन में वही उन्नति कर सकता है; जो प्रतिकूलताओं से अनवरत युद्ध करता रहता है।

कहा है—

जहाजों को डुबा दे जो, उसे तूफान कहते हैं।
जो तूफानों से टक्कर ले, उसे इन्सान कहते हैं॥

६—शब्द

सकल परवशता मनके हेतु ॥टेक॥

तन मन प्राणी विवश रहे नित, बिन गुरु ज्ञान रचेतु।
मानन्दी दुख देत अहर्निशि, सुख भ्रम लाय भरेतु ॥ १ ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह सब, दुश्मन महा लड़ेतु।
ज्ञान खड्ग लै इन्हें पछारो, मारि के शीघ्र भगेतु ॥ २ ॥
नारी नर को भोग जहाँ लो, सेमर सुवना हेतु।
नेह निरर्थक सार न कछु भी, दुख ही दुख लहेतु ॥ ३ ॥
स्वारथ ही तक प्रेम सबन का, परमारथ न जनेतु।
इन्द्रिन विषय औ देह गठन में, सबही अन्ध रहेतु ॥ ४ ॥
देह गेह व्यवहार जहाँ तक, स्वप्न समान लहेतु।
सूरत लक्ष्य बटोरि ताहि से, अपने रहे निकेतु ॥ ५ ॥

मन की अहंता-ममताही सब परवशता का कारण है॥ टेक॥ शरीर, प्राणी-पदार्थ सब सदैव परवश रूप हैं, गुरु-ज्ञान न होने से ही,

इनमें अहन्ता-ममता बनायी जाती है। यह मानन्दी ही रात-दिन जीव को दुःख देती है, भ्रममात्र सुखाध्यास रूप कचड़ा को हृदय में भरती रहती है ॥१॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह— ये सब जीव के महान शत्रु हैं, ये जीव से लड़ते रहते हैं। ज्ञान रूप तलवार लेकर इन शत्रुओं को मार कर शीघ्र भगा दो ॥ २ ॥ जैसे सेमर के फूल सेवन करने के पश्चात्, सुगा को उससे कुछ सार नहीं मिलता। इसी प्रकार जहाँतक स्त्री-पुरुष के पारस्परिक भोग-विलास हैं—सब सार-हीन हैं। इनमें कुछ लाभ नहीं है, संसार का राग व्यर्थ है; बल्कि संसार के राग में जीव को दुःख ही दुःख की प्राप्ति होती है ॥३॥ संसार के सब जीवों का प्रेम केवल स्वार्थ ही तक रहता है, ये परमार्थ तो कुछ जानते नहीं। इन्द्रिय-विषय भोगों में तथा शरीर के शृंगार-अभिमान में सब जीव विवेक-हीन बने पड़े हैं ॥४॥ देह-गेहादि के जहाँ तक व्यवहार हैं, सब स्वप्न में मिली हुई सम्पत्ति के समान हैं। सद्गुरु का आदेश है कि इनसे लक्ष्य समेट कर, अपने अविनाशी स्वरूप-धाम में स्थित रहो ॥५॥

७—शब्द

मनसिज त्याग करो दुखदाई । टेक ॥

कामासक्त मनुज जब होवै, सब धन धर्म गँवाई ।
सबसे दीन भार जग लादे, ढोय मरै दिन जाई ॥ १ ॥
सदा गुलामी नारि विवश ह्वै, अन्त समय पछिताई ।
तन छूटे पुनि वही वासना, खानिन जाय भ्रमाई ॥ २ ॥
अन्य दुःख जग थोरे जानो, विषय पर्श अधिकाई ।
ताहि हेतु जिव जन्म धरै यह, बारम्बार दुखाई ॥३॥
सर्वश्रेष्ठ हो पूज्य जगत में, तेहि सम और न भाई ।
मुक्त होय जो पाय मनुज तन, सब अध्यास नशाई ॥४॥

सुरत शुद्ध स्वरूप अमर पद, स्थिति ताहि समाई।
जीवन्मुक्त प्रारब्ध अन्त तक, पुनि निरधार रहाई ॥५॥

मन से उत्पन्न दुःखदायी काम का त्याग करो ॥ टेक ॥ जब मनुष्य काम में आशक्त होता है; तब उसके अधीन होकर सब धन-धर्म खो बैठता है। उसको सबसे लाचार होना पड़ता है और संसार-प्रपंच का भार लाद कर, कामी को रात-दिन उसे ढोते-ढोते ही मरना पड़ता है ॥१॥ स्त्री की आसक्ति के वश होकर, सदा उसकी चाकरी करनी पड़ती है; जब जवानी चली जाती है, तब वृद्ध अवस्था में कामी को पश्चाताप करना पड़ता है। शरीर छूट जाने पर, फिर वही काम की वासना योनियों में लेजाकर जीव को भ्रमाती है ॥२॥ संसार के अन्य समस्त दुःखों को थोड़ा ही समझो, परन्तु स्पर्श-विषय अर्थात् काम महान् दुःख है; इससे बड़ा कोई दुःख नहीं है। इस काम-वासना के वश होकर ही जीव नाना जन्म धारण करता है तथा पुनः दुःख पाता है ॥ ३ ॥ उत्तम मनुष्य-शरीर पाकर तथा कामादिक सब वासनाओं को मिटाकर जो जगत् प्रपंच से मुक्त हो जाता है। वही-संसार में सर्वश्रेष्ठ तथा पूज्यनीय होता है। हे भाई! उसके समान अन्य कोई नहीं है ॥ ४ ॥ अपना शुद्ध स्वरूप चैतन्य अविनाशी परम पद रूप है, उसी की स्थिति में लीन होकर, जब तक शरीर का अन्त न हो, तब तक जीवन्मुक्ति-सुख में बिहरते हुए, अन्त में जीव निराधार निःसंग, विदेह-मुक्त रह जायगा ॥५॥

८—शब्द

जग अभिमान रहा न किसी का ॥ टेक ॥

रावण राजा बड़ा प्रतापी, लंका था सब कंचन का।
नाश होत देरी नहिं लागी, चूर हुआ मद मन का ॥१॥
मद के वश दुर्योधन राजा, भेद न जाने पण्डन का।
सब प्राक्रम भूलि गै क्षण में, नाश हुआ सब जन का ॥२॥

धन जन सुत नारी माया में, शान्ति न कबहूँ मन का।
राजा रंक इसी के वश ह्वै, चंचल दुख सहि नित का ॥३॥
बिना यथारथ ज्ञान के पाये, मद नहिं कभी मिटन का।
कोटि उपाय करै जो कोई, सुख न होय कोई जनका ॥४॥
गहि निर्मान मान तजि जग का, यह शिक्षा सन्तन का।
सुरत शान्त होय निज में निज, छूटि जाय दुख जन्म मरन का ॥५॥

इस संसार में किसी का अभिमान नहीं रह गया ॥ टेक ॥ राजा रावण बड़ा तेजवान था, कहते हैं उसकी लंका की राजधानी स्वर्णमय थी। परन्तु उसके नष्ट होते भी विलम्ब न लगा, उसके मनका मद भी चूर-चूर होगया ॥१॥ अभिमान के नशा में चूर होकर राजा दुर्योधन पाण्डव का रहस्य न जान सके कि इनके सहायक चतुर शूर-वीर श्री कृष्ण हैं तथा ये स्वयं बड़े बली हैं। फिर क्षण में कौरवों का सब अभिमान भूल गया और अठारह दिन के युद्ध में सब कौरवों का नाश हो गया ॥२॥ सम्पत्ति, कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री आदि मायावी पदार्थों में मन को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। राजा-रंक सब इसी माया के वश होकर चचल रहते हैं तथा सदैव क्लेश उठाते हैं ॥३॥ स्व-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हुए बिना अहंकार का कभी नाश नहीं हो सकता। चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे, बिना अभिमान नष्ट हुए किसी व्यक्ति को सच्चा सुख नहीं मिल सकता ॥ ४ ॥ संसार-शरीरादि समस्त दृश्योंका अभिमान त्याग कर, निर्मानता धारण करो — यही सन्तों की शिक्षा है। सद्गुरु का आदेश है कि सब जगत्-वासना-त्याग कर, अपने आप चैतन्य स्वरूप में ही, शान्त हो जाय! फिर तो सदा के लिये जन्म-मृत्यु का दुःख छूट जायगा ॥५॥

९— गजल

न कोई मीत इस जग में, सभी मन वश दिखाते हैं ॥टेक॥
जहाँ सुख सिद्ध निज दिखते, वही पर दौड़ कर जाते।

न करते गौर हित अनहित, समय अपना गमाते हैं ।।१।।
ग्रहण मद मांस औ व्यभिचार, हिंसा आदि पापो को ।
धर्म सब नाश करते निज, व्यर्थ मानुष कहाते हैं ।।२।।
भेष तो हंसवत् धरते, चाल वक की सदा उनकी ।
न कर विश्वास उनका मन, जो धोखा में फँसाते हैं ।।३।।
युवा फैशन न कर कौतुक, शब्द अश्लील मत बोलो ।
नशा औ दुर्गुणों को तज, सन्त सज्जन दृढ़ाते हैं ।।४।।
मनन कर जगत के दुख को, जो सत्‌गुण हैं भरो दिल में ।
सफल जीवन उसी से हो, मोक्षगामी कहाते हैं ।।५।।
स्वतः निज रूप में थिर हो, विजाती लक्ष्य सब तजकर ।
हो जीवन्मुक्ति सूरत सुख, न जग में कुछ सुहाते हैं ।।६।।

जीव का इस संसार में कोई मित्र नहीं है, सब जीव अपने मनके वश स्वार्थी हैं ।।टेक।। ये संसारी जीव, जहाँ अपने मन-इन्द्रियों का सुख-लाभ देखते हैं, वहीं पर दौड़कर जाते हैं । कल्याण-अकल्याण का कुछ विचार नहीं करते, अपने अमूल्य मानव-तन के समय को व्यर्थ कार्यों में व्यतीत कर देते हैं ।।१।। मद्य मांस खाते-पीते तथा व्यभिचार हिंसा आदि करके, अपना सब धर्म नष्ट कर देते हैं । पशु-आचरण करते हुए, ये लोग व्यर्थ ही मनुष्य कहलाते हैं ।। २ ।। कितने लोग तो, वेष उज्ज्वल हंस के समान धारण करते हैं, परन्तु उनका आचरण सदैव बकुला का-सा नीचा ही रहता है । कपट स्वाङ्गी लोग, जो धोखा में फंसाने वाले हैं, हे मन ! तू उनकी कभी परतीति न करना ।। ३ ।। जवानी के उन्माद में, भद्दा फैशन करके, शिष्ट पुरुषों-द्वारा निषेधित अव्यवहारिक आचरण मत करो तथा लज्जा-सभ्यता त्यागकर, हँसी-मजाक के भद्दे वाक्य मत बोलो । गाँजा, भाँग, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू इत्यादि मादक वस्तुओं को तथा अन्य सब दुर्गुण-दोषों का त्याग करो— यही सज्जन सन्तों का कहना है ।।४।। सांसारिक दुःखों

को विचार कर, राग का त्याग करो तथा जो उत्तम-उत्तम सद्गुण हैं, उनको अपने हृदय में भर लो। इसी से मानव-जीवन की सफलता है; मोक्ष-मार्ग में चलना सन्तों का आदेश है ॥५॥ जड़-विजाति-दृश्य के समस्त स्मरणों को त्याग कर, अपने आप स्वरूप में ही स्थित होओ। इस प्रकार जो जीवन्मुक्त पुरुष स्वरूपस्थिति सुख में विहरते हैं; उन्हें उस स्थिति के अतिरिक्त संसार में अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥६॥

नीचे कुछ दृष्टान्त दिये जाते हैं, जो देखने में छोटे-छोटे हैं। परन्तु बहुत उपादेय तथा मननीय हैं।

शिर झुकाने में शर्म क्यों ?

एक राजा सन्तों को देखकर अपना शिर झुका दिया करता था। यह काम मन्त्री को अच्छा नहीं लगता था। एक दिन मन्त्री ने कहा—"महाराज! आजकल छोटी-बड़ी सभी जाति के लोग साधु हो जाते हैं। उनके सामने आपका अपना अभिषिक्त शिर झुकाना ठीक नहीं है।" राजा उस समय उत्तर नहीं दिया।

दूसरे दिन राजा ने मृतक मनुष्य का एक शिर मँगवाया, और मन्त्री से पूछा—"इसको बेचा जाय, तो कितना दाम मिलेगा ?" मन्त्री ने कहा—"इसे कोई बिना पैसे के भी नहीं लेगा।" राजा—"क्यों ?" मन्त्री—"यह घृणायुक्त और निरर्थक है।" राजा—"क्या मरने पर ऐसा मेरा भी शिर हो जायगा ?" मन्त्री—"निस्सन्देह !" राजा—"फिर ऐसे घृणास्पद तथा निरर्थक शिर को सन्तों के सामने झुकते देख कर आपको बुरा क्यों लगता है ?" इतना सुनकर मन्त्री लज्जित हो गया और क्षमा माँगी।

शिक्षा—बड़ों के सामने सिर झुकाने में लज्जा नहीं करना चाहिये।

मन्त्री की प्रतिभाशीलता

एक राजा अपने मन्त्री को कोई काम के लिये, सम्राट भोज के पास भेजने के लिये विचार किया; और कुछ विलम्ब तक मन्त्री को

बतलाता रहा कि "सम्राट भोज से इस प्रकार बात करना।" मन्त्री ने कहा—"सरकार ने जो बातें कहीं हैं, सो तो ठीक ही हैं, परन्तु हमें तो वहाँ जाकर, वर्तमान समयानुसार ही बात करनी होगी।"

मन्त्री की बात सुनकर राजा को प्रतीत हुआ कि "मन्त्री को अपनी बुद्धि का अभिमान है।" अतः मन्त्री के चलते समय, राजा ने एक सोने की डिबिया में, गुप्त रूप से थोड़ी-सी राख भरकर मन्त्री को दिया, और कहा—"इसे ज्यों-की-त्यों सम्राट को भेंट में देना।"

सम्राट भोज के यहाँ मन्त्री पहुँचा। शिष्टाचार तथा कुशल-मंगल के पश्चात् मन्त्री ने अपने राजा की ओर से लाई हुई भेंट, सम्राट को समर्पित किया। सम्राट-भोज ने खोला, तो सोने की डिबिया में राख देखकर क्रुद्ध हुआ और कहा—"यह कैसी भेंट है।" मन्त्री ने झट वर्तमान अवसर के अनुसार बात बना कर उत्तर दिया—"सरकार! हमारे राजा साहब एक 'शान्ति-यज्ञ' किये हैं। यह उसी का पवित्र भस्म है।" सम्राट प्रसन्न होकर अपने मस्तक पर चढ़ाया, और अपने सब मन्त्रियों को थोड़ी-थोड़ी दिया तथा मन्त्री के लौटते समय सम्राट ने काफी धन राजा की भेट में अर्पित करने के लिये मन्त्री को दिया। जब मन्त्री राख के बदले काफी धन की भेंट सम्राट से पाकर और लाकर अपने राजा को अर्पित किया; तब अपने मन्त्री की प्रतिभा को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि प्रतिभाशाली तथा नीति-निपुण व्यक्ति को पहले से सिखाना नहीं पड़ता। समाज-परिस्थिति-अनुसार बात व्यवहार करने का उन्हें तुरन्त अनुभव हो जाता है।

क्या मैं अच्छी पालिश नहीं करता था?

एक दफ्तर में हजारों कर्मचारी काम करते थे। एक दिन दो बाबुओं में वाद-विवाद होने लगा। एक धनी घर के थे और दूसरे पहले के साधारण घर के थे। जो धनी घर के थे, वे बात की गर्मी में आकर कहने लगे—"मैं आप को जानता हूँ, पहले हमारे पिताजी के जूते में पालिश किया करते थे।"

पहले के जो गरीब घर के बाबू थे। उन्होंने नम्रता पूर्वक कहा—"आपका कहना तो ठीक है। परन्तु यह बताइये कि मैं अच्छी पालिश नहीं करता था ?" इतना सुनकर पहले वाले बाबू लज्जित हो गये।

तात्पर्य यह है कि छोटे-बड़े कोई काम करने में बुराई नहीं है। बुराई है, उसे ठीक तरह से न करने में।

गधे की लात

भारत वर्ष में "मिर्जा गालिब" एक बड़े शायर हो गये हैं। आप बड़े नम्र और अच्छे विचार के साहित्यकार थे! आपके वर्तमानकाल में "अमीमुद्दीन" नाम के एक मौलवी साहब थे। ये आपकी प्रतिष्ठा को नहीं देख सकते थे। एक बार मौलवी अमीमुद्दीन ने आपके विरोध में निन्दा-गाली की एक गन्दी पुस्तक लिखी। परन्तु आप ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया।

एक बार उनके एक शिष्य ने कहा—"हजरत! इस अमीमुद्दीन नालायक को आपने उत्तर क्यों नहीं दिया ? इस गधे को तो ऐसा मुंह-तोड़ उत्तर देना चाहिये कि जन्म भर याद रखे।" गालिब साहब ने अपने शिष्य को बड़े सुन्दर वाक्य में उत्तर दिया।

उन्होंने कहा—"यदि गधा तुम्हें लात मारे, तो क्या तुम भी उसे लात मारोगे ?"

शिक्षा—वास्तव में भला वही है, जो बुरे से अपने को बचाकर चले। अपना अपमान निन्दा देख-सुनकर सहन तथा क्षमा करे।

उत्तम उत्तर

एक अफसर अपने नौकर के ऊपर क्रोधित होकर कहा—"सूअर के बच्चे।"

नौकर ने कहा—"हुजूर ही हमारे माई-बाप हैं।"

१०—विनय

गुरु युक्ति सब लखा दो, भ्रम तम नशाने वाले।
बन्धन सकल छुड़ा दो, पारख प्रखाने वाले।।टेक।।

घनघोर तम है छाई, निज मार्ग न दिखाई।
रविज्ञान उर उगा दो, सद्मग दिखाने वाले ॥१॥

दुख के अमित हैं घेरे, कहते बने न मेरे।
दुर्मति सभी हटा दो, दुख को मिटाने वाले ॥२॥

क्षण क्षण में आयु जाती, बीती समय न आती।
निजपद में अब डटा दो, मुक्ति बताने वाले ॥३॥

हैं विघ्न जग अनेकों, पर आपकी है टेको।
शुभ नियम यह पुरा दो, अन्तिम निभाने वाले ॥४॥

आवागमन का फेरा सूरत विषय का घेरा।
तिससे विरति करा दो, निज में रहाने वाले ॥५॥

अज्ञान-अन्धकार को दूर करने वाले तथा पारख स्वरूप का बोध करने वाले हे सद्गुरुदेव! मुक्ति-मार्ग का सब उपाय बताकर, सम्पूर्ण बन्धनों से हमें छुड़ा लीजिये ॥टेक॥ अत्यन्त घोर अज्ञान का अन्धकार हृदय में छाया हुआ है, अपना कल्याण-मार्ग नहीं दिखता। हे सत्यमार्ग-दर्शक सद्गुरु! हमारे हृदय में ज्ञान का सूर्योदय करा दीजिये ॥१॥ दुःखों के अपार बन्धनों में हम पड़े हैं, सो कहते नहीं बनता। हे संकट-मोचन! हमारी सब दुर्बुद्धि को दूर कर दीजिये ॥२॥ क्षण-क्षण में आयु बीती जाती है, बीता समय लौटकर पुनः आने वाला नहीं। हे मुक्ति-दर्शक! हमें अपने स्वरूप में स्थित करा दीजिये ॥३॥ यद्यपि-कल्याण-मार्ग में संसार के अनेकों विघ्न हैं, तथापि अब तो आपके ज्ञान का आधार पकड़ रखा है। अन्तिम तक निर्वाह करनेवाले हे सद्गुरु! हमारी यह मोक्ष-मार्ग की शुभ प्रतिज्ञा पूरी करा दीजिये ॥४॥ विषय-वासनाओं के बन्धन तथा जन्म मृत्यु के चक्कर में यह दास पड़ा है। हे स्व-स्वरूप-रत सद्गुरु! इस संसार-पंचविषय से हमारा अखण्ड बैराग्य करा दीजिये ॥५॥

११-गजल

दुनिया से दिल हटाकर, अपने में जोड़ प्यारे ।
जग दुःख से निकलकर, बच के रहो किनारे ॥टेक॥
जो जो है मन से माना, सब हैं पृथक् सयाना ।
भूलो नहीं सुजाना, गुरु ज्ञान से हो न्यारे ॥१॥
हैं जीव सब अनाशी, जड़ दृश्य सब विनाशी ।
गुरु बोध यह उजासी, दिल में सदा तू धारे ॥२॥
गुरु की कृपा अपारा, जीवन के हित जो धारे ।
भव सिन्धु से हो पारा, वैराग्य लहि सुधारे ॥३॥
धनि धन्य सन्त गुरु को, दुख ध्वंस कर अनादी ।
सुरत जो भूला तिनको, सोई सदा दुखारे ॥४॥

ऐ प्यारे बन्धु । संसार से मन हटाकर, अपने चैतन्य स्वरूप में स्थित करो । विषयासक्ति रूप जगत्-दुःख से निकल कर तथा संसार प्रपंच से बचकर, पृथक रहो ॥टेक॥ हे श्रेष्ठ चैतन्य हंस ! विचार करके देख, जिस-जिस को मन से अपना करके तू ने माना है, ये सब तेरे से पृथक् हैं । हे बुद्धिमान् । इन नाशवान् छूटने वाले प्राणी-पदार्थों के राग में मत भूलो, स्वरूप-ज्ञान की दृष्टि धारण कर, सबसे पृथक् हो जाओ ॥ १ ॥ चैतन्य जीव तो सब अविनाशी हैं और दृश्य जड़ शरीरादि कार्य पदार्थ नाशवान् हैं । यह ज्ञान प्रकाशमय स्व-स्वरूप का बोध तुम सदैव हृदय में धारण करो ॥२॥ जगत्-जीवों के हित के लिये सद्गुरु ने जो अमित कृपा धारण कर रखा है । उसको अपना कर तथा वैराग्य-द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करके, संसार-सागर से पार हो जाओ ॥३॥ सदा-सर्वदा के अज्ञान जनित दुःखों को मिटाने वाले विवेकी सद्गुरु-सन्तों की बारम्बार धन्यता है । जो ऐसे सन्त-गुरु को भूल जाता है वह सदैव संसार-व्याधि वश दुखी रहता है ॥४॥

१२—भजन

धर्म सुमति शुभ प्रेम नेम तजि, कुसंग कुमति मन भाया रे ।।टेक।।
विरागवान गुरु सन्त को देखत, मानो ज्वर चढ़ि आया रे ।
आपन दोष न पेखत कबहूँ, अन्य को ढूढत धाया रे ।।१।।
स्वार्थ बुद्धि में रचि पचि निशिदिन, राग द्वेष गढ़ि लाया रे ।
सद्गुरु का उपकार भुलाकर, दुर्मति अधिक बढ़ाया रे ।।२।।
दुर्व्यसनों को धारण करके, द्रव्य को बहुत उड़ाया रे ।
फैशनबाजी भामिनि में रति, विषयन नेह लगाया रे ।।३।।
उदर शिश्न पोषत पशु इव नित, मिथ्या जन्म गँवाया रे ।
हानि लाभ की फिक्र न कुछ भी, ईर्षा द्वन्द्व मचाया रे ।।४।।
गुण मानव सद्रहस्य न उर में, पशुवत् जन्म बिताया रे ।
सूरत निजहित ध्यान न जेहिको, नाहक मनुष कहाया रे ।।५।।

धर्म की सुबुद्धि, कल्याणकारी भक्ति तथा नियम त्याग कर, जगज्जीवों के मनमें कुसंग तथा कुबुद्धि ही अच्छी लगती है ।।टेक।। कितने लोग ऐसे हैं कि वैराग्यवान् सन्त गुरु को देखते ही मानो उनके बुखार चढ़ आया है—ऐसा दुखी हो जाते हैं। अपने दोष कभी नहीं देखते, परन्तु दौड़-दौड़कर दूसरे में दोष खोजते रहते हैं ।।१।। देह-स्वार्थ की बुद्धि में यह जीव आसक्त होकर, रात-दिन दुखी होता है तथा राग द्वेष बनाता रहता है। सद्गुरु का उपकार भूलकर, दुर्बुद्धि ही अधिक बढ़ाता रहता है ।।२।। बुरी आदतों को धारण कर, सारा धन उसी में उड़ा देता है। फैशनबाजी, स्त्री-आसक्ति तथा विषय-विलास में ही अपने तन, मन, धन सब लगा देता है ।। ३ ।। पशु के समान रात-दिन पेट और इन्द्रियों को पालता है; मोक्ष-प्रद उत्तम मानव-जन्म निष्प्रयोजन खोता है। कल्याण-अकल्याण सम्बन्धी यथार्थ हानि-लाभ की चिन्ता त्याग कर, भोगों के लिये ही राग-द्वेष ईर्ष्यादि का झगड़ा मचाये रहता

है ॥४॥ मनुष्य का उत्तम गुण एवं सद्रहस्य हृदय में नहीं है, पशु के समान जीवन बिता रहा है। सद्गुरु का कहना है, जिसको अपने कल्याण का लक्ष्य नहीं है, वह व्यर्थ ही मनुष्य कहलाता है ॥ ५ ॥

१३—विनय शब्द

हमारे उर बसिये साहेब कबीर ।
पारख रूप अनूप दया निधि, बन्दीछोर गम्भीर ॥टेक॥
जड़ चेतन को ग्रन्थि लखायो, जन्म मरण का भेद बतायो ।
खानि बानि नशि वीर ॥ हमारे० १ ॥
पाप वासना वश बहु व्याधी, धरि मैं देह जलत दुख आधी ।
दे मोहि दरश गहायो धीर ॥हमारे० २॥
मन मनसा भवाब्धि में बहते, देखि दयाल बाँह मोहिं गहते ।
गुरु पद पोत बैठि कर तीर, ॥हमारे ०३॥
ऐसो परम उदार गुरु स्वामी, सूरत दास कर जोरि नमामी ।
शरणागत लै हर्‍यो मम पीर ॥हमारे०४॥

काया की कसर को जीतने में वीर, पारखी सन्तरूप हे सद्गुरु श्री कबीर साहेब! आपका पारख ज्ञान हमारे हृदय में बसे। आप अद्वितीय पारख प्रकाशी, दयासागर, बन्धन छुड़ने वाले तथा परम स्थिर हैं ॥टेक॥ जड़-चेतन की ग्रन्थि परखा कर, जन्म-मृत्यु के रहस्य को बताकर, आप कायावीर श्री कबीर साहेब ने खानी-वाणी जाल का उच्छेदन कर दिये ॥१॥ पाप रूपी वासनाओं के वश होकर, शरीर धारण करके, शारीरिक-मानसिक आधि-व्याधि जनित दुःखों में, मैं जल रहा था; आप सद्गुरु ने स्वरुप-ज्ञान के दर्शन कराके धैर्य धारण कराये ॥२॥ मन तथा इच्छा रूप संसार-सागर में मैं बह रहा था, आप कृपालु सद्गुरु देखकर, मेरी बाँह पकड़ कर, एवं स्वरूप-ज्ञान-जहाज पर बैठाकर भव-धारा से पार कर दिये ॥३॥ ऐसे परम सरल

कृपालु गुरु साहेब के चरणों में यह दास दोनों हाथ जोड़ करके नमस्कार करता है। अपनी शरण में लगाकर, इस दास की भव जनित पीड़ा हर लिये ॥४॥

यथार्थ बोलने का ढंग

१४—शब्द

रहौ मन मौन युक्ति से बोलो ॥ टेक ॥

ध्यान रखो कब कैसा समय है, पात्र देखि मुख खोलो।
समय अमोल व्यर्थ न जावै, मन ही मन में तौलो ॥१॥
शब्द भेद बहु भाँति के परखो, है यथार्थ अरु पोलो।
तजि कटुता रौचक्य भयानक, सार मिष्ट गहि बोलो ॥२॥
निन्दा गाली मिथ्या भाषण अहित वचन न बोलो।
जस परकी निज को नहिं अच्छा, तस अपने को तौलो ॥३॥
निशिदिन दोष आपने परखो, यह कर्तव्य अमोलो।
होय सुधार शीघ्र तब अपना, राग द्वेष सब धोलो ॥४॥
अजर अमर पारख पद अपना, रहता सदा अडोलो।
सूरत तैसे रहै निरन्तर, मिटै मोह को झोलो ॥५॥

हे मन! मौन रहना सबसे अच्छा है; यदि बोलना हो, तो युक्ति पूर्वक बोलो ॥टेक॥ यह ध्यान रखो कि कब बोलना चाहिये, वर्तमान समय बोलने योग्य है कि नहीं। जिसके सामने बोलना है; वह हमारी कौन-सी बात सुनने की योग्यता रखता है?—यह सब योग्यता देखकर ही, अपना मुख खोलो; अर्थात् बात बोलो। "कल्याण-साधन करने योग्य अमूल्य समय निष्प्रयोजन न जाने पावे"—बोलने के पहले, मन-ही-मनमें भली भाँति परीक्षा कर लो ॥१॥ शब्द के भेद बहुत प्रकार के हैं, तिसे परीक्षा करो, स्पष्ट रूप से तो एक सत्य है और दूसरा असत्य है। रोचक, भयानक तथा तीखे वचनों को त्याग कर, मीठापन

लेकर सत्य वचन बोलो ॥२॥ निन्दा असत्य-भाषण न करो तथा गाली न दो, किसी की हानि करने वाले वचन तो किसी प्रकार न बोलो। जैसे दूसरे की बुरी बात अपने को अच्छी नहीं लगती, तैसे विचारो तुम्हारी बुरी बात भी, दूसरे को नहीं अच्छी लगती होगी ॥३॥ रात-दिन अपने दोषों की परीक्षा करो, यही तुम्हारा अनमोल कर्तव्य है। मोह-वैर को हृदय से बिलकुल धोडालो, तभी अपना शीघ्र सुधार होगा ॥४॥ अपना पारख स्वरूप अजर, अमर तथा निरन्तर निश्चल है। गुरु कहते हैं, तैसे एकरस स्वरूप में स्थित होने से मोह का बन्धन सर्वथा नष्ट हो जायगा ॥५॥

१५—शब्द

कहो नर कौन तुम्हें भरमाई ॥ टेक ॥

जिन जिन को तुम कर्ता मानो, सो तो तुम ही बनाई।
नाम रूप सब मिथ्या जानो, नामी सत्य कहाई ॥१॥
नारी सुत धन धाम खजाना, तन मन भोग बड़ाई।
ईश ब्रह्म स्वर्गादिक सुख जो, कल्पित तुम्हारो भाई ॥२॥
जगन्नाथ हरिद्वार गया जो, बद्रीनाथ मनलाई।
चार धाम चौरासी अड्डा, तीरथ अमित सुलाई ॥३॥
तीरथ बड़ा कि तीरथकर्ता, यह पद बूझो भाई।
करि सत्संग गहो गुरु पारख, सब भ्रम भूल नशाई ॥४॥
सबका कर्ता मानुष तुम हो, गुरु कबीर समुझाई।
सबको जानत मानत सबको, न्यारा रहत सदाई ॥५॥
स्वामी साहेब जीव है आपी, आपै लखत जुदाई।
जिस दिन आप को निश्चय करता, आपुहिं आप रहाई ॥६॥
सूरत सत्य बोध जो गुरु का, मनन करत दुख जाई।
परख भूमिका पाय विराजत, आवागमन छूटि जाई ॥७॥

ऐ मनुष्य ! कहो, तुम्हारे को किसने भ्रम में डाल रखा है ? ॥टेक॥ जिन-जिन देवी-देवादि को तुम अपने ऊपर मालिक मानते हो, उनको तो तुमने ही कल्पना करके मन की मान्यता में बना रखा है। वाणी-खानी का पसारा सब कल्पित मिथ्या है; सबका नामकरण करने वाला नामी जीव ही सत्य है, ऐसा श्रेष्ठ पुरुष कहते हैं ॥१॥ स्त्री, पुत्र, घर, धन, कोष, शरीर, मन, भोग, ऐश्वर्य, मान, बड़ाई, ईश्वर, ब्रह्म, स्वर्ग आदि के समस्त सुख, हे भाई ! तुम्हारे कल्पित हैं ॥२॥ जगन्नाथ, हरिद्वार, गयाजी, बद्रीनाथ तथा चार धाम चौरासी अड्डा आदि अपार तीर्थों में भूलकर, यह मनुष्य इन्हीं के भ्रमण में मन लगाता है। परन्तु तीर्थ बड़े हैं कि तीर्थों की कल्पना करने वाला मनुष्य बड़ा है ? इस शब्द को हे भाई ! समझो। और सत्संग करके गुरु से स्व-स्वरूप पारख ज्ञान को ग्रहण करो, फिर तुम्हारी सब भ्रम-भूल नष्ट हो हो जायगी ॥ ४ ॥ सद्गुरु कबीर ने बीजक में तो यही समझाया है कि सबकी कल्पना करने वाले तुम सब मनुष्य जीव ही श्रेष्ठ हो यह अविनाशी जीव ही, सबसे सदैव पृथक रहकर, सबको जानता-मानता रहता है ॥ ५ ॥ शरीर-निवासी यह जीव ही ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा, अल्ला, खुदा, गाड, यहोवा आदि संज्ञाओं का श्रेष्ठ स्वामी, सरकार या मालिक है, सबसे पृथक रहकर, सब कल्पनाओं का करने वाला यह जीव ही है। जिस दिन अपने आप को सब अनुमान, कल्पना, भास, अध्यास, शरीर, संसार तथा समस्त दृश्य जड़ से पृथक शुद्ध-बुद्ध नित्य तृप्त चैतन्य पारख रूप निश्चय कर लेता है, फिर तो सबके बन्धनों से रहित होकर, अपने आप ही असंग रह जाता है ॥ ६ ॥ गुरु कहते हैं कि यह सत्य स्व-स्वरूप के बोध का स्मरण करते ही, सब मानसिक क्लेश दूर हो जाते हैं। जीव पारख पद को प्राप्तकर उसमें स्थित हो जाता है तथा सदैव के लिये उसके जन्म-मरण के दुःखों की निवृत्ति हो जाती है ॥७॥

१६—सवैया

स्वार्थ तजै गुरु ज्ञान भजै जग जालन से भ्रम धोख निवारे।

रीति सुप्रीति वही भल साँच करै गुरुभक्ति न वाद दुखारे ।
शुद्ध हिये शुभ काज सरे तेहि पाय परम् पद होत सुखारे ।
भोगन के दुख द्वन्द्व नशे तब आपहि आप सदा रहि न्यारे ।।१।।

शरीर-स्वार्थ की आसक्ति त्यागकर गुरु के ज्ञान का चिन्तन करे; जगत-जाल तथा धोखा-भ्रम-अज्ञान का निवारण करे । आचरण और प्रेम वही अच्छे तथा यथार्थ हैं जिसमें सद्गुरु-सन्तों की भक्ति की जाती या किसी को कुवचन से दुःख नहीं दिया जाता । जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, उसी का कल्याण-कार्य सफल होता है, वह परम् अमृत पद पाकर सदा के लिये सुखी हो जाता है । भोग-वासना-जनित सब दुःख-द्वन्द्व उसके उस समय नष्ट हो जाते हैं, वह अपने आप सबसे पृथक् निराधार स्थित रहता है ।।१।।

आपन मीत अनेक रहे जग स्वारथ ही तक प्रीति दिखाई ।
स्वार्थ न पूर्ति दिखे जेहि को जब त्याग करे नहिं देर लगाई ।।
सूरत ताहिं के संग तजो नर साधु गुरू पद प्रेम बढ़ाई ।
जन्म सफल फल मोक्ष मिलो तेहि धन्य सो जग में होत बड़ाई ।।२।।

संसार में मनुष्य के अपने मित्र अनेकों रहते हैं, परन्तु सबका प्रेम स्वार्थ-सिद्धि तक ही दिखता है । जिसको जिस समय में जिससे अपना स्वार्थ-सिद्ध होते नहीं दिखता, वह मित्र-से मित्र को त्याग करने में विलम्ब नहीं लगता । गुरु कहते हैं, ऐसे स्वार्थी मनुष्यों की संगत त्याग-कर, निःस्वार्थ परोपकारी सन्त-गुरु के चरण कमलों में जो प्रेम बढ़ाता है । उसका ही मानव-जन्म कृतार्थ होता है, उसी को ही दुर्लभ मोक्ष पद की प्राप्ति होती है, वही धन्य है, संसार में उसी की वास्तविक प्रशंसा है ।

१७—शब्द

शान्ति सदा गुरु भक्ति किये ते ।।टेक।।
काम क्रोध मद लोभ विनाशन, तोष क्षमा सतबोध गहेते ।।१।।

पंच विषय स्नेह समन ह्वै, दोष दृष्टि वैराग्य लहेते ॥२॥
त्यागि कुसंग सुसंग गहै नित, सद्ग्रन्थन अध्ययन कियेते ॥३॥
इष्ट देव गुरू साधु सेवा नित, सुरत करि नित शुद्ध हियेते ॥४॥
मुक्त होय त्रय दुःख नशै तब, स्व-स्वरूप निराधार रहेते ॥५॥

वैराग्यवान्, विवेकी, स्वरूपनिष्ठ सद्गुरु की भक्ति करने से ही हृदय में नित्य शान्ति की प्राप्ति होगी। (तन, मन, वचन से यथाशक्ति गुरु की सेवा करना तथा आज्ञा बजाना ही—प्रथमा भक्ति है। फिर सत्संग द्वारा स्वरूप ज्ञान तथा आचरण—ज्ञान को प्राप्त करना—द्वितीया भक्ति है। पुनः सबसे निराश होकर स्व-स्वरूप में स्थित होना- तृतीया अन्तिम भक्ति है।) ॥टेक॥ सन्तोष, क्षमा, स्वरूपबोध प्राप्त होने पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मदादि नष्ट हो जाते हैं ॥१॥ जगत् में दोष-दर्शन, अखण्ड वैराग्य धारण करने से, पंच विषयों की आसक्ति समूल नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥ बुरे संग का त्याग कर सदैव सत्संग करना चाहिये, तथा सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये ॥३॥ इष्टदेव साधु-गुरु की सेवा-भक्ति सदैव करते रहने से अपना हृदय शुद्ध होता है ॥४॥ जगत्-जालों से रहित हो जाने पर ही दैहिक-दैविक भौतिक—इन तीनों तापों का अन्त होकर, स्वरूप मात्र असंग रह जायगा ॥ ५ ॥

१८-शब्द

धरम मनुज का सार जियरा, धरम मनुज का सार ॥टेक।
निज सम जानि दया जीवन पर, हिंसा पाप को टार।
चरण शरण गुरु भक्ति सरोरुह, गहे होय भव पार ॥१॥
सत्य विचार क्षमा धीरज लहि, बिरति विवेक को धार।
धरम अंग यह सबको रक्षक, गुरु सत्संग अधार ॥२
शम दम संयम शील आचरण समता सजग को धार।
स्ववश शान्ति गुरु ज्ञान को धारण, राग रु द्वेष निकार ॥३॥
आदर प्रीति रीति हितकर वच, मिष्ट सरल उच्चार।

जीवनचर्य रु त्याग बरत गहि, शौच तोष उर धार ॥४॥
शोध बोध है धरम निरन्तर, कुसंग रहित व्यवहार।
दोषदृष्टि जग भोग विषय में, दृढ़ उपराम को धार ॥५॥
सद्ग्रन्थन को पाठ पठन नित, धर्म रु नेम सुधार।
आशा तृष्णा चाह जहाँ लों, गुरू ज्ञान से जार ॥६॥
देह गेह अभिमान सकल तजि, मन द्रष्टा रफ्तार।
धरम सकल शुभ साधन नर तन, मोक्ष होन का द्वार ॥७॥
दिव्य ज्ञान पुरुषार्थ धरम यह, सुखाध्यास को मार।
सूरत गुरु पद नेह अन्त तक, मुक्त सदा निरधार ॥८॥

हे चैतन्य जीव ! इस मनुष्य जीवन में, धर्म का आचरण करना ही मुख्य लाभ है। क्योंकि धर्म ही कामदमणि के समान जीव को मनवांछित (अर्थ, भोग और मोक्ष) फल देने वाला है; वह धर्म का स्वरूप क्या है, इसे नीचे सात पदों में बताया जाता है ॥टेक॥ चलते-फिरते सब जीवों को अपने समान जानकर, सब पर दयापालन करना तथा जीव-हत्या रूप पाप का त्याग करना महान धर्म है। सद्गुरु के चरण-कमलों की भक्ति तथा अधीनता धारण करके, यह जीव संसार से छूट जाता है ॥१॥ सत्य, विचार, क्षमा, धैर्य, वैराग्य तथा विवेक को धारण करना चाहिये। गुरु तथा साधु की सगत का आधार रखना चाहिये—ये धर्म के अंग सब जीवों के रक्षक हैं ॥ २ ॥ मन का नाश करना रूप शम, बुराइयों से इन्द्रियों को रोकना रूपदम, उचित मात्रा में आचरण रखना रूप संयम; नम्रता रूपी शील तथा समता और सावधानी आदि आचरण रूपी धर्म को धारण करना चाहिये। राग तथा द्वेष ये दो प्रबल शत्रु को हृदय से निकाल कर, अपने आप स्ववश एवं शान्त रहना—इस गुरु-ज्ञान को धारण करना चाहिये ॥३॥ सबका यथायोग्य आदर करना, सबसे प्रेम रखना, समाज के उचित आचार का पालन करना, मीठा सरल तथा हितकर वचन उच्चारण

करना। ब्रह्मचर्य और त्यागव्रत-धारण करना, बाहर-भीतर की पवित्रता रखना एवं हृदय में सन्तोष धारण करना चाहिये ॥४॥ अपना व्यवहार कुसंग-रहित रखना, स्वरूप-ज्ञान का ही निरन्तर शोध-विचार रखना परम् धर्म है। सांसारिक विषय भोगों में दोष की दृष्टि निश्चय करके, दृढ़ उपरामता (संसार से उदासीनता) धारण करना चाहिये ॥५॥ नियम पूर्वक सद्ग्रन्थों का सदा पाठ-पठन करते हुए अपना सुधार करना—धर्म है। विषयों की आशा-तृष्णा एवं जहाँ तक इच्छायें हैं, सद्गुरु के ज्ञान-तेज से सबको जला डालना चाहिये ॥६॥ देह-गेहादि की सम्पूर्ण अहन्ता-ममता त्याग कर, मन-स्मरणों का द्रष्टा बनने का अभ्यास करना चाहिये। कल्याण-साधन रूपी धर्म की सफलता इस नर-तन में ही हो सकती है, क्योंकि मुक्ति का द्वार यही है ॥७॥ जिस पुरुषार्थ-द्वारा सम्पूर्ण सुखों की आसक्ति त्यागकर, दिव्य स्वरूप-ज्ञान में स्थित हो, वही परम धर्म है। गुरु कहते हैं कि शरीरान्त तक श्रेष्ठ-स्वरूप में एकरस प्रेम बना रहे, फिर यह जीव असंग मुक्त हो रहेगा ॥ ८ ॥

नीचे कुछ शिक्षा-प्रद दृष्टान्त दिये जाते हैं, इससे मनन करके लाभ उठाइये।

कु-शासन से सिंह अच्छा

एक जङ्गल में से होकर एक राजा जा रहा था। उसने एक स्त्री का रोना सुना। उसके पास जाकर पूछा, तो उसने बताया—"हमारे पति और पुत्र को सिंह ने खा लिया है।" राजा ने कहा—"जंगल को छोड़कर बस्ती में क्यों नहीं चली जाती ?" स्त्री ने तुरन्त उत्तर दिया—"यहाँ और तो जो कुछ हो; परन्तु किसी अत्याचारी राजा का शासन नहीं है।"

उपर्युक्त बात का राजा के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा और वह अपने शासन का अच्छा सुधार किया।

ऊँचा कुल नहीं ऊँचा चरित्र चाहिये

एक अच्छे स्वभाव के सज्जन थे। एक ऊंचे माने हुए बाबू ने

उनसे कहा—"तुम नीच कुल के हो, हमारी-तुम्हारी बराबरी क्या है ?" सज्जन ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया—"आपके कुल की उच्चता, आप से अन्त होती है; और हमारे कुल की उच्चता हमसे आरम्भ होती है।"

वास्तव में ऊँचा चरित्र चाहिये। ऊँचे कुल मात्र से कुछ नहीं होता।

सम्राट भोज की उदारता

धारा नगरी का सम्राट भोज बड़ा उदार और दानी था। दान करते समय वह धन को पानी की भाँति उलीचता था। मन्त्री ने सोचा—"इसप्रकार दान करने से तो राज्य-कोष खाली हो जायगा।" अतएव जिस सभा भवन में सम्राट बैठते थे। उसके सामने एक पट्ट पर मन्त्री ने खड़िया से लिख दिया—

"आपदर्थे धनं रक्षेद्"

अर्थात् "आपत्तिकाल के लिए धन की रक्षा करनी चाहिये।" प्रातः-काल सम्राट जब सभा-भवन में आये तो एक पट्ट पर लिखे हुए वाक्य को देखा; और उत्तर में लिख दिया—

"श्रीमतामापदः कुतः ?"

अर्थात् "भाग्यशाली को आपत्ति कहाँ ?"

सायंकाल को जब मन्त्री ने उसे पढ़ा, तो सम्राट के चले जाने पर चुपके से यह लिखा कि—

"कदाचित् कुपितो दैवः"

अर्थात् "यदि कभी प्रारब्ध रूठ जाय तो ?"

दूसरे दिन मन्त्री के उत्तर में सम्राट ने बड़ा उत्तम उत्तर लिखा—

"सञ्चितंपि विनस्यति"

अर्थात् "तब तो संचित धन भी नष्ट हो सकता है।"

यह वाक्य पढ़ कर मन्त्री चुप रह गया। सम्राट भोज जीवन-पर्यंत अविराम दान-पथ पर चलते रहे।

निष्फल आशा

एक धोबी के गधे से और नट के गधे से मित्रता थी। एक दिन दोनों इकट्ठे हुए। आपस में कुशल मंगल हुआ। धोबी के गधे ने कहा—मित्र! तुम बोझा लादकर दिनभर एक ग्राम से दूसरे ग्राम नट के साथ घूमते रहते हो। खाने भी ठीक से नहीं पाते। अतः हमारे स्वामी के यहाँ चले आओ। हमें तो प्रातःकाल केवल एक लादी लाद कर तालाब पर ले जाना पड़ता है। फिर दिन भर तालाब में चरते हैं और स्वामी कपड़े धोता है। जब सायंकाल हो जाता है तब उन सूखे कपड़ों को लाद कर पुनः घर ले आते हैं। बस इतना ही काम करते हैं।

नट के गधे ने उत्तर दिया—भाई! इतना दुःख उठाकर मैं नट के पास जो रहता हूँ, उसमें एक लाभ दिखता है, जो निकट भविष्य में फलित होने वाला है। वह यह कि नट दो बाँस गाड़कर, उस पर रस्सी बाँध देता है। उस रस्सी पर अपनी युवती लड़की को चढ़ाकर नचाता है। और उसके नाचते समय नट कहता है कि "देखना रस्सी से गिरना नहीं, नहीं तो तेरा विवाह इसी गधे के साथ करूंगा।"

मैं भी वहीं खड़ा खड़ा इन बातों को सुनता हूँ। मैं सोचता हूँ वह हरामजादी किसी दिन तो गिरेगी। तब तो मेरे साथ उसका विवाह होगा ही।

इस दृष्टान्तानुसार ही संसार के लोग मृगतृष्णामय विषय-सुखों की असफल आशा रखते हैं। जो कभी पूरी होने वाली नहीं।

गुरु-कबीर-बीजक-भाव

१९—पद

सद्गुरु कबीर का कहना जो, दर्शाता नित्य बीजक ।।टेक।।

अमर अविनाशी जीव हैं, ये कहता नित्य बीजक।

जड़ से पृथक हैं जीव सब, परखाता नित्य बीजक ॥१॥
सबकी कसर औ सन्धि को, बतलाता नित्य बीजक ।
मानव समाज धर्म को, दृढ़ाता नित्य बीजक ॥२॥
पाखण्ड जेते जगत में, हटाता नित्य बीजक ।
जीवों के भूल भरम को, नशाता नित्य बीजक ॥३॥
सद् आचरणों में चलना नित, बतलाता नित्य बीजक ।
खानी बानी जग जाल को, लखाता नित्य बीजक ॥४॥
न फँसना मोह माया में; चेताता नित्य बीजक ।
बन्धन अनन्तों जीव के, छुड़ाता नित्य बीजक ॥५॥
करता न कोई जक्त में, दर्शाता नित्य बीजक ।
थापक मनुज ही सर्व का, बदता नित्य बीजक ॥६॥
भाषा सरल हितकर कहो, सुझाता नित्य बीजक ।
गुरुमुख वही जानै पढ़ै, पढ़ाता नित्य बीजक ॥७॥
सूरत सद्गुरु की बलिहारी, जो भाता नित्य बीजक ।
है कृपा श्री कबीर की, जो ध्याता नित्य बीजक ॥८॥

सद्गुरु श्री कबीर साहेब के पारख सिद्धान्त का जो निर्णय है; बीजक सद्ग्रन्थ सदैव उसी का ज्ञान कराता है ॥टेक॥ सब जीव जड़-तत्त्वों से भिन्न अविनाशी अमृत स्वरूप हैं- यह बीजक बताता है 'जीवहिं मरण न होय' ॥१॥ सबके दोषों तथा रहस्यों को बतलाकर मानव-समाज का धर्म प्रतिपादन करता है ॥ २ ॥ संसार में जितने पाखण्ड हैं, उनको तोड़कर जीवों के अज्ञान तथा विषयासक्ति को नाश करने की युक्ति बीजक बतलाता है ॥३॥ बीजक और क्या-क्या ज्ञान दर्शाता है ? सदैव सदाचरणों में मनुष्य को चलना, खानी-वाणी के जाल से रहित रहना ॥४॥ मोह-माया में न फँसना, सर्व बन्धनों का

त्याग करना—बीजक सिखाता है ॥ ५ ॥ जगत् कर्ता कोई नहीं, जगत् स्वतः अनादि है—यह दर्शाकर, बीजक यह बतलाता है कि मनुष्य ही कर्ता-धर्ता, देवी-देवादि की कल्पना करके सिद्ध करने वाला है। अतः कल्पित कल्पना असत्य है और कल्पना करने वाला जीव सत्य है ॥६॥ सबसे हितकारी तथा मीठे वचन बोलो; बीजक यह पाठ नित्य पढ़ाता है कि गुरु मुख वही है, जो पारख निर्णय वचनों को पढ़े-गुने तथा स्व-स्वरूप को यथार्थ रूप से जाने ॥७॥ गुरु का कहना है कि पारख-ज्ञान-भण्डार बीजक को कृपा करके जिन्होंने रचा, उन सद्गुरु श्री कबीर साहेब की तथा जिसे बीजक-ज्ञान-पारख प्रिय हो एवं बीजक की सार-शिक्षा रूप जो स्व-स्वरूप का निरन्तर अभ्यासी हो, उस जिज्ञासु की प्रशंसा है ॥८॥

२० — शब्द—गुरु-प्रीति-याचना

हमैं अब चहिये गुरुपद प्रीति ॥ टेक ॥

तजि सब मान गुमान हृदय से, भक्ति भाव की लै लै रीति ॥१॥
सब कुछ भोग मिल्यो मोहि जग के, बिन गुरु सब विपरीति ॥२॥
मिल अनमिल दुख ही दुख बीत्यो, सब स्वारथ तक प्रीति ॥३॥
सबके राग-द्वेष में फँसि फँसि, खोयों गुरु की नीति ॥४॥
यश विद्या सुख मान में भूल्यों, कीन्हों बहुत अनीति ॥५॥
यकरस जेहि विधि भाव न छूटै, गहौं सोई परतीति ॥६॥
सबके तान बान को तजकर, निज स्वरूप की प्रीति ॥७॥
सुरत करि प्रसन्न गुरु देवहिं, वही चलूँ मैं रीति ॥८॥

अब तो हमको राग-द्वेष-हीन वैराग्य-प्रिय सद्गुरु के चरण कमलों का प्रेम ही चाहिये। अथवा अब निरन्तर स्व-स्वरूप में ही रति की इच्छा है। टेक ॥ मन से सब मान-अभिमान त्याग कर, तथा प्रेम भक्ति का आचरण करके स्वरूप-स्थिति करूँगा ॥ १ ॥ अनादिकाल से

संसार के सम्पूर्ण भोग-विलास मिल चुके, परन्तु बिना गुरु-पारख के, सब जीव की स्थिति से उल्टे थे ।।२।। भोगके संयोग में तथा वियोग में दुःख-ही-दुःख भोगने पड़े और संसारी प्राणी तो सब केवल स्वार्थ के प्रेमी हैं ही ।। ३ ।। अपनी वैराग्य दशा को भूल कर तथा संसारी मनुष्यों के मोह तथा वैर के जाल में फंस-फँसकर सद्‌गुरु के उपदिष्ट बोध आचरण को नष्ट कर दिया ।। ४ ।। यश-कीर्ति के लालच में, विद्याभिमान तथा मान-बड़ाई के सुख एवं अहन्ता-ममता में भूल कर, बहुत अन्याय कर डाला । अर्थात् वैराग्य-भक्ति के विरुद्ध उदण्डता, जगत्-प्रपंच की प्रवृत्ति का बोझा शिर पर रख कर संसारी वत नाचने लगा ।। ५ ।। भक्ति, वैराग्य एवं स्थिति—रहस्य के एकरस भाव जिस प्रकार से न उखड़ने पावें, वही विश्वास ग्रहण करूँगा । अर्थात् वैराग्य-प्रिय साधु-गुरु अनन्त उपकारी हैं, छूटने वाले संसार-शरीर के प्रति अभाव रखना ही परम् कर्तव्य है, प्रारब्धाधीन शरीर-निर्वाह होता रहेगा । निर्वाह की चिन्ता त्याग कर, हमें केवल स्वरूप-स्थिति के अभ्यास में ही तत्पर होना है—आदि निश्चय धारण करूँगा ।। ६ ।। सबके राग-द्वेष और प्रपंच-प्रवृत्ति को त्यागकर स्व-स्वरूप में ही प्रेम करूँगा ।। ७ ।। ग्रन्थकर्ता लघुभाव लेकर कहते हैं कि यह "सूरदास" गुरुदेव को प्रसन्न करके उन्हीं के भक्ति-वैराग्य तथा स्थिति-रहस्य के अनुसार चलेगा ।। ८ ।।

तीन के तिकड़म से बचिये

भारत के उत्तरीय क्षेत्र के एक जंगल तथा पर्वत में एक गुरु और एक शिष्य रहते थे । कुछ दिनों के पश्चात् गुरु जीने शिष्य को सदुपदेश देकर पृथक दूसरे पर्वत पर अकेले रहकर भजन करने की इच्छा प्रगट किया । शिष्यने कहा—"सद्‌गुरु ! आप मुझे अपनी शरण में रखिये ।" गुरु ने कहा—"तुम्हें सब प्रकार की शिक्षा मिल चुकी है, अब अपना साधन-भजन करो और मैं अपना करूँ । देखना तीन के तिकड़म (कंचन, कामिनी और कीर्ति) से बचना ।' ऐसा कहकर गुरुजी दूसरे पर्वत पर चले गये ।

कुछ दिन तो वह साधु ठीक साधन में रहा । एक दिन पर्वत पर

घूमते-घूमते उसे रत्नों की एक खानि देखने में आयी। वह सोचने लगा—"यह तो अपार सम्पत्ति है। यदि देहात से राजगीरों को बुलाकर, इन रत्नों को खुदवाया जाय तो बड़ा धन प्राप्त होगा।

उपर्युक्त धन प्राप्त हो जाने के पश्चात् एक बहुत विशाल मन्दिर बनवाऊँगा, और उसमें गुरु जी को पधरवाऊँगा। फिर जब गुरुजी के दर्शनार्थ देहात से जनता आने लगेगी, तो उनके रहने के लिये धर्मशाला भी बनवानी पड़ेगी। जब प्रचार बढ़ जायगा और यहाँ लाखों की संख्या में जनता आने लगेगी, तब मीलों में धर्मशाले बनवाने पड़ेंगे। उनके पीने तथा स्नान करने के लिये जल की आवश्यकता होगी। अतः बड़ी झीलें, कूप तथा नलकूप भी बनवाने या गड़वाने पड़ेंगे।

यात्रियों की सुविधा के लिये देहात से पक्की सड़क भी बनवाना आवश्यक हो जायगा। साथ ही बिजली, तार और फोन भी ले आया जायगा, जिससे व्यवहार की सरलता हो।

सन्तों के रहने के लिये भी कई मन्दिर, भण्डारघर, प्रवचन-शदन, कार्यालय, वाचनालय तथा दर्शन-कक्ष के निर्माण करने होंगे। और क्या-क्या करने होंगे? वह तो जब व्यवहार सामने आयेगा, तब सोचा जायगा। इन सब कार्यों में अरबों रुपयों की आवश्यकता होगी और रत्नों को काफी खपत हो जायगी। इन कार्यों से जितने रत्न बच रहेंगे; उनको कोष रूप में रखा जायगा। जिससे समय पर काम आवें।"

इस प्रकार कल्पना की उड़ान ही में उसे गुरु के वचन का भी स्मरण हो आया और सोचा—"गुरु ने तीन के तिकड़म से बचने को कहा था। तिसमें यह कंचन भी है।" परन्तु उस साधु ने पुनर्विचार किया कि "यह तो सब धर्म के कार्य होंगे। मैं उसमें आसक्त नहीं होऊँगा, फिर क्या दोष है?"

अतएव उपर्युक्त रीति से विचार कर वह साधु देहात से १०-१५ राजगीरों (कारीगरों) को बुला लाया, तथा उनको मजदूरी निश्चित

करके रत्नों के खोदनेमें लगा दिया। एकदिन की खोदाई में राजगीरों को अनुभव हुआ कि अपार सम्पत्ति है। अतः उन लोगों के मन में लोभ बस गया, और सोचा कि हम सब दश-पन्द्रह हैं, यह साधु अकेला है। फिर क्यों न हम लोग इसे बाँधकर तथा सारे रत्नों को खोदकर आपस में बाट लें।

उपर्युक्त बात निश्चित हुई और जिससे साधु हिलडुल न सके और न बोल सके, यह विचार कर राजगीरों ने साधु के हाथ-पैर-मुख आदि को भली-भाँति बाँध दिया, और एक वृक्ष में टाँग दिया तथा सारा धन खोद ले गये।

दूसरे दिन जब चरवाहे आये तो साधु को इस प्रकार बँधा देख कर तुरन्त उसके हाथ-पैर आदि खोले। गुरु के उपदेश का स्मरण करके और प्रत्यक्ष कंचन के चक्कर में कष्ट पाकर वह साधु बहुत पश्चाताप किया और प्रायोगिक अनुभव हो जाने से उस दिन से उसके मन में सम्पत्ति की ओर से पूरा वैराग्य हो गया।

कुछ दिन बीत चले, एक समय में वन की किसी झाड़ी में मधुर स्वर से गुञ्जित, रोने का शब्द सुनाई पड़ा। साधु वहाँ जाकर देखता है, तो एक सुकुमार अवस्था की नवबाला करुणा-क्रन्दन कर रही है। साधु ने रोने का कारण पूछा। बाला ने बताया कि 'मेरा पति मर गया है। अब मेरा कोई आधार नहीं रह गया, मैं अत्यन्त दुखी हूँ।" साधु ने द्रवित होकर कुछ ज्ञान की बातें समझाया।

वह बाला अधिक करुणा-विलाप करते हुए साधु के चरणों को पकड़ ली, और कहने लगी—"महात्मन्! आपही हमारे आधार हैं, इस समय के करणाधार हैं। आप अपनी शरणों में मुझे रख लीजिये।" साधु ने उसे झिड़कते हुए कहा—"चल-चल। माया को मैं संग में नहीं रख सकता। तू यहाँ से शीघ्र चली जा।" वह बोली—'हे स्वामिन्! मैं आपके साधन-भजन में कोई विघ्न नहीं डालूँगी। आप तो ब्रह्मचारी हैं ही, मैं भी ब्रह्मचारिणी बनकर रहूँगी। आपकी सेवा करुंगी; और आपके साथ मैं भी तर जाऊँगी।"

साधु के मनमें स्मरण हुआ कि "सद्गुरु ने तीन के तिकड़म से बचने को कहा था। उसमें यह कामिनी मुख्य बन्धन है।" ऐसा विचार कर पुनः सोचा "अच्छा क्या है, मैं सावधान होकर रहूँगा, तो यह क्या करेगी। कहा है—

"चन्दन विष व्यापै नहीं. लिपटा रहै भुजंग।"

इस प्रकार विचार कर उस युवती को पास में रख लिया। वास्तव में साधु के हृदय में प्रथम अज्ञान युक्त दया हुई। पीछे से एक साथ रहते-रहते परस्पर मोह उत्पन्न हुआ और दोनों गृहस्थ-जैसे रहने लगे। उसने एक पर्ण कुटिया बना ली। कुछ दिन में एक पुत्र हुआ। पुत्र दो वर्ष का हो गया था। साधु का जीवन पूरा माया-मोह-मय था।

एक दिन वन से सिंह आकर साधु के बच्चे को उठा ले गया। वह भेषधारी साधु पुत्र-मोह में व्याकुल होकर रो रहा था। संयोगाधीन उसी दिन अचानक उसके गुरुजी आपड़े और शिष्य को रोते देखकर पूछ पड़े—"अरे! तू रोता क्यों है?" साधु लज्जित और भयभीत होकर गुरुजी के चरणों में गिर पड़ा और अपनी राम-कहानी कह सुनायी। गुरु ने कहा—'यही तो मैं कहा था कि "तीन के तिकड़म से बचना!

वह साधु उस युवती को त्याग कर और बहुत पश्चाताप करके दूर एक दूसरे पर्वत की तरायी में चला गया। वहाँ से देहात कुछ निकट पड़ता था। कुछ दिन तो वह साधु अपने साधन-भजन में अच्छा लगा रहा। एक दिन देहात से एक मनुष्य आ गया। उसका इकलौता लड़का बीमार था। वह दुखितचित्त था, महात्मा से कुछ 'दुवा-भभूत' चाहता था। वह बारम्बार विनय करता, परन्तु साधु उसे हटाने का प्रयत्न करता।

निदान साधु अपने शिर को खुजला रहा था। उसके हाथ में एक-दो बाल टूट कर आ गये। साधु कुतूहल-वश उसी बाल को उस मनुष्य को दे दिया। वह मनुष्य महात्मा का प्रसाद समझ कर लाया और उस बाल को अपने पुत्र के हाथ में बाँध दिया। संयोगाधीन प्रारब्ध भोग

की समाप्ति होने से दो-चार दिन में उसकी बीमारी दूर हो गयी। बीमारी तो दूर हुई कर्म-भोग पूरा होने पर। परन्तु उस अल्पज्ञ मनुष्य ने मान लिया साधु के बाल का प्रभाव !

अब तो सर्वत्र प्रचार हो गया कि पास के पर्वत की तरायी में एक साधु आया है। उसके बाल मिल जाने पर सब संकट कट जाते हैं। दुनिया अज्ञानी और पीड़ित है ही। अतएव झुण्ड-के झुण्ड संसारी, साधु के पास बाल माँगने आने लगे। साधु को पहले तो बुरा लगा। परन्तु पीछे से उस साधन-द्वारा मान-बड़ाई की प्राप्ति देखकर तथा सर्वत्र अपनी कीर्ति फैलती हुई सुनकर, हर्षित हुआ।

साधु के पास हरक्षण सौ-पचास की भीड़ रहने लगी। मान-बड़ाई में पड़कर शरीर के सारे बाल (रोम) उखाड़ कर लोगों को दे डाले और शिर के भी केवल तीन भाग में से एक भाग बाल रह गये।

अब साधु बहुत तंग आ गया और लोगों को बाल देने से अस्वीकार करने लगा। एक दिन एक अहीर की माता बीमार हुई। अहीर दो भाई थे, दोनों ने विचार किया कि "जाकर महात्मा से बाल माँग लाना है।" अतः भाई बाल माँगने गया। जब साधु ने उसे बाल नहीं दिया, तो वह लौटकर अपने भाई को बतलाया कि "साधु ने बाल नहीं दिया।"

निदान उन दोनों अहीर भाइयों ने आपस में विचार किया कि साधु यदि सरलता से बाल नहीं दे रहा है, तो क्यों न उसके मूड़ को ही काट लावें। जिससे सारे बाल अपने ही घर में आजायँगे।"

दोनों ने इस प्रकार विचार कर और एक तलवार को लेकर साधु के पास गये और एक ने साधु को गिरा कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा और दूसरा उसके सिर को काटना ही चाहता था, कि साधु बहुत रोने-गिड़गिड़ाने लगा और कहा कि "भाई ! हमारे शिर के सारे बाल उखाड़ लो, परन्तु शिर न काटो।" उन दोनों अहीरों ने साधु की विनती सुन ली, और उसके सिर के सारे बाल उखाड़ कर घर ले आये और साधु को छोड़ दिये।

वह साधु प्रत्यक्ष घटना से और गुरु के उपदेश को स्मरण कर बहुत पश्चाताप करने लगा—"हाय! मैं गुरु-उपदेश का दुरुपयोग ही किया। इसीलिये भलीभाँति दुःख भोगा। गुरु ने तीन के तिकड़म से बचकर रहने को कहा; परन्तु मैं अधम कंचन-कामिनी के चक्कर में पड़कर प्रथम दुःख भोग चुका। अबकी बार कीर्ति के चक्कर में तो जान ही पर लाला आ गया था।"

इस प्रकार विचार कर वह संसार से उपराम हो गया और इन तीनों तिकड़मों को शत्रु के समान समझ कर तथा इनसे विमुख होकर साधन-भजन में लग गया।

शिक्षा—साधु को चाहिये कि वह अधिक द्रव्य के चक्कर में न पड़े और न अधिक धनका संग्रह करे। बिना माँगे जो प्रारब्धानुसार मिलता रहे, उसमें भी अधिक का त्याग करते हुए या समाज तथा जनता के हित में लगाते हुए असंग्रही रहे। यहाँ का तात्पर्य यह नहीं है कि "सेवकों-द्वारा की हुई पूजा-बिदाई न ले या पैसा छूना ही पाप समझ ले।" केवल शुष्क ज्ञान और शुष्क त्याग से काम नहीं चलता। यहाँ का तात्पर्य यह है कि साधुको अधिक संग्रहवृत्ति से दूर रहना चाहिये।

स्त्री का त्यागी तो तन, मन, वचन से होना ही चाहिये। स्त्री की संगत से प्रथम के बड़े-बड़े तपस्वी वैराग्यवान् नष्ट हो चुके हैं। अतः स्त्री को पास रखकर वैराग्य करने का दम्भ भूल का मुख्य लक्षण है!

साधक के लिये कीर्ति ऐसी गुदगुदी है कि यह प्रथम हँसा कर फिर रुलाती है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि अधिक हर्ष के पश्चात् शोक आता है। जब मनुष्य अधिक हँसता है, तब उसके नेत्रों से आँसू आ जाते हैं। अतएव मान-बड़ाई और कीर्तिके हर्ष का फुलावा साधु-साधक के लिये फाँसी के तुल्य है। इसलिये इनसे अपने को हर समय बचाये रखना साधु-साधक की परम बुद्धिमानी है। इस प्रकार साधु को तीन के तिकड़म से बचना चाहिये।

छहों खण्डों सहित बोधसार सटीक समाप्त।

मुद्रक : श्री विश्वेश्वर प्रेस, बुलानाला, वाराणसी।

श्री कबीर मंदिर बड़हरा के सद्ग्रन्थ

श्री कबीर साहेब रचित

बीजक मूल गुटका

श्री रामसूरत साहेब रचित

बोधसार मूल

रहनि प्रबोधिनी मूल

विवेक प्रकाश मूल

श्री निर्बन्ध साहेब कृत

भजन प्रवेशिका

श्री अभिलाष दास कृत

बीजक पारखप्रबोधिनी टीका

पंचग्रन्थी टीका

विवेक प्रकाश सटीक

बीजक शिक्षा

रहनि प्रबोधिनी सटीक

गीतासार

बोधसार सटीक सजिल्द

बोधसार सटीक अजिल्द

कबीर अमृतवाणी सजिल्द

कबीर अमृतवाणी अजिल्द

कबीर परिचय टीका

कल्याणपथ सजिल्द

कल्याणपथ अजिल्द

मानसमणि सटीक

ब्रह्मचर्य जीवन

सरल शिक्षा

सन्तसम्राट सद्गुरुकबीर

वैराग्य संजीवनी

जगन्मीमांसा

तुलसी पंचामृत

स्त्री-बाल-शिक्षा

भजनावली

गुरु पारखबोध सटीक

बीजक प्रवचन

अहिंसा शुद्धाहार

कबीरपन्थी जीवनचर्या

आप किधर जा रहे हैं ?

सन्त महिमा बड़ी

सन्त महिमा छोटी

हितोपदेश समाधान

आदेश प्रभा

मैं कौन हूँ ?

जीवन क्या है ?

कबीर कौन ?

सरल बोध

श्रीरामलक्ष्मणप्रश्नोत्तर शतक

संतवचनामृत (अज्ञातकृत)

जीवन दास सजीवन दास कृत

जीवनगीत